प्रधान विक्रेता : सस्ता साहित्य-मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

प्रथम बार · १९५६
मूल्य . तीन रुपया

प्रकाशक
आरोग्य-मंदिर,
गोरखपुर

मुद्रक
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस,
इलाहाबाद

भूमिका

प्रकृतिने वडी वुद्धिमानीके साथ अपनी सृष्टिकी रक्षा करने और उसका क्रम जारी रखनेकी व्यवस्था की है। जिन लोगोमें पर्याप्त शारीरिक और मानसिक शक्ति नही होती उन्हे वह साधारणत सतानका मुख देखनेका अवसर ही नही प्रदान करती। अगर अयोग्य व्यक्ति प्रजनन-कार्यमे प्रवृत्त हो और किसी प्रकार गर्भाधान हो भी जाय तो पहले तो गर्भके टिकनेकी ही सभावना नही रहेगी और अगर टिक भी जाय तो या तो बच्चा गर्भमें ही मर जायगा या जीवित भी जन्म ले तो वह कुछ ही घटोका मेहमान होगा।

वंशागत दोष

कुछ बच्चे पैतृक दोषके साथ जन्म लेनेपर भी जीवित रहते है। इस दोपका सबध सीधे माता-पितासे होना जरूरी नही है, ऊपरकी पीढियोसे भी हो सकता है। प्राय कहा भी जाता है कि बच्चेके स्वास्थ्यकी नीव नानीकी कोखमें पडा करती है। इस प्रकारके दूरागत दोपका स्वास्थ्य-पर पडनेवाला प्रभाव जितना लोग साधारणत समझा करते है उससे कही अधिक हुआ करता है। ऐसे दोषपर विजय पाना कुछ कठिन भी होता है और वह आरभसे ही बच्चेके स्वास्थ्य और जीवनमे बाधक होने लगता है। लालन-पालनकी अच्छी-से-अच्छी सुविधा प्राप्त होनेपर भी ऐसे बच्चे प्राय अस्वस्थ रहा करते है।

स्वास्थ्यका दायित्व

विकारके साथ जन्म लेनेवाले बच्चोमें अधिक सख्या माता-पितासे प्राप्त दोषवाले बच्चोकी ही होती है। स्वस्थ सतानकी उत्पत्तिमे पिताके स्वास्थ्यका कितना हाथ होता है इस बातको पिता कभी-कभी नही समझ

पाता और सारा दायित्व मातापर ही डाल दिया करता है। इसमें कोई सदेह नही कि वच्चेके निर्माणका कार्य करनेके कारण माताके स्वास्थ्यका उसपर वहुत अधिक प्रभाव पडता है, पर भावी सतानके स्वास्थ्यका दायित्व वस्तुत दोनोपर होता है।

चूकि वच्चा माताके शरीरमे ही अपना रूप ग्रहण करता और बढता है इसलिए उसपर माताके रक्तका, जिससे गर्भमे उसे पोपण प्राप्त होता है, प्रभाव पडना अनिवार्य है। एक तो पोषणाभाव आदिके कारण माताका रक्त इतना अल्प हो सकता है कि वच्चेको पर्याप्त पोषण ही न मिल सके जिससे वह वहुत दुवला-पतला और कमजोर हो सकता है, दूसरे, रक्तकी मात्रा पर्याप्त होते हुए भी हो सकता है कि वह वच्चेके लिए उपयुक्त न हो, क्योकि माताका आहार ऐसा हो सकता है कि उससे रक्त तो काफी वने, पर उसमे वच्चेके निर्माण और स्वास्थ्यके लिए आवश्यक कुछ तत्त्वोका अभाव हो। उदाहरणार्थ, अगर उसमें कैलसियम या फासफोरसकी कमी हो तो वच्चेकी अस्थियो और दातोका निर्माण ठीक तरहसे नही हो सकेगा और उसके अस्थिवक्रता, दतक्षय आदि रोगोका शिकार होनेकी वहुत अधिक सभावना रहेगी। इसके अतिरिक्त माताकी मानसिक अवस्थाका भी रक्तपर कम प्रभाव नही होता जो गर्भस्थ वच्चेके लिए हानिकारक हो सकता है।

खैरियत यही है कि उपर्युक्त दोपोके साथ जन्म लेनेवाले वच्चोकी सख्या अधिक नही होती, अधिकाश वच्चे जन्म ग्रहण करते समय स्वस्थ ही होते है और प्रकृति यही चाहती है कि वे आजीवन स्वस्थ ही वने रहे, पर साधारणत ऐसा होता नही। शैशवकालसे ही रोगोका आक्रमण आरभ हो जाता है और यह सिलसिला जीवनपर्यंत चलता रहता है। जहा नियमत शत-प्रतिशत व्यक्तियोको स्वस्थ होना चाहिए वहा प्राय सभी लोगोके किसी-न-किसी रोगसे ग्रस्त या रोगकी प्रवृत्तिसे युक्त होनेका ही नियम हो गया है। ऐसी अवस्थामे अगर ऐसा कोई आदमी देख पडे जो आजीवन स्वस्थ रहा है तो उसे अपवाद ही समझना चाहिए। प्रश्न यह है कि यह विपर्यय होता क्यो है ?

रोग क्यों ?

साधारणत बच्चे अयुक्त और अतिआहारके ही कारण रोगोके चगुलमें फँसते है और आहारसबधी यह दोष गर्भावस्थामे ही आरभ हो जाता है। एक तो तथाकथित सभ्यताकी कृपासे खान-पानकी आदतें पहलेसे ही बुरी होती है, दूसरे, गर्भाधान हो जानेपर एक और प्राणीका निर्माण होनेकी बातके आधारपर भूलसे माताए यह समझ लेती है और साथ ही अन्य लोगोकी भी राय होती है कि अब दोके लिए खाना आवश्यक है। परिणाम यह होता है कि गर्भमे ही बच्चेका शरीर विजातीय द्रव्यसे भर जाता है जो रोगका क्षेत्र निर्माण करनेके साथ-साथ प्रसवमे भी कष्टका कारण होता है। बच्चेके जन्म लेनेपर भी अतिआहारका सिलसिला बद नही होता, बच्चेको मोटा-ताजा देखनेका माताका हौसला आवश्यकता न होनेपर भी दूध पिलाते रहने या तरह-तरहके कृत्रिम आहार देते रहनेको बाध्य करता है जिससे बच्चेकी पाचनशक्ति खराब हो जाती और सर्दी, मसूरिका आदि रोगोका आक्रमण होने लगता है। दुर्भाग्यकी बात तो यह होती है कि कीटाणुवादके भ्रात सिद्धातसे प्रभावित होनेके कारण इन रोगोका कारण लालन-पालनसबधी दोष न माने जाकर बाहरसे आए हुए कीटाणु माने जाते है और रोगसे छुटकारा दिलानेके लिए लालन-पालनसबधी दोषोको दूरकर सुधारके कार्यमें प्रवृत्त शरीरकी प्राकृतिक शक्तिकी सहायता करनेके बजाय विषौषधोके प्रयोगद्वारा रोगके लक्षणोको दबानेका प्रयत्न किया जाता है जिससे रोगका मूल रूप ज्यो-का-त्यो बना रह जाता है जो काल पाकर जीर्णावस्थामे परिणत हो जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक कारणोसे भी बच्चेके स्वास्थ्यमें खराबी आया करती है, पर खेदकी बात है कि हमारे देशमे स्वास्थ्यके इस पहलूपर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। मन और शरीरमे अन्योन्याश्रय सबध होनेके कारण दोनो एक-दूसरेसे निरतर प्रभावित होते रहते है और एककी अवस्था

वुरी होनेपर दूसरेकी अवस्था भी खराव हो जाती है और फिर तो इस दुष्प्रभावका एक चक्र ही वन जाता है जो वरावर चलता रहता है। यदि वच्चेको पूर्णत स्वस्थ रखना अभीष्ट हो तो उसके मानसिक स्वास्थ्य और विकासपर ध्यान देना और भी आवश्यक है, क्योकि मनके शरीरका शासक होनेके कारण उसका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक होता है।

स्वास्थ्यकी नीव

आजके वच्चे ही कल राष्ट्रके नागरिक होगे और वही राष्ट्र सवल और समृद्ध हो सकता है जिसके नागरिक स्वस्थ और शक्तिशाली होगे, पर इस स्वास्थ्य और शक्तिकी नीव आरभिक अवस्थामें ही डाली जा सकती है। जिस तरह कमजोर नीववाले मकानपर दूसरी मजिल नही वनाई जा सकती और अगर वनाई भी जाय तो वह कुछ ही दिनोके अदर धराशायी हो जायगी उसी प्रकार अगर गर्भावस्था और शैशवकालमे किसी पैतृक या लालन-पालनसवधी दोप या गलत उपचारके कारण वच्चेके स्वास्थ्यका निर्माण नही हो सका, नीवमे दृढता नही आ सकी तो वच्चा जीवित भी रहा तो वह वरावर अस्वस्थ और रोगी वने रहनेके कारण स्वयम् तो सुखमय जीवन व्यतीत कर ही नही सकेगा, परिवारवालो और कुछ हदतक समाजके लिए भी वोझ वना रहेगा। इसलिए माता-पिताका लालन-पालन, रोग और उपचार तथा मानसिक स्वास्थ्यसवधी सिद्धातोसे परिचित होना आवश्यक है। आशा है, यह पुस्तक इस आवश्यकताकी पूर्ति मजेमें कर सकेगी।

पुस्तकका ढाचा तैयार करनेमे 'आरोग्य'में प्रकाशित लेखोका मुख्य रूपसे सहारा लिया गया है और रैस्मस अल्सेकर, हैरी वेंजामिन, हैरी क्लीमेंट्स, मार्गरेट ब्रेडी, वर्नर मैकफैडन आदि विशेषज्ञोकी पुस्तकोसे भी आवश्यकतानुसार सहायता ली गई है जिसके लिए हम उनके आभारी है।

अगर इस पुस्तकसे भावी राष्ट्रके स्वास्थ्य-निर्माणमें थोडी भी सहायता मिली तो हम अपना प्रयत्न सफल समझेंगे।

—संपादक

विषय-सूची

बच्चोंका स्वास्थ्य और उनके रोग

बच्चोंका अपूर्ण पोषण

हर साल लाखो लडके हमारे विद्यालयोसे निकलते और प्रौढावस्थामे सिरपर पडनेवाले भारको वहन करनेमे सक्षम या अक्षम हुआ करते है। जीवनमे सफलता प्राप्त करनेके जितने भी साधन है उनमे सशक्त शरीर ही सबसे मुख्य है और उसीपर और भी साधन निर्भर है। आप अपने बच्चेके भविष्यके लिए क्या कर रहे है? क्या आप उसे ऐसे शरीरके निर्माणमे सहायता दे रहे है जो सशक्त हो और भावी जीवनमे पडनेवाला भार सभाल सके?

छात्रोके स्वास्थ्यका परीक्षण करनेवाले एक डाक्टरका मत है कि लगभग सत्तर प्रतिशत छात्रोमे अपूर्णपोषणका प्रभाव देख पडता है। बहुतोमे पाया जानेवाला दतविकार इसीका परिणाम है। रोग-निवारणके तरह-तरहके उपायोके होते हुए भी आज बच्चोको होनेवाले रोगो—शीतला, इन-फ्लुएजा आदि—की व्यापकतामें कोई कमी नही देख पडती और इन सक्रामक रोगोका कारण, दुष्ट कीटाणु नही है जिनके मत्थे बच्चोको होनेवाले सारे रोगोका दोष मढ़ दिया जाता है, मुख्य कारण अपूर्ण पोषण है जो कोमल शरीरकी रोगोका प्रतिरोध करनेवाली शक्तिका ह्रास कर देता है।

परिचायक लक्षण

अपूर्ण पोषण छोटे बच्चोके लिए सबसे बड़ा घातक सिद्ध होता है। अगर कीटाणुओने हजारोका अंत किया होगा तो अपूर्ण पोषणने लाखोका खातमा किया होगा। एक विशेषज्ञने अपूर्ण पोषणके शिकार बच्चेका चित्र इस प्रकार अंकित किया है—वह आम तौरपर पतला होता है पर मोटा और अशक्त भी हो सकता है, उसका चमड़ा बदरंग, नाजुक, मोम-जैसा और मटमैला भी हो सकता है; उसकी आखोके नीचे काले धब्बे होगे और पलकोके नीचे और मुंहके अंदरकी श्लैष्मिक कला पीली या बदरंग हो सकती है, उसके बाल रुखड़े होगे, जीभपर मैल जमा होगा और कोष्ठबद्धता बनी रहेगी; उसकी पेशियां पिलपिली और अविकसित होगी; कधे गोल और सीना चिपटा और तंग होगा, दात गले होगे और टौंसिल भी बढ़े हो सकते है, स्वस्थ बच्चोमे जो स्वाभाविक स्फूर्ति होती है उसका उसमे अभाव होगा, खेलमे या काम करनेमे वह अनवधान होगा, जल्द थक जायगा और प्राय. सुस्त समझा जायगा, उसमे मनोयोग-शक्ति बहुत कम होगी और बच्चोमे जिज्ञासाकी जो स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है उसका भी उसमे अभाव होगा, आखों और चेहरेसे मुर्दनी और सुस्ती व्यक्त होती रहेगी, उसका स्वभाव चिड़चिड़ा होगा और उसपर नियंत्रण करना भी कठिन होगा, वह अजनबी लोगोसे बराबर डरता रहेगा, उसका दिल-दिमाग कमजोर होगा, बेचैन रहेगा, अच्छी नीद नही आयेगी और अपने भोजनके सबंधमे चुचुर करता रहेगा।

इन छोटे-बड़े बहुसंख्यक लक्षणोके मौजूद रहते आश्चर्यकी

बात है कि हजारो माता-पिता इस अपूर्ण पोपणकी अवस्थापर जरा भी ध्यान नही देते और तबतक निश्चित पडे रहते है जबतक चेचक या लोहित ज्वरका आक्रमण अदरकी सडी-गली अवस्थाकी सूचना देकर उन्हे सचेत नही करता। फिर भी भ्रात कीटाणुवादसे पुष्ट उनका अज्ञान असल कारण—अपूर्ण पोषण—की ओर उनका ध्यान नही जाने देता।

कारणकी खोज

अगर आपके बच्चेका वजन, ऊंचाई और डील-डौल औसत दरजेका न हो, चमड़ा साफ और अच्छे रगका न हो, आखें चमकीली न हो, पेशिया दृढ और विकसित न हो, स्वभाव अच्छा न हो, उसमे जीवट न हो तो आप इधर ध्यान दीजिये और कारणकी खोज कीजिये। आपके बच्चेके लिए कीटाणुसे अधिक हानिकारक उसका अविकसित और अपुष्ट शरीर है। शीतला महारानी अपना अड्डा जमाकर बढनेके लिए गदगी और विषसे भरे हुए छोटेसे कमजोर शरीरकी तलाशमे रहती है। स्मरण रखिये कि नब्बे प्रतिशत बच्चे स्वस्थ उत्पन्न होते है। अगर चार-पांच सालकी अवस्थामे आपके बच्चेमे ऊपर कहे हुए लक्षणोमेसे कुछ देख पडे तो जिस तरीकेसे आप अपने बच्चेका पालन कर रहे है उसपर गभीरताके साथ विचार कीजिये।

आहारकी सदोषता

कोई माता कह सकती है कि 'इस तरहके कुछ चिह्न मेरे बच्चेमे नजर तो जरूर आते है, पर मै कभी कम नही खिलाती, बल्कि इसके विपरीत बच्चेको काफी पोषक आहार दिया जाता

है।' उसका भोजन वस्तुत. कितना पोषक होता है, उसपर ध्यान देनेसे स्थिति स्पष्ट हो जायगी। सुबहमे नाश्तेमे कचौडी, हलवा, मुरब्बे (जो आमाशयमे अम्ल पैदा करते और दात विकृत करते है) आदि दिये जाते है और दिन तथा रातके भोजनमे मैदेकी रोटी या पूरी, मशीनका चावल, मसालेदार तरकारी, मास आदि रहते है। आश्चर्यकी बात यह नही है कि वह कमजोर या विवर्ण देख पडता है, बल्कि आश्चर्य तो यह है कि उसका अस्तित्व अभीतक बना हुआ है और वह चल-फिर भी लेता है। ठीक है, आहार तो काफी दिया जाता है, पर कैसा? वह ९५ प्रतिशत अयुक्त तो होता ही है, अगर बच्चा उसके प्रति अनिच्छा प्रकट करता है तो जबर्दस्ती उसके गलेके नीचे उतारा जाता है।

आज हमारे देशमे यही अयुक्त आहार करोडो बच्चोको दिया जा रहा है। आहारसबधी खास-खास गलतिया है—बहुत अधिक या बार-बार खिलाना, बहुत अधिक चीनी या मिठाइया खिलाना, श्वेतसारकी अधिकता, तंतुओकी क्षतिपूर्ति या निर्माण करनेवाले तत्त्वो—पके ताजा फल, सूखे फल, हरी तरकारियां, सलाद आदिकी कमी, पूर्णान्नसे बनी हुई चीजे न देकर मुलायम और बारीक चीजे देना और जबड़ो और दांतोसे काम न लेना, दूध या दूधसे बने हुए पदार्थ अधिक देना जिससे टौंसिलकी वृद्धि, कब्ज आदि होते है।

अन्य कारण

गलत आहारके अलावा अपूर्ण पोषणके और भी कारण होते है। अपर्याप्त निद्रा, क्लाति और भावात्मक तनाव या

उत्तेजना भी प्राय इसका कारण होती है। सोना भोजन-जैसा ही लाभदायक होता है। अपुष्ट बच्चोपर हुए प्रयोगसे पता चला है कि आहार ठीक कर देनेपर भी निद्राकी मात्रा पर्याप्त न होनेपर साधारण रूपमे जितनी बाढ होनी चाहिये उतनी नही हो पाती। बच्चोको सात-आठ बजेतक सो जाना चाहिए।

शुद्ध वायु और धूपका पर्याप्त रूपमे न मिलना भी अपूर्ण पोषणका एक मुख्य कारण है। सूर्यकी किरणोमे एक तत्त्व है जो खाद्य पदार्थोके अभिशोषणके लिए अनिवार्य रूपमे आवश्यक है। पहले यह समझा जाता था कि आहारसे विटामिनोकी अच्छी प्राप्ति न होनेपर ही अस्थिवक्रता होती है, पर विटामिनो-की प्राप्ति होनेपर भी इस रोगका होना जारी रहा और धूप अच्छी तरह मिलनेपर ही बच्चे नीरोग हुए।

हमारी गरीबी इसमे कहातक सहायक होती है, इसके संबधमे तो कुछ कहना ही बेकार है।

नवजात शिशुओंका सर्वोत्तम आहार

शिशुओंको पोषण प्रदान करनेका प्राकृतिक ढंग ही सर्वोत्तम है, यह स्वीकार करनेमे किसीको आपत्ति नही होगी। पाश्चात्त्य देशोंकी उन माताओंकी वात दूसरी है जो अपने वच्चोको तीन मास भी दूध नही पिलाती। आखिर पिलाये भी क्यो? इससे तो दिन-रात पिलाते रहनेके झमेलेमे पड़कर घरके वंधनमे वध जाना पड़ता है, शकल भद्दी हो जाती है और वची-वचाई शक्ति भी नष्ट हो जाती है। तरह-तरहके कृत्रिम दुग्ध-खाद्य तो मिलते ही है जो स्तन-पान-जैसा ही काम करनेवाले कहे जाते है। वेकार जलील क्यो हुआ जाय?

यह तो स्वीकार करना पडेगा ही कि स्तन-पान करानेमें उपर्युक्त असुविधाए होती है, हम तो यह भी माननेको तैयार हैं कि कई अवस्थाओमें वच्चेके लिए जो हितकर होगा वह माताके लिए भी हितकर होगा, यह आवश्यक नही है। स्तनपान करानेके लिए धैर्य और मनोयोग तो आवश्यक होता ही है, स्तनोंकी रक्षाके उपायोका ज्ञान भी आवश्यक होता है जिसका अधिकांश माताओमे अभाव रहता है।

कृत्रिम और प्राकृतिक आहार

कृत्रिम खाद्य पदार्थोंके संवंधमे जानने योग्य एक विशेष वात यह है कि गायका दूध प्राप्तकर वच्चोंके लिए उसे तैयार करनेमे जितना व्यय होता है उसके अल्पांशमे ही मानव-दुग्ध प्रस्तुत हो सकता है। दूसरी वात यह है कि कृत्रिम आहार

चाहे जितना भी अच्छा हो वह कभी प्राकृतिक आहारका मुकाबला नही कर सकता। ऐसा शायद ही कोई उदाहरण देख पडे जिसमे कृत्रिम आहार माताके दूधसे अच्छा प्रमाणित हो। स्तनपायी बच्चे उतने तगडे तो नही होते, पर वे अपेक्षाकृत अधिक सशक्त होते है, न तो उन्हे जुकाम होता है और न पाचन खराब होता है। कठिन शारीरिक कष्टोको भी वे बड़ी आसानीसे झेल लेते है। इस सुदर आरभका उनके भावी जीवनपर भी गहरा असर होता है।

स्तनपायी बच्चोके बहुतसे रोगोसे बचे रहनेका कारण यह होता है कि वे माताके शरीरसे स्वास्थ्यवर्द्धक कीटाणुओको प्राप्त करते है। ये उनकी आतमे प्रगति कर एक तरहका विटामिन उत्पन्न करते है जो शरीरमे निरोध-शक्ति उत्पन्न करता है। जो बच्चे निष्कीटित (स्टरलाइज्ड) दूधके आहारपर रखे जाते है उन्हे जीवनके आरभिक कालमे ही उक्त कीटाणुओ और उनके उत्पन्न किये हुए शक्तिप्रद विटामिनसे वचित हो जाना पडता है जिससे पीछे उनके स्वास्थ्यको क्षति पहुचनेकी संभावना रहती है।

प्रेमका वातावरण होनेपर तो उनकी आश्चर्यजनक वृद्धि होती है और वे माताके दूधके हर एक घूटके साथ प्रेम ग्रहण करते है। खोजसे पता चला है कि प्रथम वर्षमे जहा माताका दूध पीनेवाला एक बच्चा मरता है वहां बोतलसे दूध पीनेवाले छहसे तेरह बच्चेतक मरते है। बोतलसे दूध पीनेवाले बच्चोको आरंभमे ही आगे बढनेका आधार नही मिल पाता। हा, अगर माता अच्छी स्थितिमे या नीरोग न हो तो उसे दूध नही पिलाने देना चाहिए। कुछ माताओको बच्चेके लायक काफी दूध नही होता।

अगर उनका खान-पान और रहन-सहन ठीक हो तो यह त्रुटि नही आने पायेगी।

अप्राकृतिक आहार ऐसे बहुतसे रोगोका कारण होता है जो कई वर्षोतक प्रकट नही होते। बोतलसे दूध पीनेवाले बच्चोका बदन भरा होता है और वे मोटे भी होते है जिससे कुछ लोग उन्हे स्वस्थ समझने लगते है, पर यह भूल है, दरअसल उनमे स्तनपायी बच्चोके बराबर शक्ति नही होती और उन्हे जल्द ही सब तरहके रोग घेर लेते है। ग्रथि-सस्थानपर, जो बचपनमे बहुत जल्द खराब होता है, बोतलसे दूध पिलानेका बहुत बुरा असर होता है, लालाग्रथियों आदिके शोथका यही मुख्य कारण होता है।

कुछ ही दिन पूर्व एक चिकित्सकने लिखा था—'आतोकी गैससे उत्पन्न होनेवाले रोगोसे मरनेवाले बच्चोमे ८०से ९० प्रतिशततक कृत्रिम रूपसे खिलाये जानेवाले बच्चे होते है। शिशु-सस्थाओमे ऐसे बच्चे ९० और कभी-कभी शत-प्रतिशत मरते देखे गये है। १८७०में पेरिसका अवरोध होनेपर गायका दूध न मिलनेके कारण माताओको बाध्य होकर स्तनपान कराना पड़ा। उस समय रसदकी भी कमी थी जिससे सब लोगोको आहारके संबधमे किफायतशारीसे काम लेना पडता था, शाति और समृद्धिके समयकी तरह स्त्रियां अधिक नही खा पाती थी। इन बातोका परिणाम यह हुआ कि माताए और बच्चे पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ देख पडे और बच्चोकी मृत्यु-संख्या भी घटकर पचमाश हो गई।

सर्वोत्तम क्यों?

बच्चेके लिए माताका दूध सर्वोत्तम आहार इस कारण

है कि उसमें पोषणके लिए आवश्यक सभी पदार्थ उचित मात्रामे मौजूद रहते है। हा, कुछ ऐसी विशेष अवस्थाए जरूर होती हे जिनमे गायका तैयार किया हुआ दूध अधिक लाभदायक हो सकता है। इसका एक कारण तो यह है कि गायके दूधमे अस्थिका निर्माण करनेवाले खनिज द्रव्य अधिक मात्रामे होते है, इसलिए अगर लघुकाय अपुष्ट बच्चोंको गायका दूध दिया जाय तो अच्छा लाभ होगा, पर अगर माताके दूधमे ही ये तत्त्व मिला दिये जायं तो और अधिक लाभ होगा। दूसरा कारण है गायके दूधमे स्त्रीके दूधकी अपेक्षा बी०वर्गके विटामिनोका अधिक होना। अगर माताके आहारमें ही ये विटामिन शामिल कर लिये जायं तो उसका दूध अधिक अच्छा प्रमाणित होगा। तीसरा कारण यह है कि स्तनपायी बच्चोमे गायके दूधपर रहनेवाले बच्चोकी अपेक्षा शूलकी प्रवृत्ति अधिक होती है, पर बच्चे इस शूलके प्रभावका तो निराकरण कर सकते है, अयुक्त आहारके प्रभावका निराकरण उनके लिए कठिन होता है। इसलिए विशेष अवस्थावाले अपुष्ट बच्चोको छोडकर औरोके लिए कोई भी पदार्थ माताके दूधकी समता नही कर सकता।

माताके दूधमें आवश्यक सारे पदार्थ—जल, प्रोटीन, वसा, खनिजलवण, शर्करा, विटामिन आदि—ही पर्याप्त मात्रामे मौजूद नही होते बल्कि कुछ ऐसे पदार्थ भी होते है जो आमाशय आदिके रसके साथ मिलकर बच्चेके लिए दूधका पचकर अभिशोषित होना सरल बना देते है। दूधमे वर्तमान रहनेवाले कुछ तत्त्व शरीरके अन्य किसी भागमे, यहातक कि प्रकृतिमें भी कही नही पाये जाते, केवल दूधका स्राव करनेवाले स्तनमे ही उचित मात्रामे पाये जाते है।

प्राय. कहा जाता है कि माताके दूधमे कुछ ऐसे पदार्थ होते है जो बच्चेके शरीरमे एक प्रकारकी रोग-निवारक शक्ति पहुंचा देते है। यह सत्य है कि बच्चेकी जीवन-यात्रा बहुतसे रोगोंके निवारणकी पर्याप्त शक्तिके साथ आरंभ होती है और इस शक्तिका मातासे प्राप्त होना भी माना जा सकता है, पर यह क्रिया उसी कालमे संपन्न होती है जब बच्चा गर्भमे होता है, प्रसवके बाद नही, हां, माताका दूध इस प्राकृतिक निरोध-शक्तिको बनाए रखनेमे और प्रकारसे सहायक अवश्य होता है।

माताका आहार

अगर माताके आहारमे उपयुक्त खाद्य पदार्थोंकी कमी हो तो दूधका निर्माण होना संभव न होगा, इसलिए माताको स्वयं अपने और बच्चेके लिए भी इन पदार्थोंकी प्राप्ति अवश्य होती रहनी चाहिए। साधारणत. अच्छा भोजन मिलते हुए भी दो पदार्थो—प्रोटीन और बी० वर्गके विटामिनोंकी प्राप्तिपर विशेष ध्यान देना चाहिए। दूध तथा दूधसे बने हुए पदार्थ इन दोनोकी प्राप्तिके अच्छे साधन है। इसके अलावा गर्भ-वहन और स्तन-पानके समयमें भी भोजनकी मात्रा अंत प्रवृत्तिकी जितनी माग हो उतनी ही होनी चाहिए। स्तनपान करानेवाली माताको और समयोकी अपेक्षा अधिक आहारकी आवश्यकता हो सकती है।

शिशुओंका पालन-पोषण

(१)

जन्म लेते ही बच्चेको खिलानेकी उतावली कभी नहीं करनी चाहिए। प्रकृतिने कुछ इस तरहकी व्यवस्था की है जिससे उसे तुरंत खिलानेकी आवश्यकता नही होती। जन्मके २४ घंटे बाद स्तनपान कराना अच्छा होता है। इतनी देरमें सारा शोरगुल और उत्तेजना भी प्रायः कम पड गई होती है। कुछ लोग जन्म लेनेके कुछ ही घंटे बाद 'जन्मघूंटी' देते है। यह बहुत बड़ी गलती है। यह उत्तेजक होती है जिसका आरंभमें ही बच्चेकी आंतोकी श्लैष्मिक कलापर बुरा असर होता है। यह कला बहुत नाजुक होती है और बच्चेका पाचन-संस्थान बडी आसानीसे अव्यवस्थित हो जाता है। जन्मके पहले पाचन-संस्थान पचानेका काम नही करता, पोषणकी सारी क्रिया उसके शरीरकी धातुके जरिये होती है, इसलिए घूंटी-जैसी कोई चीज न देकर नरमीसे बरतना अच्छा होता है। माताका पहला दूध बच्चेकी आंतोको उत्तेजित करनेके लिए काफी रेचक होता है। यह प्राकृतिक रेचक है और इससे किसी तरहकी क्षति पहुचनेकी संभावना नही रहती।

आहारकी मात्रा

बहुतसे लोग पूछा करते है कि बच्चेको कितना दूध पिलाया जाय; पर सभी बच्चोकी स्थिति एक-सी न होनेके कारण

मात्रा निर्धारित कर सकना सभव नही है। आवश्यकतानुसार वह न्यूनाधिक हो सकती है। अगर मा-बाप स्वस्थ हैं और बच्चा भी ठीक पैदा हुआ है तो उसके आहारकी मात्रा आप-ही-आप ठीक हो जायगी। अगर बीच-बीचमे पूरकके रूपमे थोडा-थोडा पानी भी दिया जाता रहे तो उसे अधिक दूधकी आवश्यकता नही होगी। सबसे अच्छा तरीका यह है कि बच्चेको जीभर पी लेने दिया जाय और जब वह स्तन या बोतलकी उपेक्षा करने लगे तो पिलाना बद कर दिया जाय। वह आप ही धीरे-धीरे आहारकी मात्रा बढाता जायगा।

रोनेका कारण

अधिक खिलानेपर बच्चे परेशानीसे रोया करते है जिसे माताए भूलसे भूखका सूचक मान लेती है। बहुतसे बच्चोको भूख नही लगती, उन्हे बडोकी तरह प्यास लगती है, पर उन्हे पानीके बदले दूध पिलाया जाता है तो इससे कुछ कालके लिए उन्हे शांति मिल जाती है, पर महास्रोतमे विकृत बना हुआ दूध उपदाह उत्पन्न कर उन्हे फिर बेचैन कर देता है और वे रोने लगते है। इस स्थितिको न समझ सकनेके कारण माताएं दूध पिला-पिलाकर बच्चेकी मृत्युका कारण बनती है और अपने अविवेकपूर्ण प्यारका बदला दु.खके रूपमे पाती है। बच्चेको सिर्फ तीन बार दूध पिलाया जाय और समय इस प्रकार रखा जाय कि अंतर बराबर पड़े। रातमे पानीके अलावा और कुछ न दिया जाय। दूध पिलानेकी बोतलमे कुनकुना पानी भर लीजिए और तीन-चार बार दिनमे पिलाया कीजिए। रातमे भी बच्चा दो-एक बार पानी पीना चाहेगा।

गलत धारणा

प्राय जन्मकालसे ही बच्चेको बार-बार और बहुत अधिक पिलाना शुरू कर दिया जाता है। अगर बच्चा स्वस्थ देख पड़ा तो चिकित्सक भी दिनमे दो-दो घटेपर और रातमे तीन-तीन घंटेपर दूध पिलानेकी राय दिया करते है, अगर बच्चा कमजोर देख पड़े तो और अधिक बार पिलानेको कहा जाता है। २४ घटेके अदर १० से २४बारतक दूध पिलाना कोई असाधारण बात नही है। कभी-कभी तो घटेमे तीन-तीन बारतक पिलाया जाता है। दलील यह पेश की जाती है कि बच्चेका पेट छोटा होता है, उसमे एक बारमे अधिक आहार नही अट सकता, इसलिए उसे बार-बार भरते रहना जरूरी है, उसे जितना अधिक आहार मिलेगा उतनी ही तेजीसे उसकी बाढ होगी। मगर तथ्य तो यह है कि बच्चेका पेट इसलिए छोटा होता है कि उसे बहुत कम मात्रामे आहारकी आवश्यकता होती है। बाढ़ बहुत धीमी चालसे होती है और लगभग २५ वर्षतक इसका समय होता है। अगर देखभाल ठीक तरहसे हो तो उसके शरीरकी गरमी बहुत कुछ बनी रहेगी और सिर्फ थोडेसे इंधनकी उसे जरूरत होगी। आहारके सबधमे इतनी गलत धारणाए फैली हुई हैं कि माता-पिता यह समझ ही नही पाते कि बच्चोको पर्याप्त पोषण प्रदान करनेके लिए कितना आहार आवश्यक है।

पूर्णत स्वस्थ नौजवान भी इतनी बार खाना जारी रखकर अपना स्वास्थ्य कायम नही रख सकता, कुछ ही दिनोमे वह रोगका शिकार हो जायगा। बच्चे तो इसको सहन कर हीं नही सकते, और इसका सबसे बडा प्रमाण लाखो बच्चोका

पहला वर्ष पूरा होनेके पहले ही मर जाना है। शैशवावस्थामे होनेवाले अधिकाश रोगोका सबंध आहारसे ही होता है। पेट और आते अच्छी हालतमे हों तो रोग बच्चोंके पास फटकने भी नही पाते। आहारपर तो पूरा ध्यान दिया ही जाय, वे गरम और साफ रखे जायं और उनका कमरा भी हवादार हो। महास्रोत स्वस्थ होनेपर, जो उपयुक्त और संयत आहारसे ही सभव है, बच्चे कीटाणुओंके आक्रमणका भी, जिसका डर बड़ोंके दिमागको परेशान किये रहता है, आसानीसे निवारण कर सकते हैं। पाचनकी गड़बड़ीके बाद बच्चोंमें जो रोग प्रकट होते हैं वे वस्तुतः अधिक आहारके लक्षणमात्र हैं।

कमीकी पूर्ति

भरसक तो बच्चेको स्तनपान ही कराना चाहिए, पर अगर माताको पर्याप्त दूध न होता हो तो कमीकी पूर्ति स्वस्थ गायके शुद्ध दूधसे की जाय, क्योंकि माताके दूधके बाद गायका ही दूध सर्वोत्तम होता है। हां, इस बातका ध्यान रहे कि दूध बासी या बहुत देरका दुहा हुआ न हो। दूधके बराबर ही पानी मिला लिया जाय या दो भाग दूधके साथ एक भाग पानी रहे। दोनोंको मिलाकर एक सेरमे एक चम्मचके हिसाबसे दुग्धशर्करा डाल दीजिए और उसे थोड़ा गरम कर बच्चेको पिलाइए। दुग्धशर्करा इक्षुशर्कराकी तरह पानीमे जल्द नही घुलती, इसलिए यह उतनी मीठी नही होती, पर बच्चोंके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छी होती है, इसलिए अगर शर्करा डालनी ही हो तो यही डाली जाय। बार्लीका पानी या इस तरहकी और कोई चीज दूधमे न मिलाई जाय। बोतलसे

दूध पीनेवाले बच्चोंको प्रात-काल थोड़ा फलका या तरकारीका रस देना लाभदायक होता है। स्तनपान करनेवाले बच्चोंको भी इससे लाभ होगा, हाला कि उन्हे इसकी कोई विशेष आवश्यकता नही होती। बच्चा एक महीनेका हो जाय तो दिनमें सिर्फ एक वार एक चम्मच रस दीजिए और ४ मासमें मात्रा धीरे-धीरे बढाकर दो चम्मच कर दीजिए।

माताके दूधमे पाई जानेवाली शुक्ली (अल्बुमिन) खट्टी होनेपर जल्द नही जमती, पर गायके दूधकी सारी शुक्ली जम जाती है। इसके अलावा माताका दूध छोटी-छोटी फुटकियोमें जमता है जिनपर पाचन-रसोकी अच्छी क्रिया होती है और वे आसानीसे अभिशोषित भी हो जाती है, पर गायके दूधकी शुक्ली बड़ी-बड़ी फुटकियोके रूपमे जमती है जो बड़ी होनेके कारण आसानीसे नही पचती। पानी न मिलाने और तेजीसे घोट जानेपर यह स्थिति विशेष रूपसे प्रस्तुत होती है।

बोतलकी सफाई

अगर बोतलसे दूध पिलाया जाता है तो बोतलकी सफाईपर विशेष रूपसे ध्यान देना आवश्यक है। इस्तेमालके लिए एक ही बोतल न रखकर कई बोतले रखी जायं जिसमे उन्हे साफ करनेका समय मिलता रहे। ३ बार पिलानेके लिए ६ और ४ बारके लिए ८ बोतले रखी जायं और एक दिनका अंतर देकर काममे लाई जायं। इस्तेमालके बाद बोतले धोकर साफ कर ली जायं और तब सोडेमे उबालकर कई बार धोई जायं और धूपमे खडी कर दी जायं। इस्तेमालके पहले भी उन्हें उबाले हुए पानीसे धो लेना चाहिए। चूकि बोतलोकी संख्या पर्याप्त

होगी इसलिए वे क्रमसे रखी रहें और एक बोतल एक ही बार काममें लाई जाय । टोंटीकी सफाईपर भी पूरा ध्यान देना जरूरी है; क्योंकि वच्चेको दूध पिलानेके कार्यमे मानसिक पवित्रतासे अधिक सफाईका महत्त्व है ।

स्तन-पानकी अवधि

एक और व्यावहारिक प्रश्न है—वच्चोको कितने दिनोंतक स्तनपान कराया जाय ? इस अवधिका ठीक-ठीक निश्चय करना वहुत कठिन है। विभिन्न देशोकी स्थितिके अनुसार इसमे कुछ अंतर हो सकता है । इग्लैंड आदि कुछ देशोमे यह अवधि ९ मासकी मानी जाती है, पर अमेरिकामे ६ मास या इससे कमकी ही मानी जाती है । साधारणत. यही उचित जान पडता है कि माताका दूध वच्चेके लिए कम पडने लगे तो कमीकी पूर्ति गायके दूध या फलों-तरकारियोके रससे की जाय । अभिप्राय यह कि स्तनपान कराना एकबारगी बंद न कर धीरे-धीरे ही किया जाय । इस प्रकार उसे माताका दूध भी कुछ मिलता जायगा ।

श्वेतसारीय आहार

लगभग एक वर्षकी अवस्थामे श्वेतसारीय पदार्थ देना आरंभ किया जा सकता है । पहले वच्चा वहुत कम खाएगा, फिर धीरे-धीरे मात्रा वढाता जायगा । रोटी काफी कड़ी हो जिसमे वच्चेको निगलनेके पहले उसे खूब चवानेके लिए वाध्य होना पड़े । इस प्रकार वच्चेको खूव चवाकर खानेका अभ्यास भी हो जायगा । दूधमें भीगी हुई रोटी या रोटीके साथ दूध कभी न दिया जाय । अगर रोटी-दूध खिलाना ही हो तो साथ न देकर

आगे-पीछे देना चाहिए। गेहूंकी जो भी चीज खिलाई जाय वह चोकरदार आटेकी बनी हो, मैदेमे खनिज लवण नही होता जो बच्चेकी बाढ और स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है। बहुतेरी माताएं ४-५ मासकी ही अवस्थामे बच्चेको श्वेतसारीय पदार्थ खिलाना आरंभ कर देती है। यह बहुत बड़ी भूल है। इस अल्पावस्थामे उसमे श्वेतसार पचानेकी शक्ति नही होती, क्योकि आरंभके कुछ महीनोतक बच्चेमे कुछ पाचन-रसोंका अभाव होता है। ऐसी हालतमे इस प्रकारका खाद्य पदार्थ बच्चेके रोगका ही कारण होगा।

(२)

बहुतसे बच्चोमे जन्मके कुछ ही घटो या दिनोके बाद अति-आहारके चिह्न प्रकट होने लगते है। नाकका बहना इसका एक साधारण लक्षण है। अति-आहारसे यह बहुत बढ जाता है जिससे जीवनभर बने रहनेवाले जुकामकी नीव पड जाती है और समय-समयपर अस्थिवक्रता, ग्रंथिशोथ, उकवथ, विसूचिका, मसूरिका आदि रोग प्रकट होते रहते है। मां-बापको इन रोगोकी प्रतीक्षा करनेको कहा जाता है और वे लोग बराबर सुनते भी रहते हैं कि ये सभी शैशवावस्थाके रोग है। यह प्रकृतिके लिए एक लाछन है जो हमेशा शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेकी ही चेष्टा करती रहती है।

कीटाणु रोगका कारण नहीं

आजकल यह मत प्रचलित है कि जल, खाद्य पदार्थ, हवा और पृथ्वीमे विभिन्न प्रकारके कीटाणु या जीवाणु मौजूद रहते

हैं और उन्हीके कारण ये रोग होते हैं, पर दरअसल बात ऐसे नही है। जिन बच्चोकी देखभाल ठीक तरहसे होती है उन इनमेंसे एक भी रोग नही होता। यही इस बातका प्रमाण है कि कीटाणु स्वयं कुछ करनेमे समर्थ नहीं होते, रुग्णावस्थामे ही वे अपना कार्य करते हैं जो प्राय. हितकर ही होता है। वे मेहतर है, शरीरको गदगी और विषसे मुक्त करनेका प्रयत्न करते हैं। गलत तर्कके आधारपर उन्हे रोगका कारण कहकर वदनाम किया जाता है, पर वास्तवमे उनकी वृद्धि रोगके परिणामस्वरूप हुआ करती हैं। अगर अधिक और खराब चीजें खिलानेके कारण बच्चेकी निरोध-शक्ति क्षीण न पड़ गई हो तो रोगके उत्पादक कहे जानेवाले 'बैक्टीरिया' नामक जीवाणु उसके शरीरमे कभी पनप ही नही सकते।

अधिक प्यारके कारण मृत्यु

आम तौरसे मां-बाप बच्चेको प्यार करते है, पर उनका यह प्यार ही, जो प्राय. व्यसनका रूप धारण कर लेता है, उस असहाय बच्चेकी मृत्युका कारण हो जाता है। आस्कर वाइल्डके शब्दोमे 'जिसे हम प्यार करते है उसे ही मार डालते है।' एक सुप्रसिद्ध चिकित्सकने लिखा है—'पहला साल पूरा होनेके पहले ही वहुतसे बच्चे मर जाते हैं—ऐसे बच्चे जो महीनों स्वास्थ्यकी प्रतिमूर्ति-से जान पड़ते है और बालविसूचिका, ज्वर आदिसे आक्रांत होनेके पूर्व कभी अस्वस्थ नही देख पड़ते। उनका पेट हमेशा ठसाठस भरा रहता है, शरीर सिरसे पैरतक वसासे लद जाता है और कुछ दिनोतक फुर्तीले और चंचल भी देख पड़ते है जो माता-पिता और उनके मित्रोकी प्रसन्नताका कारण

होता है । इसके अनतर कुछ कालतक कब्ज, सर्दी, वालविसूचिका आदि रोगोसे ग्रस्त रहकर ये पिंजरावशिष्ट वच्चे माता-पिताकी दृष्टिसे ओझल हो जाते है । अकुशल स्त्रियां खाना वनानेके लिए आग जलाते समय चूल्हेमे इतना ईंधन ठूस देती है कि आग तेज जलनेके वजाय बुझ जाती है । वच्चोके संवधमे भी ठीक यही होता है । उनके शरीरमे इतना ईंधन ठूस दिया जाता है कि उनका जीवनानल बुझकर ही दम लेता है ।' जो जीवित रहते है उनके मार्गमे भी इसके कारण वड़ी वाधा पहुंचती है । शरीरकी गिरी हुई अवस्था प्रत्येक वच्चेमे कुछ-न-कुछ खरावी ला देती है जिससे रोगकी नीवं पड़ जाती है और वच्चे बडे होनेपर तरह-तरहके भयकर रोगोके शिकार होते रहते हैं ।

प्राकृतिक संकेत

वच्चेका उदर सवेदनशील होता है और अधिक आहारका विरोध करता है । जमे हुए और कभी-कभी जमनेका समय मिलनेके पहले ही दूधका वमन इसीका परिणाम होता है । यह आत्मरक्षाका प्राकृतिक उपाय है । अगर इस संकेतपर ध्यान देकर पेट ठीक न हो जानेतक दूधके वदले पानी दिया जाय और तव आहारकी मात्रा घटाकर पाचन-शक्तिके अनुसार रखी जाय तो वच्चेकी हालत ठीक हो जायगी । हमेशा याद रखे कि यह वमन प्रकृतिकी सांकेतिक भाषा है जो कभी गुमराह नही करती और इतनी स्पष्ट है कि मामूली समझवाली माता भी प्रचलित भ्रामक सिद्धातोके वावजूद इसका अर्थ मजेमे समझ ले सकती है ।

उदरकी सहिष्णुता

अगर वमनका अर्थ न समझकर दूध पिलाते रहनेका सिल-सिला जारी रहा तो या तो बच्चेकी मृत्यु हो जायगी या उदर सहिष्णु होता जाकर और अंगोको अपना कष्ट वितरण करने लगेगा। कोई अंग अकेले दीर्घकालतक किसी कष्टका सहन नही करता, सारे शरीरमे व्याप्त सज्ञावहा नाडियोके सहयोग-से संवहन-क्रिया कष्टको सारे अंगोमे पहुंचा देती है। उदरके सहिष्णु बन जानेके कई दुष्परिणाम होते है और सबकी प्रक्रिया प्रायः एक-सी होती है। एक विशेष रूप यह देखनेमें आता है कि जिन बच्चोंकी पाचन-शक्ति अच्छी नही होती उन्हे आवश्यकतासे अधिक दूध पिलानेपर न पचा हुआ दूध भी पचे हुए दूधकी ही तरह जम जाता है। उसका जल तो शोषित हो जाता है, पर ठोस अंश बिना पचे ही बड़ी आतमें पहुंच जाता है और दही-जैसे रूपमें मलके साथ बाहर निकलता है। महास्रोतसे गुजरते समय उसका कुछ अंश सड भी जाता है जिससे उत्पन्न हुए विषका कुछ अश तो शरीर ग्रहण कर लेता है और कुछ बडी आंतमे ही रह जाता है जिससे अपानवायुमें बड़ी दुर्गंध आ जाती है।

अतिआहारका दुष्परिणाम

मलमे जमे हुए दूधका निकलना अतिभोजनसे होनेवाले खतरेका सूचक है। इसपर ध्यान न देनेपर बाल-विसूचिका होनेकी—विशेषकर गरमीके मौसममे—सभावना बढ़ जाती है। यह दुग्धजन्य विषमताका ही परिणाम होती है। इसमें आत्मरक्षाके प्रयत्नमे आंतें क्षुब्ध होकर बहुत अधिक लसीका

निकालने लगती है जिससे बच्चेका शरीर शीघ्र ही शिथिल पड़ जाता है और प्राय मृत्यु भी हो जाती है। अगर दूध पिलाना फौरन बदकर बच्चेके चाहनेपर सिर्फ कुनकुना पानी थोड़ा-थोडा दिया जाय तो बच्चेके बच जानेकी आशा रहती है।

अच्छी पाचन-शक्तिवाले बच्चे रोज काफी—सेरो—दूध पचा लेते है, पर सबका उपयोग नही कर सकते, अगर कर सकते तो कुछ ही दिनोंमे उनकी अच्छी बाढ हो जाती। पाचनकी तरह अतिरिक्त मात्राका निष्कासन आसान नही होता। इससे त्वचा, वृक्को, फुफ्फुसो और आतोपर उनकी शक्तिसे अधिक भार पड जाता है और इसे बाहर निकालनेमे प्राय नाक और गलेकी श्लैष्मिक कलासे सहायता लेना आवश्यक हो जाता है। ऐसे ही बच्चोके सबधमे प्राय सर्दी 'पकड़' लेनेकी बात कही जाती है, पर दरअसल सर्दी 'पकड़ी' नही जाती, बल्कि बच्चोको खानेको दी जाती है। इस अतिचारसे श्लैष्मिक कलामें शोथ हो जाता है और कुछ कालके अनतर या तो जुकाम जीर्ण हो जाता है या नाक या गलेकी श्लैष्मिक कला मोटी पड जाती है। जुकामकी जड़ जमते समय श्वासनलिकामे प्राय सूजन भी हो जाती है।

कुछ अवस्थाओमे मल बाहर निकालनेका भार त्वचापर भी पड़ता है और उसकी भी हालत श्लैष्मिक कला-जैसी ही होती है। वह सीमित मात्रामे ही मल बाहर निकाल सकती है इसलिए अधिक मात्रामे विजातीय द्रव्य एकत्र हो जानेपर उसमे शोथ हो जाता है और पहले खुजली होकर पीछे उकवत हो जाता है। बच्चा उसे नोचते-नोचते प्राय. नाखून गडा दिया करता है और चेहरा जख्मोसे भर जाता है। इस हालतमें

आहारकी मात्रा कम कर देनेपर उदर और आंतोमें अम्ल उत्पन्न करनेवाले खमीरका बनना बंद हो जाता है, शरीरके पोषणके लिए पर्याप्त आहारका अभिशोषण हो जाता है और त्वचाको केवल अपना साधारण कार्य करना रह जाता है। क्षोभका कारण दूर हो जानेपर चर्मविकार भी शीघ्र ही चला जाता है। इस प्रकारके बच्चेका वजन जितना होना चाहिए उससे बहुत अधिक होता है और मां-बापको आश्चर्य होता है कि ऐसे स्वस्थ बच्चेको रोग क्यो हुआ ?

मानसिक रोग

खिलानेमें समझदारीसे काम न लेनेपर मानसिक रोग भी हो जाते है। स्वस्थ बच्चा प्रसन्नचित्त होता है, अस्वस्थ बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है। चिड़चिड़ापन और क्रोध मानसिक विकृतिके ही लक्षण है। क्रोध तो अस्थायी उन्माद ही है। अगर अधिक खिलाना जारी रहे तो मस्तिष्क-विकृति, अपस्मार, उन्माद आदि रोगोके होनेकी संभावना बढ़ जाती है। स्वस्थ शरीरमे ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है। अगर लोग अपने शरीरकी देखभालपर ध्यान दे, विशेषकर आहारके संबधमे संयम बरते तो पागलखानोंकी जरूरत ही नही रहेगी।

बच्चोको अधिक खिलानेसे एक बड़ी खराबी यह होती है कि उनमे उत्तेजक पदार्थ खानेकी चाट पैदा हो जाती है जो आगे चलकर कई तरहसे शात की जाती है—कुछ लोग तो तंबाकू, मदिरा आदिकी सहायता लेते है जिनके वे आदी हो जाते है और कुछ लोग अति भोजनद्वारा उसे शांत करनेकी कोशिश करते है। उसकी शांति चाहे जैसे करनेका प्रयत्न किया जाय,

पर वह कभी शात होती नही, क्योकि इसके लिए जो कुछ उसे खिलाया जाता है उसीके सहारे वह पुष्ट होती और बढती है। जिस तरह अफीम ज्यादा अफीमकी मांग करती है और मदिरा अधिक मदिराकी, उसी तरह बार-बार खाते रहनेसे और अधिक खानेकी प्रवृत्ति होती है और इस प्रकार अप्रकृत भूखकी परिणति मृत्युमे ही हुआ करती है।

शिशुओंकी देखभाल

स्थूलकाय वच्चोको लोग स्वस्थ समझते है जो वहुत बडी भूल है । बच्चा जितना अधिक मोटा होगा उतनी ही कम आयुमें वह श्मशान-यात्राकी तैयारी करेगा । जन्मके समय आठ पौंड या इससे अधिक वजन होना इस वातका सूचक है कि मातृत्वके नियमोका उल्लघन किया गया है । शीघ्र या कुछ विलंवसे इसका फल वच्चे और माताको भी भुगतना पडता है। अधिक वजन स्वास्थ्यके लिए घातक होता है, क्योकि इसके कारण अंदरकी सफाई और आहारका पाचन ठीक तरहसे नही हो पाता और इनके न होनेपर स्वास्थ्यका रहना असभव ही है ।

वजनके संवंधमे लोगोमे भ्रात धारणा फैली हुई है इसलिए इसके संवंधमे कुछ और कहना आवश्यक जान पडता है।अगर माताका जीवन गर्भ वहन करते समय संयत रहा है तो वच्चेका वजन हलका ही होगा । कभी-कभी तो वजन पांच पौंड या इससे भी कम होता है । साधारण चिकित्सक ऐसे वच्चेको देख-कर नैराश्यमे कह देगा कि वच्चेके जीनेकी सभावना वहुत कम है । मित्र, पड़ोसी और सवधी भी यही वात कहते सुन पडेंगे, पर वे भूलते हैं, मा-वापको यह अच्छी तरह याद रहना चाहिए कि कम वजनके वच्चे विजातीय द्रव्य और रोगसे भी प्राय मुक्त होते हैं। हलका वच्चा आम तौरसे स्वस्थ होता है। अगर उचित रूपसे उसकी देख-भाल हो और उसे अधिक न खिलाया-

पिलाया जाय तो उसकी वाढ भी अच्छी होगी। इस प्रकारके वच्चेके मा-वापको सशक होनेके वदले प्रसन्न होना चाहिए।

माताका रहन-सहन

जीवन-यापनका ढग सादा रखना वच्चेके प्रति माताका पवित्र कर्तव्य है। हमेशा आदर्श जीवन व्यतीत करना तो सभव नही है, पर हर एक माता सादा भोजन और मनोभावोपर नियत्रण रख सकती है। उपयुक्त आहार और मानसिक सतुलन वच्चेको स्वास्थ्यवर्द्धक पोषण प्रदान करनेमे वडे सहायक होते है। मासादिसे भरसक परहेज करते हुए फल और तरकारिया अधिक खाई जाय, रोटी चोकरदार आटेकी हो और अगर चावल खाया जाय तो वह पालिशदार न हो। सफेद चीनी, अचार-मुरव्बो और मिर्च-मसालोका यथासभव वहिष्कार किया जाय। शुद्ध दूध वच्चे और माताके लिए समान रूपसे लाभदायक होता है। गुरुपाक भोजन और उत्तेजक पेयोसे भी परहेज किया जाय। साराश यह कि जहातक सभव हो माताको अपना खान-पान प्राकृतिक रखना चाहिए। मनकी प्रसन्नताका भी वहुत अधिक महत्त्व है। जो माता परेशान रहा करती है या किसी ध्वसात्मक भावसे अभिभूत होती है वह अपने वच्चेको अपने दूधकी प्रत्येक बूदके साथ कुछ-न-कुछ विषपान कराती जाती है।

कुछ माताए पोषण प्रदान करनेमे समर्थ नही होती। इसका विशेष कारण ज्ञानका अभाव ही होता है, क्योकि सावधानी-के साथ जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्रिया वच्चोको पोषण प्रदान करनेमे प्राय. समर्थ होती है। अगर वोतलसे दूध पिलानेकी चाल वढती गई और तरह-तरहका टीका लगाना वंद नही हुआ

तो माताओका दूध पिलाना वद ही हो जा सकता है। कुछ माताओको स्तनपान करानेमे बडे आनंदकी अनुभूति होती है, पर कुछ अपनी शकलमे खराबी आनेके डरसे स्तनपान कराना स्वीकार नही करती। वच्चेको प्राकृतिक आहारसे वंचित रखनेका चाहे जो भी कारण हो, मा-वापको यह समझ लेना चाहिए कि इससे वच्चेके स्वास्थ्य और जीवनमे वहुत कमी आ जायगी।

त्वचा आदिकी देख-भाल

आरभमे साधारण वच्चा लगभग हमेशा—२०, २२ घटे—सोता है। उसके साथ किसी तरहकी छेड-छाड़ नही होनी चाहिए। सिर्फ तीन वार दूध और तीन-चार वार बोतलसे पानी पिला दीजिए और उसे साफ, सूखा और उष्ण—तप्त नही—रखनेका प्रयत्न कीजिए। बहुतसे वच्चे रोज नहलाये जाते है। यह ठीक है, पर नहलानेका काम तेजीसे होना चाहिए। सफाईके लिए स्नानके पहले उवटनका प्रयोग या नहाते समय बेसनका प्रयोग अच्छा है। अगर साबुन इस्तेमाल किया जाय तो वह बहुत मुलायम हो और बदन खूब साफ कर दिया जाय, नही तो सावुनके कण छिद्रोंमे रह जाकर उपदाह उत्पन्न करेंगे। जख्म, चर्मस्फोट और शोथ ऐसी ही असावधानीके कारण होते है। कोई धातुवाली बुकनी या पाउडरका इस्तेमाल न किया जाय। अगर वच्चा सूखा और साफ रखा जाय और उचित पोषण पाता रहे तो उसकी त्वचा भी अच्छी हालतमे रहेगी। अच्छी हवाके अभावमे वच्चोंकी वाढ़ अच्छी नही होती, इसलिए कमरेमें हवा काफी आती रहे, पर वह ऐसे रास्तेसे आये कि उसका

झोका न लगे । बच्चेके अग मुक्त रखे जाय जिसमे वह स्वच्छ-दतापूर्वक उनका सचालन कर सके ।

फेफड़ोंका व्यायाम

साधारणत लोग समझते है कि फेफड़ोके व्यायामके लिए बच्चेका रोना आवश्यक है । स्वस्थ और आरामसे रहनेवाला बच्चा कभी नही रोयेगा और यह आवश्यक भी नही है । फेफड़ोकी क्रियाके लिए उससे व्यायाम कराना कठिन नही है । बच्चे दृढतापूर्वक उगली या छड पकडकर लटक सकते है । इससे न रोनेवाले बच्चेको इस प्रकार ऊपर उठा लीजिए और हर बार कुछ मिनट लटकने दीजिए । इससे सीना ऊपर उठेगा और फेफडोका व्यायाम हो जायगा । इस व्यायामसे बच्चोको आनंद तो मिलता ही है, उनकी शक्ति-वृद्धिके साथ स्वभावमें सुधार भी होता है । रोनेसे बच्चोका स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा हो जाता है । कभी-कभी थोड़ा रोए तो बुरा नही है, पर अधिक रोना कष्ट, रोग या खराबीका ही सूचक है ।

दवा न दी जाय

बच्चेको किसी तरहकी दवा मत दीजिए । इससे नुकसानके सिवा कभी कोई फायदा नही होता । अगर कभी इसकी जरूरत पड ही जाय तो अपवादके रूपमे अडीका तेल या खनिज लवण-जैसा कोई रेचक पदार्थ दिया जा सकता है । धातुनिर्मित कोई चीज देनेका तो कोई औचित्य हो ही नही सकता । अगर बच्चेको शुद्ध और सयत आहार मिलता रहे तो उसे कभी कब्ज नही होगा और अगर कभी हो ही जाय तो एनिमाका प्रयोग बेखटके

किया जा सकता है। हा, इतना अवश्य स्मरण रहे कि इन उपचारोसे आरोग्यलाभ नही होता, केवल उपशमन होता है, आरोग्यलाभ तो भूलोका सुधार और शरीरके अवाध रूपसे कार्य करने योग्य हो जानेपर ही हो सकता है।

प्रदर्शनसे हानि

वच्चेको अकारण तग करते रहना ठीक नही। नई अवस्थाके मा-बाप उसे सबको दिखलाते रहनेकी गलती करते है और लोग शिष्टाचारके खयालसे उसे 'सर्वश्रेष्ठ' भी कह दिया करते है, हाला कि वैसे वच्चे संसारमे लाखो होते है। वच्चेको चुपचाप रहने देकर उसे सचमुच अच्छा वननेका अवसर दीजिए। प्रदर्शनके कारण वच्चेकी उत्तेजना वढ़ती है जिससे चिड़चिडापन आदि विकारोकी नीवं पड़ जाती है। शात वातावरणमे बाढ अच्छी होती है। बच्चा जगा रहे तो उससे शातिपूर्वक वात कीजिए। वह इसी तरह मातृभाषा सीखना आरभ करता है। अच्छी भाषाका प्रयोग कीजिए। जो लोग वच्चोकी बोलीमे उससे वात करते है वे उसके मार्गमे बाधक होते है, क्योकि उसे उस वोलीको भूलकर पुन. टकसाली भाषा सीखनी पडेगी।

बुरी आदतोंका सिलसिला

जो अपने रहन-सहनकी खरावी महसूस करते है उनमे भी कुछ ही लोग व्यसनोकी शृखलाको तोड फेकनेमे समर्थ हो पाते है। वहुत कम लोग स्पष्ट रूपसे यह समझ पाते है कि रोग या अकाल मृत्यु वच्चेमें माता-पिताद्वारा डाली गई वुरी आदतके ही कारण होती है और ये माता-पिता भी यह आदत विरासतमें

ही पाये होते हैं। इस तरह यह सिलसिला बराबर जारी रहता है और बच्चे मा-बापके पापका फल भोगते हैं। कुशल यही है कि इसमे सुधारकी बहुत कुछ गुजाइश है और अगर माता-पिता अपना रहन-सहन ठीक कर बच्चोके पालन-पोषणमे समझ-दारीसे काम ले तो यह सिलसिला आगे बढनेसे आसानीसे रोका जा सकता है। दृढ इच्छा और सकल्पके साथ कभी भी परिवर्तन किया जा सकता है जिसका परिणाम अच्छा ही होगा। विलव करनेका कोई बहाना नही हो सकता। गलतिया जितनी अधिक देरतक बनी रहेंगी उनपर विजय पाना उतना ही कठिन होगा।

तगड़े और नाजुक बच्चे

मोटे तौरपर बच्चे दो भागोमे बाटे जा सकते है—तगड़े और नाजुक। तगडे बच्चे तरह-तरहके अतिचारोको सहन कर लेते है और कोई बुरा फल प्रत्यक्ष रूपमे नही देख पड़ता, पर यह विकारक्षमता भी बाहरी ही होती है। वर्धनशील बच्चे रोग उत्पन्न करनेवाले प्रभावोको जल्द ही और आसानीसे निकाल बाहर करते है, पर अगर इस कार्यमें पडनेवाली बाधा बहुत बड़ी हो तो वे दौड़मे परास्त हो जाते है।

दूसरी श्रेणीके बच्चे इस तरहके अतिचारको सहन नही कर सकते, क्योंकि उनका शरीर इतना कोमल होता है कि थोड़ी-सी अव्यवस्थासे ही उसका संतुलन नष्ट हो जाता है, ऐसे बच्चोकी देख-भालमे तगड़े बच्चोकी अपेक्षा अधिक साव-धानी बरतनेकी जरूरत पडती है, नही तो उनका शरीर कमजोर हो जाता है, नाड़ी-संस्थान दृढ़ नही हो पाता और वे मृत्युके भी शिकार हो जाते है।

अच्छा कौन ?

कुछ लोग अपने बच्चोमे और बच्चोकी-सी विशेषता न पाकर बहुत चिंतित रहते है। इस तरहकी तुलना करनेमे समय नष्ट करना बड़ी भूल है। जैसे दो पत्तियां या अनाजके दो दाने एक-से नही होते उसी तरह दो बच्चे भी एक-से नही हो सकते, इसलिए देख-भालमें भी कुछ अंतर होना आवश्यक है। अगर देख-भाल सावधानीके साथ हो तो ये बच्चे भी स्वस्थ

हो जाएगे। ये बच्चे तगडे बच्चोकी तरह न तो अधिक सर्दी-गरमी बर्दाश्त कर सकते है और न अधिक भोजन ही, इसलिए इनके सबधमें यह देखते रहना आवश्यक है कि इन्हे क्या और कितना आवश्यक है। अगर किसी चीजकी अतिशयता न हो तो इनकी शारीरिक और मानसिक शक्ति बढती जायगी। अगर सच पूछिए तो ऐसे ही बच्चे भाग्यशाली होते है; क्योंकि इन्हे अपनी परिमित शक्तिका शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है। इनके लिए अतिका फल इतना बुरा होता है कि ये शीघ्र ही मिताचारका पाठ सीख लेते है और यह ज्ञान जीवनपर्यंत इनकी रक्षा करता रहता है।

तगड़े बच्चोको भी अपनी शक्तिका पता फौरन चल जाता है और वे अपने माता-पिताको भी इसपर इतराते देखते है। इसके परिणामस्वरूप उनमे यह भ्रांत धारणा जड़ पकड़ लेती है कि हम बराबर ऐसे ही बने रहेंगे और किसी बातसे हमारी अधिक बुराई नही होगी। इस भ्रममे जीवन-यापन करनेके कारण उनके स्वास्थ्यकी जड़ हिल जाती है, इसलिए माता-पिताको अपने बच्चोको कार्योके फलाफलका ज्ञान कराकर यह तथ्य हृदयगम करा देना चाहिए कि जो लोग स्वास्थ्यके पात्र है उनका ही स्वास्थ्य स्थायी रूपसे बना रह सकता है। यह सत्य है कि बच्चे इस प्रकारकी शिक्षापर अधिक दिनोतक ध्यान नही देते, पर माता-पिताके कर्तव्यका पालन तो हो जायगा।

तगड़े बच्चोको मसूरिका, ज्वर, गलसुआ आदि रोग होते भी है तो वे इतनी शीघ्रतासे दूर हो जाते है और इतने कम कष्टकर होते है कि वे शीघ्र ही भुला दिए जाते है। माता-पिता प्राय यह नही जानते कि पोषणसंबंधी दोष—विशेषत:

अतिभोजनके कारण ही ये रोग होते है । प्राय. यह विश्वास किया जाता है कि बच्चोको ये सब रोग होने ही चाहिए । कुछ माताएं तो ऐसे रोगोके लिए अवसर भी प्रदान करती है जिसमे बच्चे इनसे जल्द पार पा जाय ।

माता-पिताका अज्ञान

बच्चोका अस्वस्थ होना माता-पिताके अज्ञान और कर्तव्य-की उपेक्षाका ही सूचक है । बच्चोके लिए ठीक रहना स्वाभाविक है और उचित अवसर मिले तो वे ठीक रहेगे भी । अगर उनके खान-पानमे कोई खराबी न हो तो सपर्क होनेपर भी छूत आदिके कारण उन्हें बालरोग नही होगे । किसी भी कीटाणुमे इतनी शक्ति नही जो विकाररहित और स्वस्थ शरीरमे पहुंचकर उसे किसी तरहकी क्षति पहुंचा सके । देख-भालमे लापरवाहीके कारण बच्चोका स्वास्थ्य खराब होनेपर ही ये तथाकथित कीटाणु शरीरमें अड्डा जमाते है । अगर बच्चोको सयत मात्रामे प्राकृतिक आहार दिया जाता रहे तो रोग उनके पास फटकनेका नाम भी नही लेगा ।

कुछ माता-पिता भ्रमवश यह विश्वास कर लेते है कि वे चाहे जो कुछ खिलाते रहकर रोगग्रस्त जानवरोकी लसीकासे बना हुआ टीका या वैक्सीन लगवाकर रोगका आसानीसे निवा-रण कर लेगे । यह बात तर्क, व्यवहार-बुद्धि और प्रकृतिके विरुद्ध ही नही, असंभव भी है । बच्चा हो या सयाना, अगर वह लगातार ज्यादती करता जाय तो कभी-न-कभी उसका स्वास्थ्य गिर ही जायगा । जिस रोगकी आशंका है वह रोग भले ही न हो, दूसरा तो हो ही जायगा ।

अकालमृत्यु क्यों ?

तगडे वच्चे ही बढकर सयाने होनेपर लापरवाह होते है और यही कारण है कि सौ वर्षोसे ऊपर चलने योग्य शरीर पाकर भी अधिकाश लोग पचासके पहले ही इस दुनियासे कूच कर जाते है। ऐसे ही लोग मीयादी बुखार, गठिया तथा वृक्क, हृदय और यकृतसबधी रोगोके, जो सब-के-सब अति-भोजनके परिणाम है, शिकार हुआ करते है। वे तो अपनेको स्वस्थ समझते रहते है, पर ये रोग बिना कोई खुली चेतावनी दिये ही पहुच जाते है। दरअसल उन्हे सच्चे स्वास्थ्यका ज्ञान ही नही होता। उनका स्वास्थ्य कामचलाऊ होता है, कोई भयंकर पीडा नही होती, पर शरीरकी अवस्था भी साधारण नही होती जो स्वच्छ और तीव्र बुद्धिका कारण है। अग्निमाद्य वरावर वना रहता है जिससे आतोमे गैस बनती रहती है और जीभपर मैल जमा रहता है। अति-भोजनके कारण रक्तचाप भी बहुत बढ जाता है। जब ये तगडे लोग अस्वस्थ होते है तो उनके लिए कुछ कर सकना कठिन ही नही, असभव भी हो जाता है, क्योकि उनकी आदतें इस कदर मजबूत और उनपर हावी हो गई होती है कि वे अपने तरीकोमे जरा भी हेर-फेर नही कर सकते। दुबले-पतले लोगोके दीर्घायु होनेकी अधिक सभावना रहती है, क्योकि जीवन-यात्राके आरभमे ही वे सावधानताका पाठ पढ लेते है। जो प्रसिद्ध व्यक्ति बहुत दिनोतक जीवित रहे है वे प्राय दुबले-पतले ही रहे है।

दंत-प्रस्फुटन

दत-प्रस्फुटन एक स्वाभाविक क्रिया है, उसमे कष्ट उन्ही वच्चोको होता है जिनका लालन-पालन अप्राकृतिक ढंगसे होता है। जुकाम हो जानेके डरसे जिन वच्चोको वहुत कम, कभी-कभी या गरम पानीसे नहलाया जाता है, वायु और प्रकाशसे वचानेके लिए जिन्हें मोटे-मोटे कपड़ोसे ढंका जाता है और जिनके वदनपर धूप नही लगने दी जाती उन्हीको दंत-प्रस्फुटनके वक्त कै होती है, हरे-पीले दस्त चलते है, ज्वर हो आता है और कई रात 'मम्मं-मम्मं' करते है। इन वच्चोमे इतनी जीव-शक्ति ही नही होती कि दंत-प्रस्फुटनकी साधारण-सी क्रिया शरीरमे विना तूफान लाये हो जाय। इसके विपरीत जो वच्चा धूलमे खेलता रहता है, धूपमें पड़ा रहता है, हवा-वयारके झोंके सहता रहता है उसकी माता जव वह प्राय. छह मासका हो जाता है तव एक सुदर प्रभातकी वेलामें देखती है कि उसके लालके नीचेवाले मसूड़ोंके बीचमें सामनेकी ओर चावलसे सफेद छोटे-छोटे दो दांत निकल आये है और धीरे-धीरे दो वर्षमें वच्चेका मुह मोतियोसे भर जाता है। जिन वच्चोकी माताका स्वास्थ्य खराव रहता है, अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करती एवं अप्राकृतिक भोजन करती है उन्हीको दांत देरसे और देरतक निकलते है।

दांत काटना प्यारका प्रदर्शन नहीं

दांत निकलनेपर मसूड़ोमे एक प्रकारकी स्वाभाविक खाज-सी चलती है और माताए दूध पिलानेके वाद जिन वच्चोका

मुह और अपना दूध साफ नही करती उनमे यह खाज ज्यादा वढ जाती है। इसे दूर करनेका सरल उपाय है वच्चेका मुह साफ करना और उन्हे सेव, नाशपाती, अमरूद-सी कोई कडी चीज कुतरनेके लिए देना। चार-पाच महीनेका होनेपर वच्चेके मसूडोको कभी-कभी उंगलीपर शहद लगाकर यदि धीरे-धीरे मल दिया जाय तो उसके दांतोको निकलनेमे सरलता तो होती ही है खाज भी नही आती। इस खाजको मिटानेके लिए वच्चेके काटनेको प्यारका प्रदर्शन समझना अपनेको धोका देना है। वेचारा वच्चा अपनी नैसर्गिक वुद्धिसे यह जानता है कि उसके दात काटनेके अपराधका दंड मिल सकता है अत. यह प्रेमाघात वह अपने माता-पिता (अधिकतर माता) और परिचितोपर ही करता है जिनसे क्षमा मिलनेकी उसे आशा रहती है। वच्चा जव दूध पीते वक्त काट लेता है तो वेचारी मा ऐंठकर रह जाती है, कभी-कभी गुस्सेमे वच्चेको परे रख देती है—छोटेसे वच्चेको इससे अधिक वह क्या दंड दे ?

वच्चे अकसर वड़े होनेपर भी काटनेकी आदत नही छोड पाते—अपने नाड़ी-दौर्वल्यके कारण। दुवली, शिथिल और चिड़चिडी माके वच्चे इस रोगके आसानीसे शिकार हो जाते है। भरे वदनके, मोटे-चिकने वच्चोको यह रोग वहुत कम होता है, उनकी नाडियोपर आवश्यक चर्वी रहती है जिससे साधारण-साधारण-सी वातोसे उनमे उत्तेजना पैदा नही होती और न उन्हे उस मुक्त-शक्तिके व्ययके लिए काटने, वकोटने या हाथ-पांव पटकने और रोने-चिल्लानेकी जरूरत होती है। रोगके ये सब लक्षण दुवले, दोषपूर्ण अथवा अपूर्ण भोजनपर पले वच्चोमे ही पाये जाते है।

स्तन-विरतिकी समस्या

स्तन-विरति कोई कठिन समस्या नही है। प्रकृतिक प्रागणमे चरनेवाली किस हिरनीको यह सोचना पडता है कि वह कव और किस प्रकार अपने वच्चेकी स्तन-विरति कराये ? कौन-सा पक्षी यह सोचता है कि उसे वच्चेको कव चुगाना वद करना चाहिए ? फिर मनुष्यकी ही इस समस्यासे टक्कर क्यो ? मनुष्य स्वयं समस्याएं उत्पन्न करता है और उनमें स्वयं उलझकर सुलझनेके लिए छटपटाता है। दत-प्रस्फुटन आरभ हुआ नही कि स्तन-विरतिकी समस्या सवार ! दात निकलना आरंभ होनेका कदापि यह तात्पर्य नही है कि वच्चेको माताके दूधकी अव जरूरत नही रही। दो या चार दांत उसे खाने या चवाने लायक नही वना देते। दात निकलना दो वर्षोतक चलता रहता है और पूरे दांत आ जानेपर ही वह पूर्णतया माताका दूध छोड़ सकता है। वच्चेके आठ-दस महीनेके हो जानेपर अर्थात् जव वह कुछ दूसरी चीजे खाने लगता है, कुछ फल-तरकारी चवाने लायक उसके दांत हो जाते है तव माताके स्तनोमं दूध कम होने लगता है। इस वक्त प्रकृति उसके पूर्ण भोजनका नही, आंशिक भोजनका ही इंतजाम करती है और धीरे-धीरे जव वच्चा पूर्णतया वाहरी भोजनपर रहने लगता है, माताके स्तनोका दूध सूख जाता है। फिर स्तन-विरतिकी समस्या कैसी ? वच्चा आसानीसे समझ जाता है, अंतमें वह अकसर दूध पीना भूलने लगता है और धीरे-धीरे अपने-आप अपनी मांको तंग करना वंद कर देता है।

पुरुषकी ज्यादती

कुछ लोगोका खयाल है कि बालकका स्तनपान-त्याग नही वरन् उसका दात निकलना ही उसकी माताके लिए पुन जननी होनेकी क्षमताका मनोवैज्ञानिक कारण होता है, पर मुझे तो इसमे पुरुषोकी मूढता और स्वार्थपरता ही दिखाई देती है। वे जरा सोचे तो कि उनकी यह सीख लोगोको कहा ले जायगी। महात्मा टालस्टायने इसी तरहके विचारोको लक्ष्य करके कहा है 'आदमीको बताओ कि उसे शराब, तबाकू और अफीमका व्यवहार करना चाहिए और वह सोचने लगता है कि ये सब चीजे उसके लिए आवश्यक है। मानो ईश्वरने सोचा ही नही था कि मनुष्यके लिए क्या आवश्यक है क्या नही, और चूकि ईश्वरने ऐसी सीख देनेवाले धूर्तोसे राय नही ली इसलिए उससे ये सब गलतिया हो गई। इन धूर्तोका खयाल है कि पुरुषको अपनी काम-पिपासाको खुलकर खेलने देना चाहिए, पर स्त्रीका गर्भवती होना, बच्चा पैदा करना और लबे अरसेतक उसे दूध पिलाना उसकी इस इच्छामे बाधक होते है। धूर्त राय देते है कि इनकी परवाह न करो, पर पशु भी यह समझता मालूम होता है कि संतानोत्पत्ति वश चलानेके लिए है अत. वह इस सबधमे कुछ नियमोका पालन करता है। केवल मनुष्य यह नही जानता और समझना भी नही चाहता। उसे तो यही चिता रहती है कि उसे अधिक-से-अधिक आनद कैसे मिले, और यह विचार उस पुरुषका है जो प्रकृतिका स्वामी होनेका दावा करता है! आप देखेगे कि पशु तभी मिलते है जब बच्चा पैदा करना होता है, पर प्रकृतिका स्वामी होनेका दम भरनेवाला

यह पुरुष जबतक उसमे इस विषयानंदके उपभोगकी शक्ति रहती है इसके पीछे पडा रहता है। वह नही देखता कि मनुष्य तथा पशुकी प्रकृतिमे भेद नही है। गर्भाधानके बाद स्त्री गर्भ वहन करती है, बच्चा पैदा होता है और उसे बच्चेको पिलाना होता है। इन अवस्थाओंमे होनेवाला समागम स्त्री तथा बच्चेके लिए हानिकर होता है; पर पुरुषकी ज्यादती स्त्रीके लिए कोई रास्ता नही छोड़ती, स्त्री अपने स्वभावके प्रतिकूल गर्भ धारण करने, बच्चेको पिलाने एवं पुरुषकी वासना शांत करनेके तीन काम साथ-साथ करती है। पतनकी इस अवस्थातक तो कोई पशु भी नही पहुंच सकता।'

दांतोंकी रक्षा

बच्चेके दातोकी सुरक्षाका प्रयत्न उनके निकलनेके बहुत पहले—कम-से-कम बारह महीने पहले—आरभ हो जाना चाहिए। सुदर मजबूत दात निकले इसके लिए शरीरकी अस्थियोको भरपूर पोषण मिलना चाहिए और यह पोषण उन्हे उस आहारसे मिलता है जो बच्चेकी माता ग्रहण करती है।

बच्चेके मसूडोमे दांतोकी नीव गर्भावस्थाके सातवे सप्ताहमें ही पड जाती है। इसी समयसे माताको करीब सेरभर दूध नित्य पीना आरंभ करना चाहिए और उसे फल-तरकारियोका, विशेषतया कुछ नीबूजातीय फलोका व्यवहार रोज जरूर करना चाहिए जिसमे उसके शरीरमे उन तत्त्वोकी प्रचुरता रहे जिनसे बच्चेके शरीरकी अस्थिया मजबूत एव दांत सुदृढ और सुदर बनने है।

दांतोंका निर्माण

बढ़िया अस्थि बनानेवाले तत्त्वोके अलावा माताके आहारमें विटामिन डी० भी प्रचुर मात्रामें होना चाहिए। यह विटामिन शरीरमे अस्थियोका ढाचा बनानेमे राजगीरका काम करता है। जिस प्रकार सुदर घर बनानेके लिए ईंटोको सजाकर—एक दूसरेपर तरतीबसे—रखना पडता है उसी प्रकार विटामिन डी० अस्थिके कोषाणुओको उचित तादादमे और आवश्यक अवस्थामे रखता है। विटामिन डी० के अभावमे अस्थि बनाने-वाले तत्त्व शरीरमें बेतरतीब इकट्ठे हो जाते है जिससे अस्थियो-

का ढाचा भद्दा—मोटा-पतला एवं सूखा-सा—तैयार होता है जिससे उसपर बननेवाला शरीर सुडौल नही हो पाता। गर्भावस्थामे इस विटामिनकी निश्चित रूपसे अधिक मात्रामे जरूरत होती है। वह स्त्रीको सीधे धूपसे अथवा और किसी रीतिसे मिलना ही चाहिए। यदि गर्भिणीको यह विटामिन उचित मात्रामे मिला तो उसके बच्चेके दात जरूर मजबूत किस्मके निकलेंगे और उसका चेहरा भी सुदर होगा, क्योकि चेहरेमे दांतो और मसूड़ोके अंदरकी अस्थियोके अलावा दो ही अस्थियां होती है जो चेहरेको बनाती है—गालोकी अस्थि और नाककी अस्थि। इन दोनो अस्थियोमे चूना (कैलसियम) गर्भके आठवे सप्ताहमे इकट्ठा होने लगता है और इनका सुघड़पन एव स्थिरता नीचे और ऊपरके जबड़ोपर निर्भर है जिनसे ये संबद्ध रहते है। अतमे जब बच्चा पैदा होता है तबतक उसकी मां उसके सारे दात बना चुकी होती है जो बच्चेके मसूडोमे छिपे रहते है।

इस प्रकार बच्चेको मजबूत एव सुदर दात देना पूरी तरह माताका काम है, पर इसके लिए माताकी दातसंबधी पैतृक सपत्ति भी अच्छी होनी चाहिए। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिकका कहना है कि यदि आप बच्चेकी अस्थिया मजबूत बनाना चाहते है तो यह काम जब बच्चेके दादा बच्चे रहे तभी शुरू होना चाहिए। इसलिए बच्चेके दातोकी हालत बहुत कुछ बच्चेके दादा एवं परदादाके दातोकी हालतपर निर्भर है।

बच्चेका जन्म हो जानेके बाद भोजन एवं अन्य नियमोद्वारा बच्चेके दातोको मजबूत बनानेका माताका काम तो पूरा हो जाता है, पर यह काम अब बच्चेके भोजन एवं देख-भालके रूपमे फिर शुरू होता है, क्योकि अब बच्चेको अपने दातोको अपने

जवड़ोमेंसे मसूड़ोको काटते हुए निकालना एव बाहर लाना होता है।

दांतोंकी सफाई

बच्चेके दात जब निकलने लगे तब माताको उनकी देख-भाल एवं सफाई करते रहना चाहिए। उसे एक पतला-सा कपड़ा नित्य जरा-सा नमक मिले पानीमे उबालना चाहिए और उसे अपनी अंगुलीपर लपेटकर बच्चेके दांतोको साफ कर देना चाहिए। इससे बच्चेके दांत तो साफ हो ही जाते है मुंहसे पाचक लार भी उचित मात्रामे स्रवित होने लगती है। अतमें जब सारे दांत निकल जायं तब बच्चेको उसके तीसरे वर्षमें उन्हे किसी मुलायम दातुन या ब्रशसे स्वयं साफ करना सिखाया जा सकता है।

दांतोंके स्वस्थ रहनेके लिए मसूडोका स्वस्थ रहना जरूरी है। मसूड़े जब सूज जाते है तो उनमें खाद्याश फँसने लगता है और सड़कर दातोको हानि पहुचाता है। मसूड़ोके अस्वस्थ होनेका कारण स्कर्वी रोग है जो भोजनमे विटामिन सी० के अभावके कारण पैदा होता है, पर जिन बच्चोको दूधके साथ फलोका रस भी दिया जाता है उनको यह रोग नही होता। रोगके कारण भी बच्चोके मसूड़े सूज जाते है, पर यह रोग उन्ही बच्चोको होता है जिन्हें कनसमेत चावलके बदले छंटे सफेद चावल एवं चोकरसमेत आटेकी रोटियों और दलियेकी जगह मैदेकी मिठाइयां या बिस्कुट खिलाए जाते है। कभी-कभी बच्चोके दातोमे पायरियासे पीड़ित व्यक्तिके चूमनेसे भी कष्ट हो जाता है। ऐसी अवस्थामें बच्चेकी उचित देख-भाल एवं चिकित्सा होनी चाहिए।

चबानेकी कसरत

चबाना भी बच्चेके दातोको स्वास्थ्य प्रदान करता है। छोटे बच्चोंको या तो तरल अथवा अर्धतरल भोजन दिया जाता है जिससे उन्हें चबानेका मौका नही मिलता। इसकी पूर्तिके लिए बच्चे कई चीजे चबाते है और कई तो हाथमे आनेवाली प्रत्येक चीजको काटना चाहते है। इसका एक वैज्ञानिक कारण है। स्वाभाविक जबड़े, जिनका चबानेसे समुचित विकास हुआ रहता है, कड़ी-से-कड़ी चीजोंको विना हानिके चबा सकते है एवं कड़ा खिचाव तथा दबाव बर्दाश्त कर सकते हैं। वे मजबूत दंत-पेशियोसे संबद्ध रहते है एवं उनपर चमकीला एनामेलकी तरहका एक द्रव्य, जो अच्छी-से-अच्छी धातुसे भी कडा और मजबूत होता है, लगा रहता है। इसलिए जबड़ोके स्वाभाविक विकास और उनसे संबद्ध अस्थियोको मजबूत बनानेके लिए चबानेकी कसरत करना आवश्यक है, तभी मुख भी सुंदर बनेगा। चबानेसे बढ़ते हुए दात अपनी जड़ोमें ठीक तरहसे बैठ जाते है और वहा रक्त-सचालन भी ठीक तरहसे होता है जिससे मसूडे भी मजबूत बनते है।

कई माताए बच्चेका चबाना देखकर घबराती है, अतः वे हर चबानेकी चीज उससे दूर रखती है और बच्चेके किसी चीजके चबाने लगनेपर वह चीज उससे हटा लेती है। फलत. बच्चा अपना अगूठा ही चबाने और चूसने लगता है, पर चबानेके लिए अगूठा बढिया चीज न होनेके कारण वह अंगूठेको ढीले तौरपर चबाने लगता है और चबानेकी कसरतके आनंदसे वचित रह जाता है।

हर बच्चेको कोई उपयुक्त चीज चबानेको देनी चाहिए। बच्चेके गलेमे कोई रबडकी कडी चुसनी सुदरसे फीतेमे बाधकर लटका दीजिये जिसमे बच्चा जब चाहे उसे चबा सके अन्यथा वह अपने हाथ-पैरका अगूठा मुहमें डालेगा। कभी-कभी उसे रोटीका कडा-सा टुकड़ा दिया जा सकता है ताकि वह उसे चूसता-चबाता रहे, पर इसमे पूरी निगरानी रखनी चाहिए।

एक सालका पूरा होनेपर, जब बच्चेका मुख मोतियोसे भर जाय, बच्चेको, विशेषकर भोजनके अतमे, सेब, अमरूद या गाजर आदि फल-तरकारी चबानेको दी जानी चाहिए। इससे चबानेका काम पूरा होनेके साथ-साथ मुख और दांत भी साफ रहते है। बिना अच्छी तरह चबाये हुए ये चीजे बच्चेके पेटमे पहुच जायं तो भी यदि बच्चा स्वस्थ है तो उसे कोई हानि नही होगी। इस ढगसे बच्चा ठीक तरह चबाना और चबानेका आनंद लेना सीखेगा और उसके चबानेके यत्र सशक्त एवं बढिया बनेगे। इस तरहकी कसरतके अभावके कारण ही बच्चोके दात ठीक नही निकलते। वे छोटे-बड़े हो जाते है और आगे चलकर खाते वक्त एक दूसरेपर ठीक तरह नही बैठते। कई तो कमजोर भी रह जाते है। मुखकी अन्य अस्थियोकी बाढ भी समुचित नही हो पाती और मुख अपनी पूर्ण सुदरताको नही पहुच पाता।

अमेरिका, इग्लैड आदि सभी समुन्नत कहे जानेवाले देशोके चिकित्सक नई पीढीके लोगोके दात देखकर चितित है। उनका कहना है कि अबके नब्बे प्रतिशत लोगोके दात खराब है और छानबे प्रतिशत बच्चोके दात स्वाभाविक स्थितिमे नही है। यह अस्वाभाविक अवस्था बच्चोके ठीक तरह चबाने और

उन्हे चबाने योग्य चीज खानेको देनेसे ही बदली जा सकती है। इस बातका प्रत्येक माताके और माता बननेवाली महिलाके गले उतर जाना जरूरी है।

माता बनना जीवनके एक मधुरतम स्वप्नका सत्य होना है और माता बनना किसी भी पराक्रम-शील कार्यसे कम नही है, इसलिए मातामें बुद्धिमत्ता और जोश तो हो ही, उसका स्वप्नद्रष्टा होना भी जरूरी है। जो ऐसा कर पाती है वही कार्यसंपन्न करनेका अद्‌भुत सुख प्राप्त करती है। आजकी माताओंकी सेवामें हमारा निवेदन है कि वे बुद्धिमानीसे काम लें, उन्हें इसका अच्छा फल मिलेगा और यह फल होगा अपने बच्चेके सुंदर स्वस्थ मुखके दर्शनका सुख जिसपर उनका ही एकमात्र अधिकार है।

अल्पवयस्क बच्चोंका आहार

(१)

बच्चोका अस्वस्थ होना ही दुखका विषय है, और जब हम यह खयाल करते है कि उनकी इस अस्वस्थताका कारण बहुलाशमे माता-पिताका अज्ञान है तो दुखके साथ ही नैराश्य भी होता है। अगर बच्चेमे माता-पितासे प्राप्त कोई दोष न हो तो उसके स्वास्थ्यका अच्छा या बुरा होना बहुत कुछ उसके आहारपर निर्भर है।

आहारके प्रकार

जिस प्रयोजनकी सिद्धिके लिए बच्चोको आहार दिया जाता है उसके तीन विभाग किए जा सकते है—(१) उनकी शक्ति बनी रहे, (२) क्षतिकी पूर्ति होनेके साथ ही वाढ होती रहे और (३) कार्यक्षमताके साथ रोग-निरोधकी शक्ति पर्याप्त मात्रामे रहे।

जो खाद्य पदार्थ दिए जाते है वे सभी उक्त सभी कार्योको नही करते, विशेष प्रकारके खाद्य उक्त कार्योमेसे कोई एक कार्य विशेष रूपसे करते है। पहले कार्यकी पूर्ति कार्वोहाइड्रेट वर्ग-वाले खाद्यसे होती है जिसमे रोटी, आलू, शर्करा, सूखे फल, मक्खन आदि परिगणित होते है, दूसरा अर्थात् वृद्धि और क्षति-पूर्तिवाला कार्य प्रोटीन-वर्गके खाद्यसे होता है जिसमे पनीर, दूध, दही, छेना, अंडा, गिरी, दाल, मछली और मांस है।

तीसरा कार्य—कार्यक्षमता और रोग-निरोधकी शक्ति—पहले दोनोकी अपेक्षा कुछ जटिल है। जितने भी खाद्य पदार्थ ग्रहण किए जाते है उन सबको इस उद्देश्यकी पूर्तिमे सहायक होना चाहिए, पर अगर छिलका निकालकर उन्हे बारीक किया गया है, मसाले आदि डालकर उन्हे जायकेदार बनाया गया है या काफी भूनकर या अधिक पकाकर तैयार किया गया है तो इस उद्देश्यकी पूर्तिमे वे सहायक नही हो सकते; क्योकि इस प्रकार तैयार करनेमे उनका रक्षात्मक तत्त्व नष्ट हो जाया करता है। फलों और तरकारियोमे, यदि उन्हे कच्चा खाया जाय तो, खनिज लवण और विटामिन अधिक मात्रामे मिलते है, फिर भी केवल तरकारियो और फलोसे काम नही चलता। जब चोकरदार आटे और मधुकी जगह मैदेकी रोटी और दानेदार चीनी खाई जायगी तो अधिक मात्रामें फल-तरकारियां खानेपर भी कार्यक्षमता और रोग-निरोधकी शक्तिका कायम रहना मुश्किल होगा।

संतुलनका अभाव

अगर बच्चोंके आहारमे उपर्युक्त संतुलन न बरता जाय, एक वर्गका भोज्य पदार्थ आवश्यकतासे अधिक और दूसरे वर्गका आवश्यकतासे कम दिया जाय तो उक्त तीनो प्रकारके कार्य समुचित रूपमे संपन्न नही होगे और उनके अस्वस्थ हो जानेकी बहुत अधिक संभावना रहेगी। आवश्यकतासे अधिक खिलाइए या कम, दोनो ही अवस्थाएं अस्वस्थताका कारण हुआ करती है और इनमेसे प्रत्येक दूसरीके बुरे असरको और बढा देती है। आजकल साधारणतः जो खाद्य पदार्थ दिए जाते है उनमे ये

दोनो बाते मौजूद रहती है, इसलिए कम या अधिक मात्रामे बच्चोमे अस्वस्थताका रहना कोई आश्चर्यकी बात नही है।

आजकल बच्चोको श्वेतसार और शर्करावाले पदार्थ अधिक दिए जाते है। अन्य आवश्यक तत्त्वोके न होनेसे एक तो यो ही वे हानिकारक हो जाते है, दूसरे उन्हे जिस ढगसे तैयार किया जाता है उसमे उनका सारा खनिज लवण और विटामिन नष्ट हो जाता है। उदाहरणके तौरपर रोटी ही ले लीजिए। चोकरदार आटेकी रोटीमे बी० श्रेणीके विटामिन काफी मात्रामे रहते है जो इसे पचानेमे सहायक होते है, अगर अधिक मात्रामे खा लीजिए तो भी इसे पचानेके लिए शरीरसे बी० विटामिनका अपहरण नही करना पड़ता, पर मैदेकी रोटीमें पचानेवाला बी० विटामिन नाममात्रका होता है, इसलिए इसे खानेपर, विशेषकर अधिक मात्रामे खानेपर, पचानेके लिए शरीरका बी० विटामिन लेना पडता है जिससे शरीरमे इस विटामिनका अभाव हो जाता है जो कब्ज या नाडी-सस्थानके रोगोका कारण होता है।

श्वेतसार और शर्करावाले ये पदार्थ जायकेदार ही बनाकर नही खाये जाते जिससे इनके पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते है, बल्कि सतुलन करनेके लिए बच्चेके भोजनमे फल, सलाद और तरकारियोकी मात्रा भी पूरी नही हुआ करती।

जब बच्चेके शरीरमे खनिज लवणो और विटामिनोंकी कमी हो जाती है तो काफी मात्रामे कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन खिलानेपर भी वह सम्यक् रूपमे अपना काम नही कर सकता। कार्यक्षमतामे कमी आनेके कारण शरीरमे मल एकत्र होने लग जाता है—ठीक उसी तरह जिस तरह प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट

अधिक मात्रामे खिलानेपर होता है। शक्तिकी इस कमीके कारण जुकाम, कब्ज, खासी, टौसिलकी वृद्धि, पायरिया आदि रोग हो सकते है। बच्चोके आहारके सबधमे विचार करते समय इस कमीपर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

उपवासका उद्देश्य

अगर बच्चेमे अस्वस्थता स्पष्ट रूपमे प्रकट हो जाय तो उसके सारे शरीरकी सफाई आवश्यक हो जाती है और इसी स्थलपर उसके उपवासका प्रश्न उपस्थित होता है। अधिकांश बच्चोंमे असंतुलित आहारके कारण एकत्र हुए मलके विषका ही असर होता है। उपवासका उद्देश्य इसी विपाक्त पदार्थको आसान तरीकेसे शरीरसे बाहर निकालना है। शरीरको पुन. सम्यक् रूपमे कार्य करने योग्य बनानेका सबसे अच्छा और सरल उपाय उपवास ही है; फिर भी यह अच्छी तरह समझ लेनेकी बात है कि केवल उपवास सब कुछ नही कर लेगा।

असंतुलित या गलत आहारके कारण बच्चेके स्वास्थ्यमे जो कमी आई है उसे उपवास पूरा नही कर सकता। बच्चोके संबंधमें विचार करते समय इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। उनके शरीरमे एकत्र विकृत पदार्थ साधारणतः कम ही और थोड़े ही दिनोका हुआ करता है इसलिए उनसे लंबा उपवास कराना ठीक नही होता।

जो कमी होती है वह कई प्रकारकी हो सकती है और वह अधिक मात्रामे भी हो सकती है, इसलिए साधारण स्थितिमें उससे लंबा उपवास कभी न कराया जाय और उपवासके बाद इस प्रकारका भोजन दिया जाय जिसमे कमी बहुत कुछ पूरी

हो जाय। इस भोजनमे तरकारिया, फल, चक्कीके चोकरदार आटेकी रोटी और शुद्ध दूध हो। ऐसा भोजन न होनेपर उपवास-का सारा प्रभाव नष्ट हो जायगा।

कुछ लोगोकी शिकायत है कि वार-वार उपवास करानेपर भी सर्दी, खासी आदिसे बच्चेका पिड नही छूटता, किंतु वार-वार उपवास कराना भी ठीक नही है, क्योकि उपवासका मतलव यह नही है कि एक वार करानेपर जितना लाभ हुआ तीन बार करानेपर उसका तिगुना लाभ होगा। प्राय इसका परि-णाम उलटा भी हो जाता है, क्योकि वच्चेको अपना स्वास्थ्य बनाए रखकर बढना भी है। एक उपवास करनेके वाद दूसरा उपवास कमीकी मात्रा और वढा दे सकता है जिससे स्थिति ऐसी खराब हो जा सकती है कि विकार जितना हानि-कारक होता उससे कही अधिक हानिकारक उपवास हो जाता है।

तीव्र रोगमे तापमान वढा हुआ होनेपर उपवास अनिवार्य हो जाता है, जीर्ण रोगोमे उपवास और उसके अनतर युक्त आहार स्वास्थ्य-लाभमे विशेष रूपसे सहायक होता है। बच्चो-को वार-वार उपवास न कराया जाय, अगर उनका खान-पान ठीक रहे तो उपवासकी जरूरत भी महसूस न होगी।

(२)

एक वर्षकी अवस्था हो जानेपर प्राय. बच्चेका स्तन-पान वंद होने लगता है। साधारण वच्चोको इसकी उतनी जरूरत भी नही रहती, क्योकि इस अवस्थामे उन्हे गायका दूध और श्वेतसार पचाने योग्य शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस समय

सवसे वड़ी समस्या यह होती है कि वच्चेको कैसे खिलाया जाय, क्योंकि वड़ी-वडी भूले होती रहनेपर रोगका होना निश्चित होता है। दो वर्षकी अवस्था होनेतक वच्चेका सर्वोत्तम आहार गायका दूध और पूर्ण गेहूं है, और कोई चीज खिलानेकी जरूरत नही है। वच्चेका भोजन जितना सादा और प्राकृतिक होगा उतना ही उसके स्वास्थ्यके लिए अच्छा होगा। जो युवक अधिक खा-खाकर अपनी क्षुधा विकृत कर लेते है वे ही तरह-तरहके व्यजनोंकी जरूरत महसूस करते है, पर बच्चों तथा साधारण अवस्थाके युवकोंके लिए भी यह सब आवश्यक नही है। दूध, पूर्ण गेहूं और फलोमे स्वास्थ्य और वाढके लिए आवश्यक सभी तत्त्व मौजूद रहते है। चाहे जैसे हो, उनका भोजन सादा ही रखिए। अगर उन्हें अच्छी शिक्षा दी जाय तो वे एक वक्त सिर्फ दूध या रोटी, तरकारी या फलसे सतुष्ट हो जायंगे।

उन्हे कुछ-न-कुछ खाते रहनेके लिए न देकर अधिक-से-अधिक तीन वार खिलाया जाय। पकवान-मिठाई कभी न दी जाय और फल दिनभर खाते रहने और जायका लेनेकी चीज न मानकर आहार माना जाय। अगर उन्हे नाश्तेका आदी न वनाया जाय तो उन्हें इसकी चाह भी न होगी। अधिक वार खानेकी आदत डालनेपर कमी होनेकी हालतमे वे तग करने लगेंगे। वच्चोमें वुरी आदत डालना वहुत आसान होता है। जो वच्चे दिनभर मिठाई आदि नही खाते रहते उनकी वाढ़ अच्छी होती है।

वच्चोको भरसक दानेदार चीनी न दी जाय, क्योंकि इससे उनकी रुचि विकृत हो जाती है और वादमें तरह-तरहकी परेशानियां होती है। खाद्य पदार्थकी दृष्टिसे भी यह अच्छी नही

होती। मिर्च-मसाले आदि खानेपर तो यह विकृति और बढ जाती है। वे इनके इस कदर आदी हो जाते है कि न तो उन्हे सादे खाद्य पदार्थोके स्वादका ज्ञान होता है और न वे उन्हे खाना ही स्वीकार करते है। फलो आदिकी ओर भी उनकी प्रवृत्ति नही होती। परिणामस्वरूप वे प्राकृतिक 'लवणसे वचित हो जाते है और यही स्वास्थ्य खराव होनेका मुख्य कारण होता है। साधारण व्यक्तियोको ऐसे वच्चे स्वस्थ जान पड़ते है,' पर दरअसल उनका स्वास्थ्य जैसा होना चाहिए उसका आधा भी नही होता।

मादक द्रव्योंसे हानि

वच्चोको कहवा या चाय कभी न दी जाय। बड़ोको भी इनसे नुकसान पहुचता है। इनसे वच्चोकी वाढ़ मंद पड जाती है और इनसे प्राप्त होनेवाली क्षणिक उत्तेजना और सुस्थता नाड़ी-सस्थानके लिए वहुत हानिकारक होती है। बढते हुए वच्चेके लिए तो कहवा तंवाकूकी ही तरह हानिकारक होता है।

मद्य पिलानेके सवधमे चेतावनी देना कुछ लोगोको अजीव-सा मालूम होगा, पर वहुतसे लोग दर्द होनेकी हालतमे तथा इस तरहके अन्य अवसरोपर मद्य पिला दिया करते है। ऐसे वच्चे जल्द ही मृत्युके शिकार हो जाते है। कुछ लोग निश्चित होकर काम करने तथा उनके कारण होनेवाली परेशानियोसे वचनेके लिए अफीम आदि खिलाकर उन्हे सुला देते है, पर वच्चे इस प्रकारके द्रव्योको सहन नही कर सकते और इसके परिणामस्वरूप वहुतसे वच्चे ऐसी नीदमे सोते है कि फिर कभी जागनेका नाम ही नही लेते। वच्चोको ऐसी चीजे न खिलानेका

होगे। चावलके सवघमे भी यही वात है। लाल चावल पालिश-दार चावलसे इतना अच्छा होता है कि दोनोमें कोई तुलना ही नही हो सकती।

दूसरा वर्ष पूरा हो जानेपर श्वेतसारकी और चीजे दी जा सकती है, पर वे ऐसे रूपमे दी जायं कि वच्चोको उन्हे खूव चवानेके लिए वाध्य होना पडे। दूध ऐसे पदार्थोके साथ न देकर पहले या पीछे दिया जाय। श्वेतसारवाले पदार्थोके साथ अम्लवाले फल कभी न दिये जायं। केवल मजबूत और खुली हवामे रहनेवाले वच्चे ऐसा योग वर्दाश्त कर सकते है, कमजोर वच्चोके लिए यह योग हानिकर होता है, पर इसका मतलव यह भी नही है कि पुष्ट वच्चोको यह योग वरावर या वार-वार दिया जाता रहे। फल खाकर दूध पीना अच्छा भोजन है। फलके साथ चीनी न दी जाय। अगर वच्चे शर्करा पसंद करते हो तो भी मीठे फल दीजिए।

डेढ़ सालकी अवस्था होनेतक वच्चोको चवाना सीख जाना चाहिए। मीठे फलोको चवाना आवश्यक है इसलिए उनके चवाने योग्य न होनेतक उन्हे सिर्फ उनका रस दिया जाय। केला भी चवाने योग्य होनेपर ही देना चाहिए। कच्चे केलेमे श्वेत-सार ही होता है, पर पकनेपर श्वेतसार नामका ही रह जाता है।

अगर वच्चोको मांस खानेका चस्का न पड़े तो यह उनके लिए कल्याणकर ही होगा। चार सालकी अवस्था होनेके पहले तो मास देनेका खयाल भी नही करना चाहिए। वच्चोके लिए अंडा मांससे अच्छा होता है, पर उन्हे देना आवश्यक नही है। दूधसे उन्हे काफी प्रोटीन मिल जायगा। पहले वहुत थोड़ी मात्रामें ही अंडा दिया जाय, दूधके साथ अडा कभी न दिया जाय;

हां, फलो और तरकारियोके साथ दिया जा सकता है। दूधके साथ अंडा देनेपर प्रोटीनकी मात्रा बहुत बढ जाती है जिससे रोग उत्पन्न हो सकता है।

गिरी भी खूब चवानेकी आदत होनेपर ही दी जानी चाहिए। इसका योग भी अडे-जैसा ही हो। छह सालसे कमके बच्चेको एक-सवा तोलेतक गिरी दी जा सकती है। बच्चे गिरी बहुत कम चवाते है इसलिए अधिक मात्रामे कभी न दी जाय। दो सालकी अवस्था होनेके पहले मक्खन या घी भी न दिया जाय। मक्खन आसानीसे पच तो जाता है, पर घनीभूत होता है। दूधसे ही काफी चिकनाई मिल जायगी।

मात्रा क्या हो ?

यह प्रश्न पुन. उपस्थित होता है कि बच्चोको कितना खिलाया जाय ? इसका उत्तर हम नही दे सकते, केवल इतना कह सकते है कि तीन बारके भोजनमे उन्हे पूरा पोषण मिल जायगा। कुछ लोगोको विष भी सह्य हो जाता है और कुछ दिनोतक इसका कोई बुरा फल प्रत्यक्ष नही होता, पर अगर उसका सेवन जारी रहे तो वह बरबाद करके ही छोड़ता है। अति-भोजनका भी यही हाल है। कुछ दिनोतक तो वह बच्चोको सह्य होता-सा जान पडता है, पर हमेशा अशांति और रोगका कारण होता है और जारी रहा तो मृत्यु भी ला देता है। बच्चे जितना खाया करते है उसका तृतीयांश या चतुर्थांश ही उनके पोषणके लिए काफी होता है, शेषांश तो कष्टका ही कारण हुआ करता है।

अस्वस्थताके चिह्न

मां-बाप अपने बच्चेंकी हालत खूब समझते हैं और माताको तो आगंतुक खतरेको समझने योग्य होना ही चाहिए। अगर बच्चेके स्वभावमें कोई अंतर देख पड़े तो वह रोगका ही सूचक होगा। कुछ बच्चोंका स्वभाव रोग होनेके पूर्व बहुत मधुर हो जाता है, पर अधिकांश इतने चिड़चिड़े हो जाते हैं कि सारे परिवार-की जिंदगी हराम कर देते हैं। रोगका हमला होनेके पहले सांस गंदी और गरम निकलने लगती है, जीभका रंग बदल जाता है और चेहरा तमतमा जाता है। चिह्न चाहे जैसे भी प्रकट हों, खिलाना फौरन बंद कर दीजिए। इससे रोगकी प्रगति रुक जायगी। ये चिह्न खराब पाचनके ही सूचक होते हैं। अग्निमांद्यकी अवस्थामें खिलाना बहुत बड़ी गलती है और निर्दयताका काम है, क्योंकि इससे कष्ट बहुत बढ जाता है। अनुचित भोजनसे ही ये चिह्न प्रकट होते हैं और अति-भोजन ही मुख्य कारण होता है। इसका उपाय भी बहुत साधारण है—कम खिलाना।

जीभपर मैल जमना अतिभोजनका ही परिणाम है। अगर जीभ साफ है तो समझिए कि पाचनक्रिया ठीक तरहसे हो रही है; अगर साफ न हो और रंग गुलाबी लाल हो तो यह अतिभोजनका सूचक होगा, अतः जीभ साफ न होनेतक मात्रा घटाये रखिए। अगर जीभके पार्श्व और अग्र भागमें दाने निकले हों तो यह महास्रोतके क्षोभका कारण होगा और इसके लिए भी आहारकी मात्रा कम करना आवश्यक है।

अगर मां-बाप इन संकेतोंपर ध्यान दें तो उन्हें बच्चेके

आहारकी उचित मात्राका शीघ्र ही ज्ञान हो जायगा। बच्चेका स्वास्थ्य खराब होना उनके अज्ञान और असफलताका ही परिचायक होगा। उन्हे अपने तई ईमानदार होना चाहिए और डाक्टरोकी तरह कीटाणु, ठढ, मौसम आदिके मत्थे दोप नही मढना चाहिए। कभी-कभी आवहवा भी बच्चोके लिए बुरी साबित होती है, पर जिन बच्चोकी देख-भाल सावधानीके साथ होती है उनका वह कुछ नही विगाड सकती।

तीन वर्षकी अवस्था हो जानेपर बच्चोको सलाद अर्थात् कच्ची तरकारिया जैसे गाजर, टमाटर, पालक, खीरा, ककडी आदि भी दिया जा सकता है, क्योकि इस अवस्थामे वे खूब चवा-कर खाने योग्य हो जाते है। सात-आठकी अवस्था हो जानेपर वे मा-वापका आहार मजेमे अपना सकते है, बशर्ते कि उनका आहार सादा हो। उत्तेजक आहार मिलनेपर या भोजनकी मात्रा अधिक होनेपर उनमे यौन-प्रवृत्ति समयसे पहले ही उत्पन्न हो जाती है और वे लुक-छिपकर और कभी-कभी प्रकट रूपमे भी बुरे काम करने लगते है। अगर मा-वापका खान-पान सादा न हो तो बच्चोका सयत और सादा आहार कुछ दिन और चलाया जाय जिसमे वे उसके अच्छी तरह आदी हो जायं। हमेशा याद रखिए कि सादगी और सयम ही बच्चोकी सतोपजनक प्रगतिका मूलमत्र है।

बच्चोंकी सुरक्षा

शिशुओंके स्वास्थ्यकी देख-भालका यह अभिप्राय है कि उनके आहार, स्वच्छता तथा उनके निमित्त किए जानेवाले प्रत्येक कार्यमें उनकी स्वास्थ्यरक्षाका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय। पाश्चात्य देशोंमें, राष्ट्रके भावी नागरिक होनेके विचारसे बच्चोंके लालन-पालनपर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है, पर अज्ञान और निर्धनताके कारण भारतमें माताएं बच्चोंकी ओर समुचित ध्यान नहीं दे पातीं जिसका परिणाम यह होता है कि संसारके अन्य देशोंकी अपेक्षा अधिक बच्चे यहां रोग और मृत्युके शिकार हुआ करते हैं। यह सत्य है कि अभी बहुत दिनोंतक हम पाश्चात्य देशोंके स्तरपर नहीं पहुंच पाएंगे, फिर भी अगर वर्तमान परिस्थितिमें ही कुछ सावधानी बरती जाय तो इस दिशामें बहुत कुछ सुधार हो जाता है।

नवजात शिशुका आहार

नवजात बच्चोंका आहार दूधके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। अगर बच्चा स्तन-पान करता है तो माताको स्तनकी स्वच्छताका विशेष ध्यान रखना चाहिए। दूध पिलानेके पहले उसका अग्रभाग बोरिक लोशनसे साफ कर लिया जाय जिससे ऊपरी गंदगी दूधके साथ बच्चेके अंदर न प्रवेश करे। रुग्णावस्थामें तो माताको दूध पिलाना बिल्कुल बंद ही कर देना चाहिए। अगर बोतलके जरिए दूध पिलाया जाता है तो दूध भरनेके पहले बोतल और उसकी टोंटीको गरम पानीमें

धोकर खूब साफ कर लेना चाहिए और भरनेके पहले दूधको भी धूल और कीटाणुओसे वचाना चाहिए। ये वातें हैं तो साधारण, पर वच्चेके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे वड़े महत्त्वकी हैं जिनकी ओर माताए वहुत कम ध्यान दिया करती हैं।

गिरना और ठोकर लगना

घरमे रोज छोटी-मोटी कितनी ही घटनाओके घटित होनेका खतरा वना रहता है। शुरू-शुरू खड़ा होकर चलनेका प्रयत्न करते समय या घरमे रखी किसी चीजसे ठोकर खाकर बच्चे प्राय गिरते हैं। आमतौरसे लोगोकी यह धारणा है कि अगर बच्चा चलते समय किसी चीजसे उलझकर या ठोकर खाकर गिरता है तो यह तो उसके चलना सीखनेकी प्रक्रियाका एक अगमात्र है। यह ठीक है, पर उसी हालतमे जव उसे ऐसी घटनाओका वार-वार शिकार न होना पडे, क्योंकि वार-वार ऐसा होनेपर उसका नाडी-सस्थान कमजोर पड जायगा और उसके मनमे अनिश्चयकी भावना वद्धमूल हो जायगी।

यो तो ऐसे वहुत कम लोग होगे जिनके कमरोमे सगमरमर-का फर्श हो या पालिशदार गच हो, पर जिनके कमरे ऐसे हो उनको फिसलकर गिरते रहनेसे वच्चेको वचानेके लिए कमरोमे साफ दरी या जाजिम विछवा देनी चाहिए। अगर जमीन कच्ची है तो वह साफ और सूखी रहनी चाहिए वरना वच्चेके स्वास्थ्यपर इसका वहुत वुरा असर होगा। कुछ लोग चलना आरंभ करनेके पहलेसे ही वच्चेको जूते-मोजे पहनाने लगते हैं। अच्छा तो यह हो कि उन्हे ये चीजे पहनाई ही न जायं, अगर पहनाई भी जाय तो दो वातोपर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाय—

एक तो यह कि जूतेकी बनावट ऐसी हो कि वह बच्चेके सीधा खड़ा होकर चलनेमे सहायक हो और दूसरी यह कि वह ऐसा कसा न हो कि पैरके विकासमे बाधक हो। पैंट या पाजामा पहनानेपर वह कमरकी पट्टीसे न बाधा जाय, क्योकि ढीला पड़ जानेपर वह बच्चेके गिरनेका कारण होगा, इसलिए पट्टी गलेवाली ही लगाई जाय।

बच्चोकी इस अवस्थामे गाडीनुमा खिलौना उन्हे गिरनेसे बचाने और चलनेमे भी सहायक हो सकता है, पर यह भी उन्हे बहुत दिनोतक मदद नही दे सकता। आरंभमे तो वे इसकी ओर बहुत आकृष्ट होते है, पर पाच-सात दिनोमे ही इसकी ओरसे उन्हे विरक्ति हो जाती है और स्वतत्र रूपसे चलने-फिरने-का प्रयास करने लगते है। इस हालतमे घरके सामानके संबधमे काफी सावधान रहनेकी जरूरत है। घरमें ऐसी कोई नोकदार चौकी या मेज न हो जिसकी ऊचाई बच्चेके बराबर हो। चलने-फिरनेकी धुनमे बच्चे ऐसी चीजोकी ओर ध्यान नही देते और टकराकर सिर घायल कर लेते है। साहसिक कार्योकी ओर बच्चोकी बहुत अधिक प्रवृत्ति हुआ करती है इस-लिए कमरेकी सजावटका खयाल छोडकर खतरेकी सभी चीजोंको अन्यत्र रख देना चाहिए या इस प्रकार रखना चाहिए कि चोट या ठोकर लगनेकी सभावना न रहे।

बिजली और सीढ़ियां

शहरके बच्चोके लिए बिजली और सीढिया कम खतरनाक नही हुआ करती। सीढियो और छतसे गिरकर आहत हुए बच्चे प्राय. अस्पताल पहुंचते देखे जाते है जिनमेसे अधिकांशकी

चोट घातक ही हुआ करती है। अचानक घटना हो जानेके वाद कही लोगोको खतरेका ज्ञान हो पाता है। विजलीका प्लक इतनी कम ऊचाईपर न हो कि वच्चेका हाथ आसानीसे पहुच जाय, क्योकि चमकीली और आकर्षक वस्तु देखनेपर अपनेको रोक सकना उसके लिए सभव नही होता। प्रथम सतान घटनाओका शिकार अधिक होती है, क्योकि माताको वच्चेकी प्रकृति और उसकी प्रगतिका विशेप अनुभव नही रहता। वच्चा अभी भोजनालयमे शातिपूर्वक बैठा दिखाई देगा और दूसरे ही क्षण, माताका ध्यान हटते ही सीढिया चढता हुआ या उनसे लुढकता दिखाई देगा। वच्चेके पास ऐसा कोई साधन तो होता नही कि वह आपको पहले ही वतला दे कि अव वह क्या करना चाहता है, इसलिए सीढियोका मार्ग वदकर या और कोई ऐसा उपाय कर खतरा दूर कर देना चाहिए। एक महिला-को गर्वके साथ यह कहते सुना कि मेरा वच्चा दो वार सीढियोसे गिरा, पर उसे कुछ नही हुआ। उसका ज्ञान केवल वाह्य स्थिति समझ सकनेतक सीमित था, उसे क्या पता कि वच्चेके अतर्मन-पर इसका क्या प्रभाव हुआ होगा। सभव है, उसके अतर्मनमे निहित सीढियोसवधी भय आजीवन वना रह जाय। वडा होनेपर जो तरह-तरहके भय मनमे वने रहते है उसका कारण प्राय शैशवावस्थाकी घटनाए ही हुआ करती है।

आग और जल

आग और जल भी प्राय खतरेका कारण हुआ करते है। प्रकाशकी चमकसे आकृष्ट होकर वच्चे उसकी तरफ वडी तेजीसे बढते है। गरम दूध और जल भी खतरा कर वैठते है।

इन सब चीजोसे उन्हे दूर ही रखना अच्छा है। उनको शांत वैठे देखकर इस भ्रममे न रहिए कि वे उनमे हाथ न डालेगें। हौज, कुएं और तालावके पास भी वे न रखे जायं। वे कुतूहलवश उनकी ओर आकृष्ट हो अपनेको घोर संकटमे डाल दे सकते है। वागमें भी वच्चेको अकेला छोड़ना ठीक नही। अगर घासपर शांत वैठा हो तो वह इससे ही संतुष्ट न होकर मौका मिलते ही कोई अनिष्टकर पदार्थं चटपट मुहमे डाल ले सकता है।

जवतक वच्चा पाच-सात महीनेका न हो जाय, उसके सिरके नीचे तकियेका सहारा भूलकर भी न दे। तकियेसे उसे सांस लेनेमे कठिनाई होती है और कभी-कभी दम घुट जानेकी भी आशंका रहती है। विस्तरपर सपाट लिटा देना ही उसके लिए स्वास्थ्यकर होता है। हां, उसके सोते समय चारपाईपर अगल-वगल कुछ रोक अवश्य हो जिसमे उसके लुढ़ककर गिरने-की संभावना न रहे। कपडेमे सेफ्टिपिन न लगाई जाय; क्योंकि वह आसानीसे निकालकर मुहमे पहुंचाई जा सकती है। सर्दीसे वचानेके खयालसे गुलूवद देना भी ठीक नही, क्योंकि वह वार-वार जमीनपर गिरकर गंदा होता रहता है और वच्चे उसे मुहमे डालकर जमीनकी गदगी अंदर पहुंचाया करते है। अगर आहार, निद्रा आदिकी आवश्यकतापर समुचित ध्यान दिया जाय तो सर्दीसे वचानेके लिए गुलूवंदकी कोई आवश्यकता भी नही रहेगी।

छोटे खिलौने, छुरी आदि

वच्चोके जीवनमे एक ऐसी अवस्था भी आती है जव वे प्रत्येक वस्तु मुहमे डाल लिया करते है, इसलिए मुद्रा, मनका या इस आकारका कोई खिलौना उन्हे नही देना चाहिए जिसे

वे मुहमे डालकर गलेमे फसा ले। बच्चे प्रायः चने या मटरका दाना नाकमें घुसाकर ऊपर चढा लिया करते हैं जिसे निकालनेके लिए डाक्टरकी सहायता लेनी पडती हैं। अगर मिठाई दी जाय तो टुकड़े या चूर करके दी जाय जिसमे वे एक ही वारमे गलेके नीचे उतारनेकी कोशिशमे गला न रूंध ले। सूजा, छुरी, कैंची आदि उनकी दृष्टि और पहुंचसे बिलकुल परे रहनी चाहिए; क्योंकि मौका मिलते ही वे उनका उलटे-सीधे, जगह-बेजगह प्रयोग करने लग जाते हैं। इस स्थलपर एक पड़ोसी सज्जनकी बात याद आ रही है। उनके शैशवकालमे एक बार उनके पिता सूजेसे किसी अखबारकी फाइल लगा रहे थे और वे बैठे-बैठे अपने पिताका यह कार्य देख रहे थे। किसी जरूरी कामसे पिताके हटनेपर उन्हे सूजेका प्रयोग करनेकी सूझी और अखबार या और किसी चीजपर प्रयोग न कर अपनी एक आंखपर ही कर लिया जिसके फलस्वरूप वे जीवनभरके लिए एकाक्ष हो गए हैं।

स्थान और परिस्थितिके अनुसार ऐसे और भी कई खतरेके कारण हो सकते हैं। संभव है, ये दुर्घटनाएं घटित न हो, पर घटित नही होगी, ऐसा भी नही कहा जा सकता। इसलिए माताको बच्चेके संबधमे सर्वदा सतर्क रहना चाहिए। कहा जा सकता है कि वह अपने सिरमें पीछेकी ओर दो आखे नही बढा ले सकती कि हमेशा बच्चेको देखती रह सके। हम मानते है कि गृहिणीके लिए गृहकार्योंको करते हुए बच्चेकी हर एक हरकतपर नजर रखना संभव नही हो सकता, पर यह तो हो ही सकता है कि घरको और बच्चेको भी बहुत कुछ ऐसी स्थितिमें रखा जाय कि खतरेकी बहुत कम संभावना रहे। बच्चेकी सुरक्षासे बढकर किसी पारिवारिक या घरेलू कार्यका महत्त्व नहीं हो सकता।

बच्चेके प्रथम दो वर्ष

नवजात शिशु कितना असहाय होता है और अपने तथा संसारके बारेमे कितना अनभिज्ञ, इसके बारेमें आपने कभी सोचा है ? अपने अंगोपर उसका करीब-करीब कोई अधिकार नही होता, अपनी आंखोको वह चीजोंपर जमा नही पाता, उसके कानमे जो आवाज पड़ती है उसका वह अर्थ नही समझता, न वह दुर्गंध-सुगंधमे ही कोई अंतर कर पाता है। उसकी रसनेंद्रियको स्वादका पता नही होता और स्पर्शेंद्रिय भी सर्वथा अविकसित होती है। ऐसे अविकसित ज्ञानेंद्रियवाले बच्चेको तो मनुष्य ही न कहना चाहिए। मनुष्य शब्द पूर्णताका बोधक है। बच्चा मनुष्य बननेके रास्तेपर होता है। यह सही है कि मनुष्यको मनुष्यकी सज्ञा दिलानेवाली ज्ञानेंद्रियोका नवजात शिशु स्वामी नही होता, पर आप लौकी या कुम्हड़ेसे उसकी तुलना नही कर सकते। बच्चेमे चेतनता होती है, नैसर्गिक-बुद्धि उसका पथ-प्रदर्शन करती है, जिसकी प्रेरणाके अनुसार वह अपने सारे कार्य करता है। नैसर्गिक-बुद्धि निम्नलिखित बातोसे प्रकट होती है—

भूख—जब भूख लगती है तो वह रोने लगता है, वह रोते-रोते अपनेको थका डाल सकता है।

भय—बच्चोंको तीन प्रकारका भय होता है—जोरकी आवाजका, गिरनेका और दर्दका।

क्रोध—हिलने-डुलने, हाथ-पैर फेंकनेकी कठिनाई होनेपर

बच्चेको बड़ा क्रोध आता है। जबरदस्ती पकडे रहनेपर वह क्रोधके मारे कापने-सा लगता है।

प्रेम—हलराने-दुलरानेपर प्रेमकी किरणे बच्चोके मुखपर प्रस्फुटित होने लगती है।

भयका आरंभ

नये पैदा हुए बच्चेका यह सही चित्र है। इतनी-सी पूजी लेकर बच्चा पैदा होता है और उसकी इस पूजीको बढाकर हमे उसे भविष्यका मनुष्य बनाना होता है और उसकी इस पूजीका हम कैसा उपयोग करते है इसीपर उसका भविष्य निर्भर है। बच्चेके बनने-बिगडनेका बहुत कुछ काम उसके जीवनके प्रथम दो वर्षोमे ही समाप्त हो जाता है। बच्चेकी इस प्राथमिक शिक्षाके सबधमे हमारे समाजमे अनेक गलत धारणाए घर कर गई है जिनकी वजहसे बच्चेको बहुत नुकसान होता है, यहांतक कि उसकी नाडिया दुर्बल हो जाती है। उदाहरणके लिए—हम सभी जानते है कि बच्चेको तेज, कड़ी आवाजसे भय मालूम होता है और कोई माता, जो नियमकी लकीरकी फकीर है, इसलिए कि बच्चेको रातभर चुपचाप सोनेकी आदत पडे, रातको एक निश्चित वक्तपर रोशनी बुझा देती है। दूसरी ही रातको बत्ती बुझानेके थोडी देर बाद बिजली कडकने लगती है और बादल गरजने लगते है। बच्चा अधेरेमे अपनी माको देख नही पाता, वह समझता है कि कमरेमे या अपने बिछावन-पर वह अकेला ही है। फिर बादल गरजते है, बच्चा भयसे सहम जाता है, वह आख फाड़-फाड़कर देखता है, पर उसे चारो ओर अंधेरा-ही-अधेरा नजर आता है। उसे अंधकारसे भय

लगने लगता है, वह अंधकारको ही उस भयंकर शब्दका कारण समझता है और रोने-चिल्लाने लगता है। माता इसे समझ नही पाती, इस विशेष रुदनपर ध्यान नही देती और वह सोचती है कि बच्चा यो ही रो रहा है, चिल्ला-चिल्लाकर, अपने-आप चुप हो जायगा, पर भय एक शक्तिशाली राक्षसके समान है—बच्चा उसके डरके मारे जोर-जोरसे चिल्लाता ही रहता है और जब कभी अंधेरेमे वह जागता है अंधेरेके डरसे रोने लगता है। इस प्रकार दो-चार बार रोनेपर मां समझ लेती है कि बच्चेका ऐसा स्वभाव ही पड़ गया है। वह दिन-रात गोदमे रहनेके लिए जिद करने लग गया है और बच्चा जिद्दी न हो जाय इसलिए मा उसके रोनेपर ध्यान नही देना चाहती। बच्चा रोते-रोते थक जाता है, उसकी नाडियां विच्छिन्न हो जाती हैं। ऊपरसे उसे अपनी मांका क्रोध भी सहना पड़ता है। कभी-कभी उसकी मां उसके चिल्लानेपर क्रुद्ध होकर उसे उठा लेती है और क्रोधमे प्यार तो होता ही नही, यो ही हिलाती-डुलाती है। भला इससे बच्चा चुप हो सकता है? मांको अधिक क्रोध आता है और वह उसे बिछावनपर पटक देती है जिससे बच्चेका रहा-सहा नाडी-बल भी नष्ट हो जाता है।

देखा आपने, बच्चा तो घड-घड, तड-तड़की आवाजसे घबराकर उठा, उसे अंधेरा-ही-अंधेरा दिखाई दिया, वह डरा और सहायताके लिए चिल्लाया, पर 'मागी रोटी, मिली लाठी'के अनुसार जब उसे रक्षा और प्यारके बदले झकझोर और क्रोध मिला और उससे जो बच्चेका मात्र आधार है तो उसे एक और बड़े भयने घेर लिया। यह नया डर मृत्युसे भी अधिक भयावना होता है। वह अपनी मांसे ही डरने लगता है, और संभवतः

वह जन्मभर अंधकारसे डरता रहेगा और साथ-साथ अपनी मांसे भी।

इस प्रकार बच्चेके हृदयसे 'मैं रक्षित हूं' यह भाव एक रातमें ही निकल गया। बचपनके प्रारंभिक दिनोंमें यह भाव माताके प्रति विश्वास और उसके प्यारमें ही सीमित रहता है और इस भावकी बच्चेके मानसिक विकासके लिए और उसे स्वाभिमानी बनानेके लिए बड़ी आवश्यकता होती है।

इस प्रकारके शिशु-शिक्षणके फल हमें रोज देखनेको मिलते हैं। ये ही बच्चे बढ़कर कायर, डरपोक, निराश, स्वाभिमान-रहित व्यक्तियोंके रूपमें हमारे सामने आते हैं। उनमें किसी प्रकारका आत्म-विश्वास नहीं होता, और बिना आत्म-विश्वासके भला जीवनकी किसी दिशामें भी कोई सफलता मिलती है? सबसे बुरी बात यह होती है कि उनमें उस प्यारका माद्दा नहीं रह जाता जिसपर कोई विश्वास कर सके, अतः वे भावुकों-का-सा जीवन व्यतीत करते हैं और फलस्वरूप दुःख और असफलताएं उनके पल्ले पड़ती हैं।

स्वार्थपरता क्यों?

क्या आपने उस माताके भी दर्शन किये हैं जिसने अपने बच्चेपर अपने जीवनको न्यौछावर कर दिया है और ऐसा करना उसके लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना सांस लेना? वह अपने बच्चेके लिए हर तरहका इंतजाम रखती है, वह अपने लाड़लेको खिलाती है, हँसाती है, कसरत कराती है। उसका बच्चा, जिससे जो चाहे, कह सकता है। घरका हर एक आदमी उसकी सेवामें हाजिर रहता है। बच्चा अधिकारीकी तरह

रहता है और सब लोग उसके मातहत बनकर। वह राजाकी तरह पलता है। ज्यो-ज्यो वह बड़ा होता है वह अनुभव करने लगता है कि दुनियाकी सभी चीजे उसीके लिए है और उसीके लिए रहेगी। उसके सोनेके वक्त कोई शोर मचाता है तो उसे चुप करा दिया जाता है, कोई उसके हाथकी कोई चीज ले ले तो झिडककर वह चीज उसके हाथसे छीन ली जाती है और बच्चेको वापस दे दी जाती है, उसे किसी प्रकारका कष्ट नही होने दिया जाता। कष्ट कैसे हो, सारी दुनिया तो उसके मातहत है। वह शाहंशाह जो है और शाहशाह कभी कोई गलती कर सकता है ?

ऐसा बच्चा आगे चलकर घमडी निकलता है। उसे किसी प्रकारका भय नही होता, आत्म-विश्वास और बढना उसके व्यक्तित्वकी विशेषता होती है। वह बेहद खुदगर्ज होता है। उसे तो यही सिखाया गया है न, कि दुनिया उसकी सेवा करनेके लिए ही बनी है। आजके सफल जीवन व्यतीत करते दिखाई देनेवाले बहुतसे लोग ऐसी ही शिशु-शिक्षाकी गलीसे गुजरते है। वे दुनियामें जो मिले उसे हडपते रहते है, उन्हे दूसरोंके अधिकारोसे कोई मतलब नही, कोई वास्ता नही।

अच्छे गुणोंका अभ्यास

सभी बच्चे भौचक राहीकी तरह इस दुनियामे आते है। हमे सहृदयता एव शातिपूर्वक उनकी सहायता करनी चाहिए। तभी वे सुदर शक्तिशाली व्यक्तित्ववाले मनुष्य बन सकेगे। ऐसे व्यक्तित्वके निर्माणका रहस्य बच्चोकी माको समझ लेना

चाहिए और इसका समझना तभी सभव है जब माताए बच्चोके अत करणको समझनेकी कला जान ले ।

तीन महीनेका बच्चा दुनियाकी चीजे पहचानना शुरू कर देता है। उसकी मा जब उसे प्यार करती है तो वह बदलेमे मुस्कराने लगता है । चार महीनेका होनेपर वह भी एक बच्चेको रोते देखकर उसका साथ देने लगता है ।

जब बच्चा छोटा होता है तब उसके हाथकी चीज ले लीजिए वह जरा भी एतराज न करेगा, पर सात महीनेका होने-पर अपनी पसदकी चीज वह कभी देना न चाहेगा, पर जैसे तीन महीनेका बच्चा अपनी माके प्यारका बदला मुस्कराहटसे देने लगता है उसी तरह वह अपना घुनघुना या गेद अपनी माको उसके मांगनेपर देना सीख सकता है । बदलेमे धन्यवाद पानेका सम्मान पानेकी आशा उसे उदार बनाती है, उसे ऊचा उठाती है । सुखमय ससार बनानेका स्वर्णसूत्र—लो और दो—उसे इस प्रकार हृदयगम करा दिया जाता है जिसके कारण आगे चलकर उसके चरित्रमे उदारताका प्रवेश होता है और उसमे अपनेको काबूमे रखनेकी शक्ति जाग्रत् होती है ।

उस दिन मैंने बीस महीनेका एक बड़ा होनहार बच्चा देखा । लोगोने उसे मुट्ठीभर फूल दिये और दूसरे बच्चोसे कहा उससे फूल मागे । उसने हर मागनेवाले बच्चेको एक-एक फूल दिया और फिर अपनी माकी गोदमे चढ़कर उसने मुस्कराते हुए अपना अतिम फूल उसे दे दिया । उसकी मुस्कराहटमे मुझे स्वर्गकी-सी झाकी मिली ।

जिस प्रकार कोई चीज देते समय बच्चा अपनेको गौरवशाली समझता है उसी प्रकार उसे कार्योके संपादनमे भी गौरवका

अनुभव करना सिखाया जा सकता है। यदि कोई अठारह महीनेका बच्चा अपने हाथसे खाने लगे और उसके इस कार्यकी समुचित प्रशंसा की जाय तो वह कार्योंको पूर्णताके साथ करने-की ओर अग्रसर होता है और इसमें उसे आनंद आने लगता है। बच्चेका काम दिनभर खेलना ही है। यदि उसे खेलनेके प्रत्येक नये प्रयासके लिए उत्साहित किया जाय, उसकी सूझकी दाद दी जाय तो इसका अर्थ यह होता है कि उसके भावी जीवनमें उसके द्वारा बडे-बड़े कार्य होनेकी हम नीवं डाल रहे हैं। हमारे बढनेमें हमारे मित्रोंकी शाबाशीका कितना हाथ रहता है?

बच्चेको किसी कामसे रोकते समय बड़ी समझदारीसे काम लेना चाहिए। उस वक्त हमें भलीभाति समझ लेना चाहिए कि बच्चा जो कुछ कर रहा है उसमे हम बाधा पहुचाने जा रहे हैं। ध्यान रहे, कड़ी रोक-थामसे और ऐसी रोक-थामसे जिसका कारण बच्चा समझ नही पाता, बच्चेमें बगावतका भाव पैदा होता है। रोक-थाम अगर और कस दी जाय, जिसके माने अत्याचारसे कम नही होते, तो आगे चलकर वही बच्चा अपने कुटुबसे, समाजसे शत्रुता करने लगता है और मौका मिलनेपर देशके साथ भी विश्वासघात तक कर सकता है।

हर एक माताको याद रखना चाहिए कि बच्चेको पूरी तरह समझना ही उसे प्यार करना है।

नेत्रोंकी रक्षा

जन्मके समय प्राय: शत-प्रतिशत बच्चोकी आखे बिल्कुल ठीक रहती है, पर यह क्या तमाशा है कि संसार छोडनेके समय-तक हम सबकी आंखे किसी-न-किसी तरह खराब हो ही जाती है। आखोकी यह क्षति और उसके कारण कष्ट क्यों उठाने पड़ते है? कारण बहुत स्पष्ट है। हम नही जानते कि आंखे खराब क्यो होती है, अत हम उन्हे नुकसानसे नही बचा पाते।

आंखकी बनावट

बहुतसे अच्छी आंखोवालोके अंधे होकर मरनेका एक खास कारण आंखोकी नाजुक बनावट भी है, इस वजहसे इसमें बड़ी आसानीसे नुकसान पहुच जाता है। बचपनमे यह खतरा और भी ज्यादा रहता है।

आखोकी जिस खिड़कीसे हम दुनियाको देखते है उसके बाहरी भागको बहिष्पटल कहते है। इसके ठीक पीछे एक प्रकारकी गाढी तरल, स्वच्छ, अत्यंत पारदर्शक वस्तु रहती है। इसके ठीक पीछे मध्यपटल होता है जो पारभासक तो होता है, पर पारदर्शक नही। मध्यपटलके भीतरकी ओर अन्त पटल होता है। इसके और मध्यपटलके बीचका अंतर भी एक स्वच्छ गाढी चीजसे भरा रहता है। जिन चीजोको हम देखते है उन-परका प्रकाश पारदर्शक और पारभासक पटलोद्वारा अंत.पटल-पर पहुंचता है। अंत.पटल एक पतली झिल्लीकी तरह होता है

जो नेत्रके गोलेपर चिपका रहता है। इससे दृष्टिसंबधी नाड़ियां भी जुडी रहती है। अत पटलपर पड़ी प्रकाश-किरणोद्वारा जो चित्र वनता है उसकी छाप मस्तिष्कपर पडती है।

पोषणकी प्राप्ति

आंखोकी तुलना फोटोके कैमरेसे की जा सकती है, फर्क इतना ही है कि कैमरा निर्जीव और आख सजीव होती है। आंखोके स्वस्थ रहनेके लिए यह आवश्यक है कि उनकी वनावटमे कोई फर्क न पड़े। उन्हे ठीक भोजन मिले और आखोके कार्य करनेमे जो कचरा पैदा हो वह साफ होता रहे। शरीरके अन्य अगोके लिए ये दोनो काम रक्त-वाहिनी नलिकाये करती है, पर यदि रक्त आखोमे पहुच जाय तो उनकी पारदर्शकता ही नष्ट हो जायगी और देखनेमे दिक्कत होगी।

तव आखोको भोजन कैसे मिलता है? यह भी एक मजेदार किस्सा है। रक्त लाल और सफेद कणो तथा एक पारदर्शक तरल पदार्थका बना हुआ होता है। कण उसी तरल पदार्थमें तैरते रहते है। रक्त स्वयम् लाल नही होता, उसमे तैरते हुए कण उसे लाली प्रदान करते है। रक्तका यह स्वच्छ भाग आंखोके चारो ओरकी नलिकाओसे निकलकर चक्षु-यंत्रके प्रत्येक भागको भोजन पहुंचाता जाता है और कचरा इकट्ठा करता चला आता है।

आंखोको भोजन पहुचनेकी यह रीति वड़ी नाजुक है और मजा यह है कि जव उन्हे भोजन नहो मिलता तो और अंगोकी अपेक्षा उन्हे अधिक हानि पहुंचती है। आखोको पूर्ण भोजन प्राप्त हो इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हे सिर्फ रक्तका

पारदर्शक भाग न मिले वरन् उन्हे पूर्ण भोजन-युक्त रक्त मिले। जब यह नही होता और जो चीज मिलती है उसमें उसकी खूराकका पूरा सामान नही होता तब उनका लचीलापन नष्ट हो जाता है, वे ढीली और कोमल हो जाती है। उस वक्त उनमे आसानीसे नुकसान पहुंच सकता है और नुकसान पहुंचनेका मतलब है, कम दिखाई देना।

बच्चेका भोजन

अब देखिए कि जब रक्तमें शरीरके आवश्यक तत्त्वोमें-से कोई या कई तत्त्व नही होते तो आखोपर इसका क्या असर पडता है। विटामिन 'ए' को ही लीजिए। इसकी कमीसे चक्षु-यंत्रके तालोंकी पारदर्शकता नष्ट होने लगती है। बच्चोको रतौंधी हो जाती है। उसका दिनमे भी देखना कठिन हो जाता है। उसे कम रोशनीमे साफ दिखाई नही देता, तो चीजे स्पष्ट दिखे इसके लिए बच्चा आंखकी मांसपेशियोको सिकोड़ता है, उनपर जोर डालता है। इससे बाहरकी तरफ वे कुछ उभर-सी आती है। यदि इसी तरह आंखोपर जोर पडना जारी रहा और विटामिन 'ए' की कमी भी बनी रही तो आंखोंके गोले प्रकृत्या मुलायम होनेके कारण लंबानमे कुछ बढ जाते है और बच्चेको दूरकी चीजें कम दिखाई देने लगती है।

युद्धके थोड़े दिन पहलेकी बात है कि अमेरिकामें एक प्रदेशके सभी स्कूलोके बच्चोकी आंखोकी खास तौरसे जांच की गई। पता यह चला कि भोजनमे विटामिन 'ए' की कमीके कारण बहुतसे बच्चोंकी आंखे खराब है। जहां गांवोंके १५ से २० प्रतिशत बच्चोंकी आंखें खराब मिली वहां कस्बों या

शहरके गरीब हिस्सोके स्कूलोके २६ से ३२ प्रतिशत बच्चो-की आखे खराब थी। इस प्रदेशमें विटामिन 'ए' प्रधान खाद्य काफी होता है, पर वह वहा खर्च न होकर शिकागो या दूसरे बडे शहरोको भेज दिया जाता है।

यदि बच्चेके भोजनमे विटामिन 'ए' की बहुत कमी हो तो आखोको बहुत ज्यादा नुकसान पहुचता है। बहिष्पटल सूख जाता है। उसमे एक तरहकी चमक पैदा हो जाती है और अंतमें उसमे सिकुडन-सी पड जाती है। इसके बाद उसपर कुछ धुधले दाग पड जाते है और बहिष्पटल पतला पड़ जाता है। इसे अग्रेजीमे 'एरोपथल्मिया' रोग कहते है।

हम अपनी बहनोको राय देगे कि वे अपने बच्चोमें अच्छी वस्तुएं खानेकी आदत डाले। रोटी-भातके साथ चीनी, दूध-में चीनी, चीनीसे भरी और चीनीकी बनी मिठाइयां खिलाकर हम बच्चोकी आंखे नही सुधार सकते, न उन्हे पापड, अचार और मैदाकी चीजे खिलाकर ही। जब ये चीजे बाजारसे खरीदकर खिलाई जाती है तो और भी नुकसान पहुचता है। अपने बच्चोंमें सादी चीजे खानेकी आदत डालिए। आप उन्हे जो कुछ प्यारसे खिलायेंगी वे खुश होकर खायेगे। यह तो आप जानती ही है कि विटामिन 'ए' दूध, दही, मक्खन, मलाई, सभी हरी तरकारियो, पीले रंगके फलो और टमाटरमे खूब मिलता है।

कुछ और भी ऐसे भोजनतत्त्व है जिनके अभावसे बच्चोकी आंखोंपर बुरा असर पड़ता है। हालमे पता चला है कि भोजनमें विटामिन 'बी' की कमीके कारण बरौनी झड़ने लगती है और आंखोंमें खाज चलती है। यदि इस विटामिनकी बहुत अधिक

कमी हो जाय तो बच्चोको मोतियाबिंदतक हो सकता है। विटामिन 'बी' शरीरकी समस्त नाड़ियोको सशक्त बनाता है। इसके अभावके कारण आखोसे संबद्ध नाडियां कमजोर हो जाती हैं । विटामिन 'बी' चोकरसमेत आटेकी रोटी, सतरेके रस, पालक, करमकल्ला, दूध, गाजर, केले और चोकरमे बहुत होता है।

भोजनमे विटामिन 'सी'की कमीके कारण कभी-कभी आखके चारो ओरकी रक्त-नलिकाएं फट जाती है और आख अपने स्थानसे च्युत होकर बाहरकी ओर निकल आती है। विटामिन 'सी'वाले प्रधान खाद्य है सेब, करमकल्ला, हरे मटर, संतरेका रस, नीबूका रस, प्याज, केला, चकोतरा, टमाटर, हरी मिर्च और आवला।

विटामिन 'डी'का सूर्यसे संबंध है। इसकी भी बच्चेके स्वास्थ्यके लिए बड़ी जरूरत होती है। भोजनमे इस विटामिन-की कमीसे अनेक रोग होते है और खास तौरसे दूरकी चीज कम दिखाई देनेका रोग हो जाता है। ईश्वरकी कृपासे हमारे हिंदुस्तानमे सालभर सूर्य भगवान्‌के दर्शन होते है। बच्चेको दस मिनटतक सवेरेकी धूपमे खुले बदन रखनेसे उसके शरीरमे विटामिन 'डी'की कमी न होगी।

रक्त-चाप आदिसे हानि

बच्चोको ठीक भोजन न मिलनेसे उन्हे अक्सर रक्त-चाप-का रोग हो जाता है। यह रोग जिस बच्चेको होता है उसकी आंखोको भी उचित भोजन नही मिलता, और आंख उठने आदिका रोग होनेका हमेशा डर बना रहता है।

निमोनिया-जैसे भयंकर रोग जब बच्चोंको हो जाते है तो उनकी आंखोको भी बहुत नुकसान पहुंचता है। यह तो दिखाई देता है कि बच्चा दुबला होता जा रहा है, पर उसकी आंखोको जो नुकसान पहुंचता है वह जबतक आंखे बिल्कुल गड्ढेमे न पहुंच जायं, उनके चारो ओर काले छल्ले न पड़ जायं तबतक सामने नही आता। इस वक्त उचित भोजन न मिलनेसे आंखोके सौत्रिक ततु मुलायम हो जाते है जिससे बहुधा पुतली एक कोनेकी ओर खिसक जाती है और नजर तिरछी हो जाती है। आंखोमे रोहे पड़ जाते है जो बड़ी मुश्किलसे जाते है।

बच्चा जब बीमारीसे उठे तो उसे स्वास्थ्यकर भोजन देनेका बहुत खयाल रखना चाहिए ताकि उसका स्वास्थ्य ठीक एवं शरीर पुष्ट हो जाय। स्वास्थ्य ठीक हो जानेपर बहुत बार रोगमे बिगड़ी आंख भी ठीक हो जाती है।

बच्चा जब दो वर्षका हो जाय तब उसकी आंखकी जांच करा ली जाय तो अच्छा है। अब ऐसा उपाय निकल आया है जिससे पढनेकी उम्रके बहुत पहले ही उसकी आखे अच्छी तरहसे जांची जा सकती है। अक्सर, बच्चोंकी खराब आखें उचित भोजन देने और आंखोकी कुछ कसरत करा देनेसे ठीक हो जाती है।

उपचार

आंखोके रोग दूर करनेके लिए जिसने जो कहा आखोमे डाल लिया, जो अंजन बताया लगा दिया—ठीक नही है। सुकुमार आंखोंके साथ यह खेल करना बुरा है। किसी प्रकारकी तकलीफ होनेपर आंखोंको किसी अच्छे जानकारको

ही दिखाना चाहिए। आखोको ठीक रखनेके लिए किसी विशेषज्ञकी सलाहकी जरूरत नही है। यदि आपके बच्चेको ठीक भोजन मिले तो उसकी आखे स्वयं स्वस्थ रहेगी।

हमारी बहनोंका लालन-पालन तो ऐसे समय हुआ था जब भोजनविज्ञानकी ये बाते ज्ञात ही नही हुई थी, अतः उनकी माताने उनको पूरी, मिठाई, चाय, चाट खानेकी आदत डाल दी थी जिससे उनमेसे कितनी ही बहनोकी आखे ही नही विगडी अनेक प्रकारसे स्वास्थ्य भी खराब हुआ, पर उन्होने जो गलतियां की है उनसे अपने बच्चोको तो बचाये। वे अपने बच्चेको स्वास्थ्यकर भोजन दे। वे जितनी चाहसे अपना पुराना भोजन करती है उससे अधिक चाहसे वह यह विज्ञानसम्मत सादा भोजन करेगा। हम जानते है कि वे अपने बच्चेपर अपने प्राण न्यौछावर कर सकती है; पर इससे बच्चेको कोई लाभ न होगा। वे अपनी शक्ति अपने बच्चेके जीवनको अपने जीवनसे अधिक गौरवशाली और अधिक बलवान् बनानेमे लगाये।

तिरछी आंखोमें एक तरफकी मासपेशिया कमजोर हो जाती हैं जिससे दूसरी ओरकी मासपेशिया पुतलीको अंदरकी ओर खीचती है। अच्छी आखपर घटे आध घटेके लिए रोज पट्टी बाध देनेसे आखकी गड़बड़ी अक्सर दूर हो जाया करती है। आख बांधकर बच्चेको दूसरे बच्चोके साथ खेलने देना चाहिए। बच्चेके भोजन करते वक्त आख वाधना ज्यादा लाभदायक है।

आत्मविकासका अवसर

मनुष्यका मस्तिष्क दुनियाकी सभी शक्तियोसे अधिक शक्तिशाली है। अनिष्ट करने और कष्ट देनेवाली शक्तियोंको मस्तिष्क ही मिटा सकता है, यह युद्धको समाप्त कर मनुष्यका जन्म-सिद्ध अधिकार स्वतंत्रता और शांति दिला सकता है, पर मस्तिष्क है बहुत नाजुक चीज। शरीरसे तो बहुत ही अधिक नाजुक। आंकड़े बताते है कि सभी शारीरिक रोगोसे पीड़ित व्यक्तियोकी संख्यासे मानसिक रोगियोकी संख्या अधिक है।

मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि मानसिक विकासकी अवधिमे हमारे जीवनके प्रथम दो वर्षोका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यही माताकी कठिनाई उत्पन्न होती है। उसके लिए बच्चेको शारीरिकसे अधिक मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करना कठिन होता है।

वैज्ञानिक जगत्मे इस बातपर बहुत दिनोसे विवाद चल रहा है कि मनुष्यकी बुद्धिका विकास उसकी हाथसे काम लेनेकी शक्तिके साथ-साथ हुआ अथवा उसका संबंध सीधे मस्तिष्कसे है। यह भी कहा गया है कि बिना हाथके उपयोगमे पूर्णता आये मनुष्यका मस्तिष्क कभी पूर्णतया विकसित नही हो सकता। बहसका फल चाहे जो निकले, पर यह तो निश्चित ही है कि मनुष्यकी बुद्धिका विकास उसके मस्तिष्क और हाथ दोनोंपर निर्भर है।

अनुभवका महत्त्व

नवजात शिशु टटोलकर अपना मुखद्वार पा सकता है और अपना अंगूठा चूसने लग सकता है। बच्चा अपने जीवनके पहले कुछ सप्ताहोतक अपनी आखे किसी वस्तुपर गडा नही पाता। उसे अपना हाथ नही दिखाई देता, उसके मुहतक अंगूठेके पहुचनेका कार्य स्वाभाविक रीतिसे हो जाता है। वह अपने हाथको इधर-उधर तेजीसे फेकता है और अंतमे उसे उसका हाथ दिख जाता है जिसे वह मुहमे डालनेकी कोशिश करता है। इसके बाद वह चूसनेमे होनेवाली गतिका अनुभव करता है। उसके लिए इस अनुभवका महत्त्व किसी अन्वेषणसे कम नही होता। उसकी बढती हुई चेतनापर यह प्रकट होने लगता है कि वह ऐसी किसी चीजको चूस रहा है जिसे उसने देखा है और वह कोई चीज उसीका अंग है। वह अपने इस प्रयोगकी पुनरावृत्ति वार-बार करता है।

प्राय. बच्चेकी मा अपने बच्चेका अगूठा चूसना देखती है, उसे चिता हो जाती है कि कही बच्चेको यह बुरी आदत लग न जाय। वह जब-तब बच्चेका हाथ पकड़कर उसके मुंहसे अंगूठा निकाल देती है। अपनी माताकी इस सेवाके उपहारस्वरूप बच्चा उसे अपनी चिल्लाहट और क्रोधका उपहार प्रदान करता है। बच्चेके मानसिक उद्योगका यह प्रयास, एक कार्य करनेका उसका साहस, कुचल दिया जाता है। इस तरह माता अपने बच्चेके साथ एक युद्धका आरभ कर देती है और यह विनाशक युद्ध बच्चेके बाल्य-जीवनपर्यंत चलता रह सकता है।

मस्तिष्कका विकास

आरंभमें बच्चेके मस्तिष्कका कार्य उसके पास रहनेवालो एवं उनके संबंधपर निर्भर रहता है । उसके मस्तिष्कका विकास और उसका स्वास्थ्य लोगोंके इस संबंधद्वारा उत्पन्न मनोवैज्ञानिक वायुमंडल, उसकी समझ, सहायता और प्रेमपूर्ण पथ-प्रदर्शनपर निर्भर है ।

बच्चा अपने हाथसे कोई काम ले सके, उसकी पेशिया और नाड़ियां इस कदर विकसित हो जायं कि वह अपने हाथसे अथवा चम्मचसे ग्रास उठाने जैसा कठिन और दुस्तर कार्य कर उसे मुंहमें सफलतापूर्वक ले जाय, इसके पहले उसे अपने छोटे-छोटे हाथोंसे महीनो उद्योग और अभ्यास करनेकी जरूरत होती है । अपने इस प्रयासमे उसे जितनी बार सफलता मिलती है उसे उतनी बार एक काम पूरा कर लेनेका सात्त्विक आनद प्राप्त होता है । चित्रकारको उसके चित्रके बोल उठनेपर जो आनंद प्राप्त होता है अथवा सितारियेको अपने हृदयके भाव तारोंपर तरंगित हो उठनेपर जो आनंद मिलता है ठीक वही आनद इस समय बच्चेको मिलता है ।

कार्यकी पूर्णताका आनंद जितना मस्तिष्कको विकसित करता है उतना ही वह मस्तिष्कके लिए स्वास्थ्यकर भी है । बच्चेके कार्य और उसकी सफलताका संसार उसकी अपनी निजी सहायतातक परिमित है और अपने संसारमे आनंद प्राप्त होना उसके लिए अतीव आवश्यक है । उसकी माता उसके इस संसारकी शिक्षिका है, उसे बच्चेको अपने कार्यसे मिलने-वाली सफलताके आनंदमे हिस्सा बटाना चाहिए और उसे

वच्चेको अपना कार्य करते रहनेके लिए उत्साहित करना चाहिए। बच्चा सफलता प्राप्त करे इसके लिए उसे इस खूराक-का मिलते रहना आवश्यक है, पर यह कार्य माताके लिए बड़ा कठिन और उबा देनेवाला है, फिर भी बच्चेके प्रति उसका स्वाभाविक प्यार उसमे अखड उत्साह भरे रहता है।

वच्चेको अपने उद्योगमे बडे धैर्यसे काम लेना पडता है, क्योकि उसकी उन्नतिकी गति बडी धीमी होती है। उदाहरणार्थ वच्चेको चम्मचसे काम लेनेमे क्या-क्या कठिनाइया होती है, इसे एक वाल-विज्ञानविशारदने संक्षेपमे इस प्रकार गिनाया है—

"मनुष्यके सास्कृतिक विकासके जीवनमे चम्मचका प्रवेश अभी हालकी चीज है। वच्चेको हाथ और मुह तथा चम्मचको औधा और सीधा, खाली और भरा होनेके अतरको समझना होता है। सस्कृतिकी इस नवीन उपजके भारको अपने मुख-विवरतक सफलतापूर्वक पहुंचानेके लिए बच्चेको आख और मुखकी मांस-पेशियोको साधकर अपने हाथ, सिर, गले और कमरके अंग-विन्याससे समन्वय करना पडता है।"

वच्चा तीन महीनेका हो जानेपर चम्मच पहचानने लगता है और उससे भोजन ग्रहण करनेके लिए मुह खोलने लगता है। छह महीनेका होनेपर चम्मच अपने मुंहमे लेनेके लिए वह जरा झुकने लगता है और हाथमे देनेपर चम्मच पकड़ने लगता है। नौ महीनेका होनेपर वह चम्मच उलटने-पलटने लगता है और एक हाथसे दूसरे हाथमे लेने लगता है।

सीखनेका स्वाभाविक ढंग

अपने दूसरे वर्षमे वह चम्मचसे खाना सीखने लगता है,

पर यह सीखनेमे उसे असफलताओंके कितने गोरखधंधे तोड़ने पड़ते हैं। कभी वह उसे वीचमें पकड़ लेता है, कभी सिरा मुंहमे डालता है, औंधे चम्मचसे भोजन उठानेकी कोशिश करता है, भोजन चम्मचसे गिरकर उसके पैरोपर पड़ जाता है। कुछ ऐसी ही वातें उसके हाथसे खानेपर भी होती हैं। वच्चेको वार-वार घवराहट और तकलीफ होती है, पर यदि मा अपने हाथसे वच्चेको खिलाने लगे तो भला कही वच्चेको चम्मचपर आधिपत्य प्राप्त हो सकता है ? अत. वच्चेको हमेशा अपने हाथसे खाना सीखने देना चाहिए।

यदि वच्चा दस महीनेका होनेतक मांका दूध पीये और इसके वाद दिनमे चार वार खाये-पीये तो उसे दो वर्षका होनेतक स्वय खाना सिखानेके लिए माताको करीव सत्रह सौ कठिन मौके मिलते है। वच्चा भोजन और भोजनके वर्तनोसे खेलनेकी कोशिश करता है—और यह सीखनेका स्वाभाविक रास्ता है, पर यदि वच्चा मनुष्यका हो या पशुका, उत्तेजित हो जाय, क्रुद्ध हो जाय या वह डर जाय अथवा उसका ध्यान भोजनके प्रधान कार्य क्षुधाकी शांतिकी ओरसे हट जाय तो वह कभी अच्छी तरह नही खायगा।

वच्चोको खाना सिखानेकी श्रेष्ठ विधि, जो अवतक जानी जा सकी है, यह है कि पहले वच्चोको अपने हाथोसे इतना खिला-पिला देना चाहिए कि उसकी क्षुधा शांत हो जाय और फिर उसे अपने हाथ चम्मच, कटोरी, प्याले, थाली भोजन आदिके साथ अपने प्रयोग खुलकर करने देने चाहिए और माताको चाहिए कि जव वच्चा अपने डगमगाते हाथो और अपने अविकसित शरीरको वशमे करनेकी कोशिश करे तो वह

उसे यह सब खुशी-खुशी करने दे और उसे इसके लिए उत्साहित करती रहे।

माताको जानना चाहिए कि नाडियो और पेशियोका विकास और उनपर अधिकार बहुत धीरे-धीरे ही प्राप्त होता है और उसे उसी धैर्यसे अपने बच्चेकी सहायता करनी चाहिए जिससे गायन और विभिन्न वाद्योके आचार्य अपने शिष्योंको सिखाते समय काम लेते है। उनके जल्दी करनेसे कुछ नही हो सकता। सीखनेका काम अकेले शिष्योको ही करना होता है।

स्वावलंबनका अभ्यास

जितना समय बच्चेको खाने और अपना कपड़ा पहननेमे लगता है उससे बहुत थोड़े समयमे मां अपने बच्चेको खिला-पहना दे सकती है, पर उसके बच्चेको इससे न तो कार्य-सपादनसे मिलनेवाला आनंद प्राप्त होगा और न वह आगे चलकर अपनी शक्तियोका भलीभाति उपयोग कर सकेगा। इस विधिके उपयोगसे बच्चेकी कुछ करनेकी नैसर्गिक इच्छा मद पड़ जाती है और उसे काम करनेमे न मजा आता है और न उसमे उसे आनद मिलता है। ऐसे बच्चे आलसी, निराश, अतर्निर्दिष्ट चित्त और मिलनसारीसे दूर होते है—फल यह होता है कि उनका मानसिक स्वास्थ्य विनष्ट हो जाता है। ऐसे बच्चेको जिदगीभर अपने कार्यों, अपने बडो और अतमे अपने सारे संसारसे युद्ध करते रहना पड़ता है।

बच्चेका अपने प्रत्येक कार्यसे वही सबध होता है जो सबध उसका चम्मचसे बताया गया है। चम्मचका उदाहरण यहा केवल एक संकेतकी भांति समझना चाहिए।

मूर्ख माता सबेरे बच्चेको उठाती है, कपडे पहनाती है, खिलाती-पिलाती है और बच्चेको, जो वह चाहे, करनेको छोड़ देती है। फिर जब खानेका समय होता है तब बलपूर्वक वह बच्चेको उनसे छुडा ले जाती है और अंतमे रातको सुला देती है। उसके ये कार्य बच्चेको मानसिक रोगी बनाते है।

बुद्धिमती माता बच्चेके इन्ही सब कार्योंको स्वय करनेमे सहायक होती है, उसे सिखाती है और बढ़ावा देती है। वह उसके सभी कार्योंमे खुशी-खुशी सहयोग करती है, उसके अपने ससारपर पूर्ण प्रभुत्व पानेमे सहायक होती है, जब उसका बच्चा किसी कार्यको पूरा करता है तो उससे आनदित होती है और इस प्रकार वह अपने बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यकी पुष्ट नीवं बचपनमे ही डाल देती है और यह अस्त्र उसको जिदगीभर संसार-युद्धमे मदद देता है।

मानसिक स्वास्थ्यका विश्लेषण करनेपर केवल इतनी-सी तो चीज निकलती है—"व्यक्तिका उसकी परिस्थितियोसे सफल सामंजस्य"। भोजन, कपड़ा, सोना, नहाना और चलना ही बच्चेको एक खास परिस्थितिसे सफल सामंजस्य स्थापित करनेमे सहायक हो सकें तो माता बच्चेको अपने संसारमे विजय पानेका बड़े-से-बड़ा अस्त्र दे देती है। ऐसी माताके लिए कहा जा सकता है कि उसके वे हाथ जो पालना झुलाते है, वस्तुत. संसारका राज्य करते है।

शिशुओंका शिक्षण

दंड भयकी भित्तिपर प्रस्थापित है। जिस दडसे भय न लगे वह दंड नही है।

नवजात शिशु केवल दो चीजोसे डरता है . गिरनेसे और जोरकी आवाजसे। केवल ये दोनों डर जन्मजात होते है, आगे चलकर वच्चा जिन और चीजोसे डरने लगता है उनसे डरना वह यहां सीखता है।

भयका आरंभ

वच्चा आरामसे अंधेरे कमरेमे सो रहा है, बिजली कड़कती है और वह चौक उठता है। बिजलीकी कड़कड़ाहट उसे डरा देती है और वह चिल्ला उठता है। अव अंधेरेको वह दूसरी ही दृष्टिसे देखने लगता है; क्योकि अव वह अंधेरेका संवंध बिजली-की कड़कड़ाहटसे जोड़ता है। अव वह अंधेरेसे डरने लगता है। इस प्रकारके डरको मनोविज्ञानवेत्ता गुण-भयके नामसे पुकारते है। बचपनमे सीखा हुआ यह अंधेरेसे डरना मनुष्यकी जिंदगीभर चलता रह सकता है।

वच्चेके लिए और उसके आसपास रहनेवालोके लिए जो कार्य हानिप्रद हो उससे बच्चेको दंडके आधारपर डरना सिखाने-की जरूरत होती है, पर यह कार्य वड़ा कठिन है, क्योकि उसे हमारी इच्छित वस्तुसे डरना सिखाना लगभग असंभव है। गलत और सही वस्तुको समझनेमे वह हमेशा गड़वड़ी करता है, अत. जिस चीजसे न डरना चाहिए, उससे ही वह डरने लगता

है। इस प्रकार यदि वह बहुत-सी चीजोंसे डरने लगे, तो फल यह होगा कि उसका जीवन दु खद हो जायगा, नाडियां दुर्वल हो जायगी और वह रोगी हो जायगा। सुरक्षाकी दृढ आशाके साथ-साथ खतरेकी पूरी समभदारीकी नीवपर ही स्वस्थ मस्तिष्कका निर्माण होता है। अनेक चीजोंसे डरते रहने एवं अपनेको अरक्षित दशामें समभनेसे बच्चेका दिमाग कमजोर हो जाता है।

उदाहरण लीजिए—बच्चा अठारह मासका होनेपर चम्मच अच्छी तरह पकड़ने लगता है और उससे मजेमें खाने लगता है। बच्चा अपने पिताके साथ बैठा खा रहा है और चम्मच भर-भरकर शानसे दूध पी रहा है। इसका उसे अभिमान है कि वह बिना अपना कपड़ा बिगाडे दूध पी सकता है। अब वह कुछ और बड़ी चीज करना चाहता है। वह देखता है कि उसके पिताकी कटोरीमें दाल भरी हुई है; उल्लाससे भरा हुआ वह कटोरीकी ओर भुकता है और अपना चम्मच दालसे भर ही तो लेता है और सफलतापूर्वक दाल अपने मुंहमें डाल भी लेता है और इस नई सफलतापर शानसे मुस्कराने लगता है। इतनेमें ही उसे डाट पड़ने लगती है। एक जोरका भटका उसके हाथपर लगता है और उसका चम्मच उसके हाथसे छूटकर परे जा पड़ता है। बच्चा डरके मारे रो पड़ता है।

बेचारा बच्चा तीन महीनोंसे अपने हाथसे भोजन करनेके आनंदके लिए उस चम्मचसे बराबर भगड़ता रहा है। अब तो वह चम्मचसे ही डरने लगता है। उसे छूनेसे भी इन्कार करने लगता है। मार और चम्मचका उछलना उसकी समभमें ही नहीं आता। स्वय भोजन करनेका उसका सारा आनंद ही चला जाता है।

मैंने इस तरहका अनुभव किये एक संवेदनशील लडकेको महीनोतक चम्मच छूनेसे इन्कार करते देखा है—इस बच्चेको एक छोटे बच्चेकी तरह उसकी दादीको अपने हाथसे खिलाना पडता था। चम्मचके प्रति उसके मनमे गुण-भय उत्पन्न हो गया था। उसे यह भी समझमे नही आया कि दालभरी कटोरी उसके पिताजीकी थी और उसे उस कटोरीको जूठा नही करना चाहिए था। यदि माता चतुर न हो और वह यह न समझ सकती हो कि लोग जो कुछ बच्चेको समझाना चाहते है उसे उसका बच्चा किस हदतक समझ सकता है तो इस तरहके बहुतसे डर बच्चा बचपनसे ही पालने लगता है।

शिक्षणका ढंग

छोटा बच्चा पथसे डरता, आगे बढता न जाने किस अज्ञात स्थानसे हम लोगोके पास आता है। वह न तो हमे जानता-पहचानता है, और न हमारी रीति-रिवाजको ही समझता है और हम लोगोकी आज्ञाका पालन करना भी वह बहुत धीरे-धीरे सीखता है। वह पूर्णतया हमारी दयापर निर्भर रहता है, उसे सभ्य बनानेके लिए हमे उसके साथ कम-से-कम वैसा व्यवहार तो करना चाहिए जो हम अपने एक ऐसे अतिथिके साथ करेंगे जो हमारी भाषामे न बोल ही सकता है न समझ ही सकता है। बुद्धिमती माता बच्चेको सिखानेका काम बहुत नम्रतापूर्वक करती है। उसे याद रखना चाहिए कि 'दुनियाका न कोई आदमी इतना बुद्धिमान् है और न भला ही जो किसी दूसरेपर शासन करनेका अधिकारी समझा जाय।'

जिस बच्चेका पालन-पोषण उचित ढंगसे किया जाता है

वह नियमप्रिय होता है। मेरे इस कथनमे लोगोंको कुछ विरोधा-भास-सा प्रतीत होगा, पर असलियत यही है और इसीमे बच्चोके पालनका सारा रहस्य छिपा हुआ है। बच्चा नियमप्रिय हो, इसके लिए उसे पहले सिखाना और समझाना होगा, उसका संस्कार करना होगा। इसके बाद नियम भंग करनेके फल दंडकी जरूरत ही नही रह जायगी।

आज्ञा-पालन

बच्चा कुछ सीख सके इसके लिए यह जरूरी है कि वह आज्ञाओंका पालन करे और उसमे दूसरी अच्छी आदतोंकी तरह आज्ञापालनकी आदत भी डाली जानी चाहिए; पर यह आदत हुक्मके बलपर नही डाली जा सकती। बच्चेकी जरूरतें उससे फुसलाकर ही जानी जा सकती हैं, डांटकर नही पूछी जा सकती। 'बाबू आओ खा लो!" "चलो घूमने चलें।" "बच्चा, अपने खिलौनेसे खेलो!"—कहा, जरा कंधेपर थपथपाया, थोड़ा मुस्कराये और बच्चेने हामी भरी और इसके साथ ही लोगोके साथ उचित व्यवहार करनेके बीज उसमे पड़ गये, उसके बाल-संसारमे आनंदका उद्‌भव हुआ और वह दूसरी अच्छी आदतोके ग्रहण करनेके पथपर लग गया। आदत ग्रहण करनेका स्वभाव बच्चा अपनी रगोमे लेकर पैदा होता है।

केवल दडके बल बच्चोसे बुरी आदते नही छुडवाई जा सकती। एक बुरी आदतके बदले बच्चेमे कोई दूसरी अच्छी आदत डालनेसे बुरी आदत स्वय चली जाती है। उदाहरणके लिए यदि बच्चा भोजनके लिए बुलानेपर अपने खिलौने छोड़कर आनेसे इन्कार करता है, तो उसकी यह आदत याद रखने योग्य

है। अब चाहिए यह कि भोजनके समयसे थोड़ा पहले बच्चेसे भोजन करनेके लिए चलनेको नही वरन् रस्सी कूदनेका खेल खेलनेके लिए चलनेको कहा जाय। खिलौनोसे खेलनेके बजाय रस्सी कूदनेमे थकान जल्दी आती है और इस खेलसे संतोष भी जल्दी हो जाता है। अब बच्चेको भोजन करनेके लिए चलनेको कहिए, वह तुरत आपके साथ हो लेगा।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चा यकायक सोनेके लिए बिछावनपर जानेसे ही इन्कार करने लगता है। ऐसी नाहीका कारण जान सकना जरा कठिन होता है। मूर्ख माता-पिता कभी-कभी रोते बच्चेको उसके रोनेका कारण न ढूढकर अधीरावस्थामे उसे खाटपर पटक देते है और रो-चिल्लाकर स्वय चुप हो जानेके लिए छोड़ देते है। इस प्रकारका केवल एक अनुभव उस बच्चेको, जो खुशी-खुशी अपने बिछावनपर जाकर सोता था, बिछावनसे डरा देता है। बच्चेके पेटमे दर्द था, उसके इस दर्दको दूर करनेका कोई उपाय न कर उसे बिछावनपर पटक दिया जाता है, बच्चा बिछावनको ही पेटके दर्दका कारण समझने लगता है, वह पेटके दर्दका संबंध बिछावनसे जोडने लगता है और वह बिछावनके विरुद्ध हो जाता है।

बचपनके अनुभव

यह समझना तो कठिन है कि बच्चा इन चीजोंका अनुभव कितनी स्पष्टतासे करता है, पर अधिकतर लोग जानते हैं कि बचपनके कुछ अनुभव बड़े महत्त्वके होते है और उनका असर जीवनभर रहता है। प्राय. सभीने देखा है कि बच्चा लालटेनके पास लड़खड़ाता हुआ पहुंचता है और वह लौको

पकड़नेके प्रयासमे चिमनीको छू देता है—वह रोने लगता है और फिर वह लालटेनके पास नही जाता। अनुभवने लालटेनसे उसे डरना सिखा दिया और जिस तरह आप खतरे-की चीजें बच्चेकी आंखोसे दूर रखकर बच्चेको उनसे बचाते हैं, उसी तरह आप अपने बच्चेको बुरी आदतोंके खतरोसे उन्हे बुरी बातोसे दूर रखकर बचा सकते हैं। उसे इतना थकने मत दीजिए कि थकानके मारे रोने लगे, ऐसी परिस्थिति ही उत्पन्न न होने दीजिए कि उसे क्रोध आये। उसे संतुलित भोजन दीजिए, कसरत कराइये, शुद्ध वायुमे रखिए, उसके शरीरको नित्य सूर्यकिरणोको चुमने दीजिए, उसमे चिडचिड़ापन उत्पन्न न होगा। पूर्ण स्वस्थ बालकका जैसा सुदर स्वास्थ्य होता है, वैसा बढिया स्वभाव इस पृथ्वीपर किसी दूसरेका मिलना असभव है। बच्चेको ठाला न रहने दीजिए कि 'शैतान' उसे शरारत सिखाये। उसे कुछ करते रहने दीजिए। किसी खिलौनेसे खेले या कोई खेल खेले। छोटे बच्चोको तो खास तौरसे किसी काममे लगाये रहिए।

इस सारे कथनका तात्पर्य यह है कि सब कुछ पूर्ण व्यवस्थित ढंगसे हो और सभी माताएं चाहती हैं कि वे अपने बच्चेकी पूर्ण माता बने। यदि वे बच्चेके जीवनमे उस शिक्षककी तरह रस ले जो अपनेको बच्चोका मित्र बना देना चाहता है, तो वे निश्चय ही अपने बच्चेकी पूर्ण मां बन सकती है। माताओको यह भी जान लेना चाहिए कि बच्चेसे मनचाहा करा लेनेके लिए उनके सुकोमल प्यारसे शक्तिशाली चीज दुनियामे दूसरी नही है।

स्वास्थ्यसंबंधी नियमोंका ज्ञान

मै रोज अपने दातोको क्यो साफ करूं ? खानेके पहले हाथ क्यो धोऊं ? इस तरहके प्रश्न बच्चे प्राय. किया करते है। जो माताए शिक्षित और समझदार है वे बच्चोके मनमे स्वास्थ्यसंबंधी नियमोका पालन करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न करना चाहती है और यह महसूस करती है कि बच्चोको ऐसी बातोका कारण बतलाना अधिक प्रभावोत्पादक होगा।

दांतोंकी सफाई

कारण न मालूम होनेपर बच्चे नियमोको भंग करते रहते है और जल्द ही उन्हे भूल भी जाते है, पर अगर कारण मालूम रहे तो इसकी सभावना कम रहती है। 'मै चाहती हूं कि तुम रोज प्रात काल दातून किया करो'—इस तरहके आदेश बच्चोके लिए निरर्थक प्रमाणित होते है, पर अगर उनको यह समझा दीजिए कि अच्छी तरह चबानेसे खाना जल्द पचता है और इस चबानेकी क्रियाके लिए दांतोंका मजबूत और बढिया रहना जरूरी है, तो वे आसानीसे यह शिक्षा ग्रहण कर लेगे, और अगर आप यह भी हृदयंगम करा दे कि चमकते हुए दात मोती-जैसे सुदर और आकर्षक होते है, तो वे इस उद्देश्यको ध्यानमे रखते हुए रोज दातून करने भी लगेगे।

भोजनसंबंधी स्वच्छता

अब खानेके पहले हाथ धोनेकी बात लीजिए। बच्चोको

विशेषकर लड़कोंको—दैनिक कृत्यसंबंधी यह बात हृदयगम करानेमे बहुत अधिक समय लगेगा। आप भोजनके समय उन्हे बतलाइए कि गंदगी और उसमें रहनेवाले कीटाणुओंके खाद्य पदार्थमे प्रविष्ट हो जानेपर वह बहुत हानिकारक हो जायगा और अगर खानेके पहले हाथ न धोया जाय तो इस तरहकी खराबी होनेकी बहुत अधिक संभावना रहेगी। अगर माता गंदे हाथोसे खाना परसती है या खाना बनानेमे सफाईका ध्यान नही रखती है तो इस तरहके उपदेशसे कोई लाभ नही होगा। इसलिए बच्चोके सामने कोरा उपदेश न रखकर उदाहरण भी रखा जाना चाहिए। इस तरीकेसे दुराग्रही-से-दुराग्रही लड़का भी तथ्य ग्रहणकर अच्छे नियमोके पालनपर ध्यान देने लगेगा।

अंदरकी सफाई

अंदरकी सफाई भी बडे महत्त्वकी चीज है। खराबीका भय दिखलाने या डांट-फटकारसे इस उद्देश्यकी पूर्तिमे कोई सहायता नही मिलती। 'शौचादि नित्य क्रियाओको नियमित रूपसे किया करो, नही तो रोग हो जायगा'—इस तरहकी बात बच्चोके मनमे भय उत्पन्न कर देती है, और भय प्राय. कब्जका कारण हुआ करता है। उन्हे समझाइए कि नित्य क्रियाओंको नियमित रूपसे करनेसे अंदरकी सफाई ठीक उसी तरह होती है जिस तरह नहाने-धोनेसे बाहरकी सफाई होती है। उन्हें यह भी समझाइए कि किस प्रकार उपयुक्त आहार—ताजा फल, तरकारियां, चोकरदार आटा, सलाद—पेटकी सफाईमे मदद करता है और ठढा जल कैसे कब्ज दूर करनेका सर्वोत्तम साधन है।

व्यायामकी प्रवृत्ति

आजकलके बच्चोको व्यायाम—विशेषकर टहलना—बहुत खलता है। 'मै बस या और किसी सवारीका उपयोग क्यो न करूं ? मै पैदल चलना पसद नही करता। बेकार ही पैरोको क्यो थकाने जाऊ ?'—इस तरहके भाव उनके मनमे उठा करते है। उन्हे समझाइए कि ताजी हवामे टहलना—इससे होनेवाला पेशियोका व्यायाम और इसके कारण फेफड़ोंमे भरनेवाली ताजी हवा किस प्रकार स्वास्थ्यदायक होनेके साथ-साथ शक्तिवर्धक भी होती है।

ताजी हवाकी प्राप्ति

अब ताजी हवाकी आवश्यकतापर आइए। जिन बच्चोका पालन-पोषण शैशवकालसे ही हवादार जगहमे हुआ है वे तो इसके आदी हो जाते है और इसका महत्त्व भी कुछ-कुछ समझते है, पर बहुत-से लड़के ऐसे भी मिलेगे जिनको इसके महत्त्वका जरा भी ज्ञान नही होगा। वे पूछ बैठेगे 'कमरेकी खिड़किया क्यो खुली रखी जाय ? मै बाहर न निकलकर अंदर ही क्यो न बैठा रहू ?' अगर कोई बाधा न हो तो उन्हे रोज मैदानमें ले जानेका प्रयत्न कीजिए जिसमे वे कुछ बडे होनेतक इसके अभ्यस्त हो जायं।

निद्राकी आवश्यकता

अधिकांश बच्चे तो जल्द ही सो जाते है, पर कुछ ऐसे भी होते है जो अनाप-शनापमे लगे रहकर जल्द सोनेका नाम ही नही लेते। बिना कारण बतलाए जल्द सोनेके लिए हठ करने

या न सोनेपर झिड़कनेसे काम नही चलेगा। मनोरंजक ढंगसे उन्हे समझाइए कि बाढ़के लिए निद्रा क्यो आवश्यक है और शरीरके विभिन्न अग निद्रामे कैसे अपने क्षयकी पूर्ति और नव-जीवन प्राप्त करते है और अगर वे पूरा सोये तो शरीर और मस्तिष्कका विकास जैसा होना चाहिए वैसा क्यो नही होगा।

स्वास्थ्य और भविष्य

अब सब प्रश्नोंका एक प्रश्न उपस्थित होगा कि 'अच्छा स्वास्थ्य ही इतना क्यों आवश्यक है ?' इस प्रश्नके समाधानके लिए माताको भविष्यसे इसका संबंध जोड़ते हुए चतुरताके साथ बतलाना चाहिए कि जीवनके किसी भी क्षेत्रमे सफलता प्राप्त करनेके लिए स्वास्थ्य ही सबसे अच्छा साधन होता है और चूकि यह बड़ी देन है इसलिए इसकी उपेक्षा न कर साव-धानीके साथ इसकी रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार स्वास्थ्य-संबंधी दैनिक नियमोकी शिक्षा देने और शरीरको रुग्ण तथा अयोग्य बनानेवाले कार्योसे विरत करनेका कार्य बचपनमें घरमें ही सबसे अच्छे ढंग और सरलतासे हो सकता है।

असंगत व्यवहार

यदि हम चाहते है कि हमारे बालक अच्छे हों तो हमें इसके लिए बहुत कोशिश करनी होगी । जिस प्रकार घर आए हुए मेहमानको अधिक-से-अधिक सुखी और संतुष्ट रखना हमारा कर्तव्य है उसी तरह हमारे जनमे हुए बालकरूपी मेहमान भी अधिक-से-अधिक स्वस्थ, सुखी और सुविकसित बने, इसका खयाल रखना हमारा प्रथम कर्तव्य है । हमारे अनेक कर्तव्योमे बालकके साथ सुसंगत व्यवहार करना एक महत्त्वका कर्तव्य है ।

जब कोई हमसे मिलने आये तब उसके सामने हम एक तरहकी बात करे और उसके चले जानेपर दूसरी तरहकी बात करे, तो हमारे इस व्यवहारसे बालकमे असंगति पैदा होगी । घरमें किसीके आनेपर हम उसकी खुशामद करे या चिकनी-चुपड़ी बाते करे और जानेपर हम उसकी निंदा करने लगे, उसे बुरा-भला कहने लगे तो बालकपर हमारे इस व्यवहारका असर पड़ेगा और वह भी इसी तरहका व्यवहार करना सीखेगा ।

कोई हमारे घर कुछ मागने आये और हम उसे तो कह दे कि घरमे वह चीज है ही नही और फिर उसके चले जानेके बाद माता या पितामेसे कोई वही चीज बालकको निकालकर दे, तो फिर बालकमे भी यही दोष पैदा होगा ।

बालकसे तो हम कहे कि देखो शोर मत मचाओ, गड़बड़ न करो, पर खुद शोर मचाए या गड़बड़ करे तो बालकके अंदर भी असगतिका यानी कहना कुछ और करना कुछका दोष जरूर पैदा होगा । तात्पर्य यह कि यदि हम अपनी बातचीतमे या

व्यवहारमे संगतिका, मन, वचन और कर्मकी एकताका खयाल न रखेंगे और कभी कुछ और कभी कुछ कहते या करते रहेंगे, जो कुछ कहेंगे या करेंगे उसके खिलाफ कुछ भी कहने या करनेको तैयार रहेंगे, तो विश्वास रखिए कि हमारा बालक भी वैसा ही बनेगा और इसमे उसका कोई दोष न होगा। उस हालतमे हमारा यह कहना कि यह लडका या यह लडकी ऐसी क्यों है, व्यर्थ होगा और इस सवालका जवाब हमे अपने अदर ही ढूढ़ना होगा।

जबतक बच्चोंको दुनियाकी हवा नही लगती तबतक वे बिल्कुल सरल होते है। लोग उनको त्रिगुणातीत कहते है। वे दर्पणकी तरह स्वच्छ और निर्मल होते है। यह बात हमे भी सही मालूम होती है। इसी कारण बहुतोंने बालकोंकी महिमाके गीत गाए है। इसी कारण दुनियामे एक जमाना ऐसा भी गुजर चुका है जब लोग बाल-पूजा और बाल-प्रेममे डूबे रहते थे। इसीलिए महापुरुषोंने कह रखा है कि जो लोग अपने जीवनमें बालक बन सकेगे वे ही परमात्माके दरबारमे प्रवेश पाएगे।

हकीकत तो यही है। यह तो हम है जो निर्मल पानीके सरोवरको मथकर गंदा कर डालते है और उसे मिट्टी और कचरेसे भर देते है। इसी कारण जो बालक आरंभमें सब प्रकारसे सुदर रहता है वही ज्यों-ज्यो बड़ा होता जाता है—बालक मिटकर आदमी बनता जाता है त्यो-त्यों अपनी अंतर और बाह्य सुंदरता भी खोता जाता है। उसके अंदर भी हम कलियुगका प्रवेश करा देते है। इस तरह जब वह ठीक हमारे समान बनकर हममे घुल-मिल जाता है तभी हमे संतोष होता है।

अगर कोई बालक अपने माता-पिताकी किसी असंगतिकी ओर इशारा करता है तो माता-पिता उसपर नाराज होते है। मां-बापकी भूल दिखानेवाला बालक उनके क्रोधका शिकार बनता है। वे उसे आड़े हाथो लेते है और कहते है—'बहुत सयाना बनता जा रहा है—क्यो? दुनियाभरके लौडोके साथ खेल-खेलकर मुहफट बन गया है, जो मनमे आता है सो बक जाता है, मगर खबरदार, हमसे यह सब बर्दाश्त न होगा।"

बालक मनमे सोचता है कि उसने जो बात कही या विचार प्रकट किए वे किसीकी देखा-देखी या मांग-मूगकर नही किए थे। माता-पिताके असगत व्यवहारको देखकर ही मनमे ये बाते पैदा हुई थी। मुहजोरी करनेकी या हेकडी दिखानेकी तो उसमे कोई बात ही नही थी। शायद मा-बाप अपनी जिम्मे-दारीको छिपाने और अपना बड़प्पन जतानेके लिए ही ऐसा व्यवहार करते हैं। वे इससे नावाकिफ है या इसे समझते नही है, ऐसी भी कोई बात नही। उनके दिलमें यह खयाल होता रहता है कि इस तरह हम बालकको धोखेमे रख सकेगे अथवा डरा, धमकाकर झूठा ठहरा सकेगे, लेकिन उनका यह खयाल गलत है, भ्रमपूर्ण है।

बालक श्रद्धालु होता है और इसी कारण वह श्रद्धा या विश्वास रखता है। जब श्रद्धा नही रह जाती तब सब खतम हो जाता है। माता-पिताका असंगत व्यवहार बालकोके और उनके बीचके श्रद्धाके बाधको तोड़ डालता है अतएव आवश्यक है कि माता-पिता चेते और सजग रहे।

प्रयत्न करनेपर कुछ-न-कुछ व्यवस्था हो ही जाती है। चाहे जैसे भी हो, इसका प्रवध तो होना ही चाहिए नही तो वच्चे विलकुल दव्वू स्वभावके हो जायगे।

बच्चोंके लिए निजी स्थान

वच्चोके लिए वुद्धिमत्तापूर्ण और दृढ़ नियमोवाले व्यवस्थित जीवनकी आवश्यकता होती है। उनके लिए एक खास जगह—चाहे छोटी ही क्यों न हो—अवश्य होनी चाहिए जहां वे अपनी निधियां रख सकें और वड़े लोगोकी चीजोंको नुकसान पहुंचाए बिना आजादीसे खेल सकें। अच्छा तो यह हो कि उनके लिए एक कमरा ही अलग कर दिया जाय। अगर इस तरहका कोई प्रवंध न हो तो उनके लिए गृहोद्यान या मकानसे लगी हुई जमीनमे झोपड़ी-जैसी कोई चीज बना दी जाय जिसमें वे मौसिम अच्छा होनेपर खेल सके। सयाने लोगोंका उन्हें साथ-साथ दुकान-दुकान या जहां-तहा घुमाते फिरना या वरावर उनका मनोरंजन करते रहना वहुत वुरा होता है।

मनोरंजनके साधन

वच्चोका खिलौना भी उनकी अवस्थाके अनुरूप और उपयुक्त होना चाहिए। यह कोई जरूरी नही कि खर्चीली चीजें ही खरीदी जायं, छिटपुट चीजें प्रस्तुत कर दी जायं जिनसे वे अपनी वुद्धिसे तरह-तरहके खिलौने वनाकर खेलते रहे। उन्हें स्वयं अपना मन-वहलाव कर लेनेका तरीका सिखला देना चाहिए। वे किसीको साथमें रखना चाहते है और अगर वहुत छोटे हों तो अपनी माताको वरावर देखते रहना चाहेंगे।

अगर वे दूसरे बच्चोके साथ न खेल रहे हो तो अपने साथ बहुत देरतक खेलनेका अवसर उन्हे नही देना चाहिए। सयाने लोगोका काम सिर्फ यह है कि वे बच्चोके पास ही बने रहे जिसमे वे अपनेको निरापद समझते रहे।

परिवर्तनकी व्यवस्था

संतानवालोका यह कर्तव्य है कि वे अपने काम करनेके ढगपर विचार करे, यह स्मरण करनेकी कोशिश करे कि उनका अपना बचपन कैसा जान पड़ता था और इस अनुभवके आधार-पर अपने बच्चोके लिए स्वस्थ और प्रसन्न घर प्रस्तुत करे। सभी अवस्थाओके बच्चोके संबंधकी अधिकांश कठिनाइया इस कारण प्रस्तुत होती है कि हम यह ठीक-ठीक नही जान पाते कि बच्चा कितना समझ सकता है और कितना कर सकनेकी उसमे क्षमता है। वह जितना छोटा होगा उसमे अपनी इच्छाओ-पर नियत्रण करने और कुछ देरतक किसी काममे लगे रहनेकी शक्ति उतनी ही कम होगी। कम अवस्थाका बच्चा किसी खेलसे जल्द ही ऊब जाता है, उसका ध्यान इधर-उधर बंट जाता है और परिवर्तन चाहता है। इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उसके लिए तरह-तरहके काम प्रस्तुत रखे जिसमे उसके परिवर्तन चाहनेपर इसकी व्यवस्था जल्द ही हो जाय। अगर बच्चा किसी एक काममें देरतक नही लगा रहता है तो इससे हमे यह न समझ लेना चाहिए कि वह नटखट है। दरअसल उस समय वह उसी अवस्थामे होता है और बुद्धिमानीका काम यह हो कि उसके लिए एक छोटी-सी आलमारीका प्रबंध कर दिया जाय जिसमे वह अपने खिलौने रख सके और उसे यह सिखला

दिया जाय कि उसमेंसे एक समय एक खिलौना कैसे निकाला और उपयोगमे लाया जाय। उदाहरणार्थ, आप उसमेसे घोड़ा या और कोई खिलौना निकाल लीजिए, उसका उपयोग या उसके संबंधकी कुछ बाते बतलाइए और तब उसे रखकर कोई दूसरा खिलौना निकालिए। शिशुशालाओमे यही किया जाता है और बच्चे अपनी अवस्थाके अनुरूप खिलौनो या कामोमे खुशीके साथ लगे रहते है।

गृहकार्यमें सहायता

कुछ अधिक अवस्थाके बच्चोको आप यह बतला सकते है कि घरके कामोमे कैसे सहायता दी जा सकती है। इससे वे स्वावलंबी और उपयोगी बननेकी शिक्षा प्राप्त करते हुए माताको श्रमसे बहुत कुछ बचा सकते है। यह समझना मूर्खता है कि हम बच्चोंको काम न करने देकर उनके साथ बडी मेहरबानी कर रहे है। घरमें काम करना स्वाभाविक है, इससे बच्चोमे परिवारका सदस्य होनेकी भावना उत्पन्न होती है और वे धीरे-धीरे अपने कपडे साफ कर लेना, थोड़ी लकड़ी काट देना, कोयला लाकर देना (इस तरहके गदे कामोमे उन्हे बड़ा आनंद आता है), कुर्सी आदि ठीक तरहसे रखना तथा इस तरहके अन्य छोटे-मोटे काम करना बहुत जल्द सीख जाते है।

यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि शारीरिक श्रम मानव-जातिके लिए और विशेषत. बच्चोके लिए, जो विकासकी दृष्टिसे अभी आदिम अवस्थामें होते हे, सर्वथा स्वाभाविक है। जो बच्चे घर-परिवारके लिए लाभदायक कामोमें प्रवृत्त किए जाते है उनमें जल्द ही आत्म-विश्वासकी भावना उत्पन्न

हो जाती है और वे सुखी भी होते है। इसके अलावा एक लाभ यह भी होता है कि उनकी पेशियो और शरीरके विभिन्न अगोके पारस्परिक सबधका विकास होता है और उनका स्वास्थ्य सुधरनेके साथ-साथ उनका मानसिक क्षितिज भी विस्तृत होता जाता है।

अगर बच्चोंकी समस्याए इस प्रकार समझदारीके साथ हल की जाय कि स्थितिके साथ उनका मेल बैठता रहे, उन्हें अपना दायित्व ग्रहण करने दिया जाय और उन्हे अपने अधिकारोका उपयोग करने दिया जाय तो वे घरके सुख और आनदकी वृद्धिमे अवश्य सहायक होगे।

मानसिक स्वास्थ्य

बच्चेकी शारीरिक अस्वस्थताका ज्ञान उसके मा-वापको भी आसानीसे हो जाता है। ऐसी हालतमें परिवारका सारा आनंद कुछ कालके लिए दूर हो जाता है, मां-वाप परेशान हो जाते हैं और बच्चेका स्वास्थ्य साधारण अवस्थामे लानेके लिए विशेषज्ञोकी सहायता लेते और भरसक कुछ उठा नही रखते, पर मानसिक अस्वस्थताकी पहचान प्राय उनको नही हो पाती।

महत्त्व कम नहीं

अगर बच्चेका जीवन सुखमय और उपयोगी बनाना अभीष्ट है तो शारीरिक स्वास्थ्य-जैसा ही इसपर भी ध्यान देना आवश्यक होगा, यह उससे कम महत्त्वका नही है। मा-बाप सिर्फ यह कहते है कि बच्चा नटखट, वरवादी, ढीठ, चिडचिडा या काबूके वाहर है और इन दोषोका सुधार करनेके लिए भिन्न-भिन्न उपायोका सहारा भी लेते है—दड देते, उसकी खुशामद करते, लानत-मलामत करते या आधुनिक दृष्टिकोण अपनाकर उसे स्वतंत्र रूपमे आचरण करनेके लिए विलकुल छोड़ देते हैं। वहुतेरी अवस्थाओमे वे स्वप्नमे भी यह खयाल नही करते कि वच्चेका असामाजिक व्यवहार किसी गहराईतक पहुंची हुई खरावीका लक्षण है और न यही महसूस करते है कि जिसे वे निरी नटखटी समझते है उसके संवधमे किसी विशेषज्ञकी राय लेना आवश्यक है।

प्राकृतिक पद्धतिमे विश्वास करनेवालोको यह समझनेमें

कठिनाई नही होनी चाहिए कि जिस तरह वढी हुई उपजिह्विका (टौसिल) शारीरिक अवस्था वहुत खराव होनेकी सूचक है उसी तरह उक्त वुरी प्रवृत्ति भी वहुत वढी हुई मानसिक अस्वस्थताका लक्षण है ।

मानसिक दोष और अस्वस्थता

मानसिक अस्वस्थता मानसिक दोप अर्थात् दिमागकी कमजोरीसे विलकुल भिन्न चीज है । मानसिक दोष तो लंगडापन आदि शारीरिक दोपके समान है जो वच्चेके शरीरमे वरावर वना रहता है, पर मानसिक अस्वस्थता साधारणत स्वस्थ रहनेवाले, पर कुछ कालके लिए रोगके चगुलमे फंस जानेवाले वच्चेकी शारीरिक अस्वस्थताके समान है ।

किसी भी वच्चेके सबधमे यह आशा नही की जा सकती कि वह विलकुल पूर्ण होगा और उसमे कभी खीझ या चिड़चिड़ापन नही देख पडेगा । प्राय वच्चे ऐसी अवस्थासे भी गुजरते है जिसमे वे वहुत कम सहयोग करते और नियन्त्रणके वाहर भी हो जाते है हाला कि वे साधारणत ऐसे नही होते । इससे मा-वापको घवडाना या यह न समझ वैठना चाहिए कि वच्चा मानसिक रोगसे ग्रस्त है, उन्हे नये सिरेसे विचारकर यह देखना चाहिए कि व्यवस्था या व्यवहार आदिमे ऐसी कोई वात तो नही आ गई है जो वच्चेके मानसिक स्वास्थ्यकी उन्नतिमे वाधक हो रही है ।

स्वास्थ्यके लिए आवश्यक

वच्चेके मानसिक स्वास्थ्यके लिए कम-से-कम इन वातोका होना जरूरी है—उसमे सुरक्षित होनेकी भावना हो, उसके

मनमे यह अनुभूति हो कि उसे प्यार प्राप्त है, उसे लोग चाहते है, उसे अपना समझनेवाला कोई है और उसके विकासके लिए उचित अवकाश हो। कभी-कभी ये अवस्थाए एक-दूसरीकी प्रभावकारिता नष्ट भी कर दिया करती हैं जैसा कि अधिक लाड़-प्यार करनेवाले सुखी परिवारमे प्राय देखा जाता है। ऐसे बच्चेकी स्थिति प्राय उसकी बाढके अनुकूल नही होती। अगर मा-बापमे परस्पर प्रेम न हो, परिवार छिन्न-भिन्न हो तो बच्चेमें सुरक्षा और प्यारके अभावकी भावना घर कर लेगी और उसे अनियन्त्रित और अशिक्षित रूपमे बढनेका पूरा मौका मिल जायगा।

सुरक्षाकी भावना

आजकल ऐसे समझदार लोग कम ही होगे जो यह न महसूस करते हों कि बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यके लिए सबसे अधिक आवश्यक ऐसे सुव्यवस्थित परिवारमे सुरक्षित और निश्चित होनेकी भावना है जिसमें मा-बाप बच्चेको ही नही बल्कि एक-दूसरेको भी प्यार करते हो। इस प्रकारका वाता-वरण अन्य बहुत-सी कमियोकी पूर्ति कर दिया करता है, हां, जहा निवाससंबंधी कठिनाइया है, एक ही मकानमें कई परिवार निवास करते है वहा इस प्रकारकी भावनाका आधार प्रस्तुत कर सकना कुछ कठिन होगा। जो लोग बच्चेमें खामिया होनेकी शिकायत करते है वे छोटे बच्चेमें अरक्षित होनेकी भावना उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियोका सुधार करनेकी ओर समु-चित ध्यान देनेमें उतने सतर्क नही रहा करते और यह बच्चेमें मानसिक अस्वस्थता बढाकर उसकी भावी असफलताकी नीवं

डाल दिया करता है। अगर बाल-अपराधोके कारणोकी तहतक पहुचनेका प्रयत्न किया जाय तो उनमें असतोषजनक पारिवारिक जीवन ही प्रधान रूपमे देख पडेगा।

प्यारकी प्राप्ति

सुरक्षाके साथ-साथ बच्चेको प्यार भी प्राप्त होना चाहिए। सुरक्षा चाहे जितनी हो, पर अगर बच्चेकी भावना यह हो कि उसे प्यार नही प्राप्त है, परिवारमे उसे चाहनेवाला या अपना समझनेवाला कोई नही है तो उसे भावनात्मक पोषण उचित रूपमे प्राप्त नही होगा जिसका उसके मानसिक स्वास्थ्यपर बहुत बुरा असर होगा। किसीका अपना समझे जानेकी आवश्यकता ही शायद वह कारण है जिससे माता न रहनेकी अपेक्षा बुरी समझी जानेवाली माता भी बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यके लिए लाभदायक होती है। बुरी माता बच्चेको कभी चाटे लगा और उसके प्रति अन्याय कर सकती है, यहातक कि उसकी शारीरिक आवश्यकताओकी उपेक्षा भी कर सकती है, पर साथ ही वह उसका आलिंगन और चुबन भी करती रहेगी और बच्चा यह समझेगा कि वह उसका अपना है और ससारमे उसका भी कोई स्थान है भले ही वह स्थान उसके लिए उतना आनददायक न हो।

बाढ़का अवसर

तीसरी आवश्यकता बाढका उपयुक्त अवसर है जिसे प्राय बच्चेको प्यार करनेवाले खुशहाल माता-पिता भी नही प्रस्तुत कर पाते। कभी-कभी उनका वात्सल्य प्रेम ही इस सीमातक पहुच जाता है कि उसका प्रभाव बच्चेको पगु बना

देनेवाला हो जाता है और उनका रक्षणात्मक और निर्देशात्मक प्रयत्न बच्चेकी शक्तिका विकास नही होने देता। वे बहुत कडाई रखते या वात-वातमे 'हा'-'ना' कहकर आदेश देते रहते है जिससे बच्चा अपनेसे कुछ भी नही कर पाता। पहले तो यह प्रवृत्ति माता-पितामे बहुत देखनेमे आती थी, पर अब इस प्रवृत्तिकी प्रतिक्रिया यह देखनेमे आती है कि बहुतसे लोग किसी प्रकारका निर्देश नही देते और न बच्चेके आचार-व्यवहारपर किसी तरहका नियंत्रण रखते है।

इस प्रकारके व्यवहारसे वस्तुत बच्चेको उचित बाढका अवसर नही प्राप्त होता और वह नैतिकताके अमर्यादित समुद्रमे विना पतवारकी नावकी तरह अपने मार्गसे वहककर इधर-उधर बहता रहता है और उसे जो मनोवैज्ञानिक अवसर प्रदान करना अभिप्रेत होता है वह उसके लिए निरापद नही होता। परिणाम यह होता है कि उसे उसी प्रकारकी उपेक्षासे मानसिक सघर्ष करना पडता है जिससे उदासीन और साधनहीन माता-पिताके बच्चोको करना पडता है। ऊपरसे एक और खराबी यह होती है कि यह उपेक्षा सपन्न और प्यार करनेवाले परिवारमे प्रस्तुत होती है।

कैसे प्रस्तुत किया जाय ?

बच्चेकी बाढके लिए उपयुक्त अवसर कैसे प्रस्तुत किया जाय, यह एक जटिल समस्या है और इस संबधमे जो विचार या मत प्रकट किये जाते है उनमे परस्पर बहुत अंतर देख पडता है। एक मत यह है कि अगर माता-पिता किसी बातके संबधमे 'हा' या 'ना' कहते है तो वह वही होकर रहे, बच्चा वैसा ही

करनेके लिए बाध्य किया जाय। कुछ काल पहले, जैसा कि ऊपर कहा गया है, 'ना'की ही अधिकता रहती थी, पर आजकलकी प्रवृत्ति 'ना'का अत कर देनेकी ही नही बल्कि 'हा' को भी 'चाहो तो करो'मे बहुत कुछ परिवर्तित कर देनेकी हो गई है। इस हालतमें शिक्षणकी भावना नही रह पाती और बच्चा भी सतोष प्रदान करनेवाले एक आनदसे वचित हो जाता है। सभी बच्चे माता-पिताकी हामी प्राप्त करना चाहते है, पर अगर कोई बात वर्जित ही न हो तो इस तरहकी हामी प्राप्त करनेका अवसर ही नही आयेगा। कभी-कभी बच्चा सिर्फ यह देखनेके लिए कि क्या नतीजा होता है एक बुरे कार्यसे दूसरा और बुरा कार्य करनेमे प्रवृत्त होगा। वह जानता रहेगा कि वह ऐसा काम कर रहा है जिसकी अनुमति नही मिल सकेगी, फिर भी वह समझकी कमी होनेके कारण करनेसे बाज नही आयेगा।

अनुशासन

अनुशासनका साधारण-सा ढाचा और बधा हुआ कार्यक्रम बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। इस ढाचेके अंदर उसे आजमाइशके लिए काफी गुजाइश रहनी चाहिए। अगर तीन वर्षका कोई बच्चा अपनी मा या पिताके साथ किसी दोस्तके घर जानेपर गुलदस्तेका फूल नोच ले, छोटी मेजपर रखी हुई कोई चीज सहनपर लुढका दे या दावातमे उगली डाल दे तो समझना चाहिए कि वह मानसिक अस्वस्थतासे ग्रस्त है। उसमे अरक्षित होने या द्वेषकी भावना हो सकती है या संभव है, वह दुर्भाग्यवश उस सिद्धातका शिकार हो जो यह मानता है कि बच्चेको 'ना' कहकर उसके मनका दमन नही करना चाहिए।

व्यावहारिक नियम

बच्चेका पारिवारिक जीवन सुखमय बनानेके लिए उसे सामाजिक व्यवहारसबधी कुछ नियमो, तथा, माता-पिता, भाइयो और बहनोके कुछ अधिकारोका सम्मान करनेकी शिक्षा देना आवश्यक है। बच्चा एक-डेढ वर्षका होते-होते 'हा' और 'ना'का अभिप्राय प्राय. समझने लगता है। अगर माता-पिता इन शब्दोका उचित प्रयोग करे और बात-बातमे 'ना' न कहा करे तो बच्चेको भले-बुरेका ज्ञान जल्द हो जायगा और यह उसके मानसिक स्वास्थ्यमे बहुत सहायक होगा। अच्छा व्यवहार करना सीखनेके लिए ये शब्द पथप्रदर्शकका काम करते है और बच्चेमे अच्छी आदते डालनेमे सहायक होते है। व्यवहारके इस ढगका अभ्यास हो जानेपर बच्चेमे स्वाभिमान और आत्मसम्मानका भाव दृढ हो जायगा और उसे मां-बापकी प्रशंसा प्राप्त होगी जो उसके सुख और आनदके लिए बहुत आवश्यक है।

जिस बच्चेको आरभसे ही कर्तव्याकर्तव्य—अच्छे-बुरे व्यवहारकी शिक्षा मिलती है वह स्वयं तो अधिक प्रसन्न रहता ही है, अपने परिवारमे भी आनंद फैलाता है। जिस बच्चेके पालनमे इस तरहका कोई नियंत्रण नही होता उसमे औचित्यके ज्ञानका अभाव होता है। वह स्वयं तो दु.खी रहता ही है, जिनके साथ रहता है उनके लिए भी सरदर्द बन जाता है और प्राय. अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करनेके लिए मूर्खतापूर्ण कार्य कर बैठता है जिससे दूसरोका प्यार और अनुमोदन प्राप्त करनेका सतोष उसे नही मिल पाता। यह सत्य है कि कुछ औचित्यके ज्ञानसे हीन बच्चोको शरारत करने—खिडकीका शीशा तोड

देने, दूसरोकी किताबे फाड़ डालने, मेजपरकी चीजे लुढ़काकर तोड देने आदि—की आजादी दे दी जाय तो वे ये सब तथा और भी बहुतसे अनिष्ट कर बैठते है, फिर भी आगे चलकर अपने ढंगमे सुधार कर अपना जीवन सुखमय बना लेते है, पर इसके आधारपर यह दलील पेश करना कि किसी बच्चेको ऐसा कार्य करनेसे रोकना नही चाहिए, ठीक वैसा ही होगा जैसा एक लड़केको कब्ज होनेपर क्लासके सारे लडकोको जुलाब देना।

अच्छे स्वास्थ्यकी पहचान

मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होनेपर भी किसी बच्चेके सबधमे यह आशा नही करनी चाहिए कि वह हमेशा नेक ही रहेगा, पर उसे ऐसा भी नही होना चाहिए कि लोगोंके लिए कष्टका कारण हो जाय। मोटे तौरपर यही समझना चाहिए कि जिस बच्चेका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होगा वह विश्वसनीय होगा, सहयोग करेगा, मित्रतापूर्ण व्यवहार करेगा, प्रसन्न रहेगा, आज्ञाकारी होगा और प्राय. अपनी अवस्थाके अनुसार समझदारीके साथ व्यवहार करेगा। वह जैसे-जैसे बढ़ता जायगा बडोकी सहायता लिये बिना ही प्रसन्नतापूर्वक अपना कार्यभार ग्रहण करता जायगा और बिना किसी तरहकी कमजोरी या खिन्नता प्रकट किये नैराश्य तथा विफलताका सामना करने लगेगा।

इस प्रकार परिवारके वातावरणमे सुरक्षाकी भावना और माता-पिताका प्यार बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यके लिए परमावश्यक होता है। इसके साथ ही उसे साधारण नियमो

और बोधगम्य अनुशासनके ढाचेके अंदर इस प्रकार स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य करनेका मार्ग-प्रदर्शन भी मिलना चाहिए जो दूसरोके सुखमे बाधक न हो। न तो इस स्वतन्त्रताका दुरुपयोग हो और न बच्चा अपनी मौजके पीछे दूसरोके आराममे खलल डालने पाये।

प्रेमका पाठ

बच्चोमे ईर्ष्याका जन्म प्रेम, भय और क्रोध—तीन स्वाभाविक वृत्तियोद्वारा होता है। उनमे ये जन्मजात होती है। अनेक विद्वानोका कहना है कि जबतक बच्चा नौ महीनेका नही हो जाता उसमे ईर्ष्याकी भावना नही आती। इस उम्रमे अपनी माताके प्रति उसका प्यार पूर्णतया विकसित हो जाता है और वह अपनी प्रत्येक आवश्यकताके लिए अपनी मातापर ही सर्वथा निर्भर रहता है। इस समयतक उसमे अधिकार-भावनाका भी जन्म हो जाता है। जब उसे कोई चीज मिलती है और उसे वह पसद आती है तो वह उसे छोड़ना नही चाहता, उसे पकड़े रहना ही उसे प्रिय लगता है। इसके पहले उसके हाथकी चीज कोई भी ले ले सकता था, उसे कोई एतराज न होता, पर नौ महीनेका होनेके बाद बच्चा अपनी माके समझावन-बुझावनके बाद बडी मुश्किलसे अपने हाथकी चीज छोडता है। आगे चलकर वह अपनी माको पूरी-पूरी अपनी बनाना चाहता है, क्योकि उसे उसकी मा दुनियाकी प्रत्येक वस्तुसे अधिक प्यारी होती है। अगर बच्चेका पिता उसकी माको प्यार करता है, उसे साथ टहलानेके लिए ले जाता है तो बच्चेका अपनी माको खोनेका भय जाग्रत् हो उठता है और अपना विरोध प्रकट करनेके लिए वह चिल्ला उठ सकता है। बच्चेके इस भावका तमाशा देखनेके लिए यदि मूर्ख पिता अपनी पत्नीपर अपने आधिपत्य तथा प्रेमका और अधिक प्रदर्शन करता है तो बच्चा भयके अलावा क्रोधसे भर जाता है। उसकी सर्वाधिक प्रिय वस्तु—

उसकी माताका अपहरण करता हुआ उसका पिता उसे शत्रुके समान प्रतीत होता है। बच्चा मारे क्रोधके हाथ-पांव पटकने लगता है और यदि उसका पिता उसके निकट आ जाय तो वह उसे मारने और काटनेकी कोशिश करता है। लोगोंको बच्चेकी यह बेवसी देखनेमे मजा आता है, वे यह नही जानते कि बच्चेकी जन्मजात वृत्तियां—प्रेम, क्रोध और भय—पूरी तरह जगा दी जाने-पर बच्चेके मस्तिष्कपर ऐसी रेखाए छोड जा सकती है जिनका असर जन्मभर रह सकता है। वे यह नही समझते कि अनजाने वे अपने बच्चोको ऐसी शिक्षा दे रहे है जिससे वे बढ़नेपर समाजके कामके न हो सकेगे, उनका जीवन भय और क्रोधसे भरा होगा और ये भाव आसानीसे घृणामे परिवर्तित होकर नीचता और और बदला लेनेकी इच्छाको जन्म देते है।

ईर्ष्याका आरंभ

जब नया बच्चा पैदा होता है तो उसके प्रति उसके बड़े भाईमे अक्सर ईर्ष्याका भाव पैदा हो जाता है। दो वर्षका बच्चा जब देखता है कि उसकी मां एक नए बच्चेको प्यार कर रही है और दूध पिला रही है तो उसके मनमे भय और क्रोधकी उत्पत्ति होती है जो धीरे-धीरे नवजात शिशुके प्रति ईर्ष्या और घृणामें परिवर्तित हो सकती है।

अक्सर ये बडे बच्चे अपने छोटे भाइयोको सताते देखे गए है। वे क्रोधमे आकर उनपर हमला कर बैठते है, उनके ऊपर बैठ जाते है, मुक्केसे मारते है और कभी-कभी लोहे-लक्कड़से सांघातिक चोट भी पहुंचा देते है। एक बच्चेने हमारे देखते-देखते दूध पीनेकी बोतलसे मारकर अपने छोटे भाईका सिर

फोड़ दिया था । काममे फँसी हुई मा अनजाने सदाके लिए अपने दो वर्षके बच्चेके मनमे लडाई और घृणाके भाव भर देती है । यह बच्चा ज्यो-ज्यो बडा होता जाता है अपनेसे सभी छोटे बच्चोसे घृणा करने लगता है और मौका पानेपर उन्हे सतानेसे नही चूकता । वह आपेमे नही रहता, उसके सभी कार्य ईर्ष्याद्वारा सचालित होते है ।

पारस्परिक सहायता

बच्चेको इस स्थितिसे निकालनेका, उसे ईर्ष्यालु होनेसे बचानेका उपाय क्या है ? है और ,बहुत आसान है, पर है उसमे थोड़ी चालाकी । यह सभी जानते है कि कोई चीज हमे कितनी ही प्यारी क्यो न हो, जिन्हे हम प्यार करते है उन्हे हम उसे देना पसद करते है, पर मां एक-दो वर्षके बच्चेको एक ऐसे प्राणीको प्यार करना कैसे सिखा सकती है जो पता नही कहासे आया और डकैतकी तरह उसकी सर्वाधिक प्रिय वस्तु, मापर और उसके प्यारपर, अधिकार जमा लिया ? डारविनने जीवनकी सग्रामसे तुलना की है और लिखा है कि लड-भिडकर अतमे योग्यकी ही विजय होती है । इसी सिद्धांत-का तो बच्चा अनुगमन कर रहा है, पर महात्मा क्रोपाटकिनका कहना है कि हमारी प्रगतिमे एक दूसरी चीज भी सहायक होती है, वह है पारस्परिक सहायता । पगु आजकी स्थितिको जहा 'योग्यकी विजय'के सिद्धातपर चलकर पहुचा है वहा मनुष्य-को दोनो सिद्धातोसे सहायता मिली है, पर उसकी उन्नतिमे पारस्परिक सहायताका ही अधिक भाग है । इसी सिद्धातके अनुसार मनुष्यने अपने आदिमकालमे गिरोहमे रहना पसद

किया। राज्यो और राष्ट्रोकी उत्पत्तिके भीतर भी इसी मनोवृत्तिका हाथ है। आजकी सभ्यताका प्राण यही मनोवृत्ति है।

योग्यता प्रमाणित करनेके लिए संघर्ष अर्थात् युद्धकी जरूरत होती है और युद्ध सामाजिक उन्नतिके विरुद्ध पडता है। जीवनके लिए एक दूसरेकी सहायता करनेका भाव समाज-का प्राण है। इसीके कारण हमारा परस्परका वर्ताव सभ्यतापूर्ण होता है। सहज-सहानुभूति सहायताकी जननी है। एक बच्चेको रोते सुनकर दूसरा बच्चा सहानुभूतिके कारण ही रो उठता है। इस वैज्ञानिक तथ्यका अनुसरण कर माताएं अपने बच्चोको जगलीकी भांति व्यवहार करनेसे बचा सकती है। मुट्ठी और आखे बद, रंग लाल, पिंडकी तरह पडे हुए नवजात शिशुके दर्शन दो वर्ष पहले इस दुनियामे आए उसके बड़े भाई साहबको करा देने चाहिए। बड़े भाई साहब उसका रोना भी सुने और जाने कि उनका छोटा भाई भूखा है। तब वे दूध पीनेमे उसकी सहायता करेगे और उसकी देखभाल भी रखेगे। बड़े बच्चेको यह अनुभूति करा दी जाय कि छोटा बच्चा उसकी चीज है—उसका भाई है। इस रीतिसे वह अपने भाईको प्यार करना सीखेगा और प्यार करने लगनेपर वह उसे अपनी सर्वोत्तम निधियोमे भी हिस्सा देगा।

कई भयभीत माताए अक्सर पूछती है कि यदि बड़े बच्चेको छोटे बच्चेको छूने दिया जाय तो ऐसा तो न होगा कि वह उसे मार दे या दवा दे? उन्हें हमारी सिखावन है कि यदि वे अपने द्विवर्षीय बालकको पारस्परिक सहायताकी शिक्षा न देगी तो निश्चय ही उनका लाडला अपने छोटे भाईको नुकसान पहु-

चायेगा, यही नही वह स्वय अपनी हानि भी करेगा। उसके निर्मल चरित्रमे ईर्ष्याके काले धब्बे पड जायगे।

एक मनोविज्ञानकी पडिता माताने एक वार अपने कुछ अनुभव एक पत्रिकामे लिखे थे जिनमेसे कुछ अपने पाठकोको भेट करनेका लोभ हम सवरण नही कर पा रहे है।

'मै अपने बच्चेको यह सिखानेका हमेशा ध्यान रखती थी कि जब मै किसी दूसरे बच्चेको या उसके किसी खिलौनेको प्यार करू तो वह खुश हो। इसके लिए मै दूसरोको प्यार करते वक्त अपने बच्चेकी ओर मित्रतापूर्ण आखोसे देखती और हँसती रहती थी। इसी तरह मैने उसे उसकी गुडिया और काठके कुत्तेको प्यार करना सिखाया। ये चीजे जब पहले-पहल उसे दी गई तो वह उन्हे लेता ही न था और उनकी ओर तिरछी नजरसे देखता था। मै अपने बच्चेको देख-देखकर इन खिलौनोसे खेलती और प्यारसे हँसती रही और उसे इन्हे प्यार करनेको कहती रही। थोडी ही देरमे वह मेरे साथ खेलनेमे शरीक हो गया और खिलौनोको प्यार करने लगा।

'अपने मा-बापको आपसमे प्यार करते देखकर बच्चोको अक्सर बुरा लगता है, पर हमे ऐसा करते देखकर मेरा बच्चा खूब खुश होता था। वह हँसता था और खुशीके मारे चिल्लाने लगता था। कभी-कभी अपनी प्रसन्नताके प्रदर्शनके लिए वह हम लोगोके चारो ओर लिपट जाता था और हम लोगोकी ओर मुह ऊंचा करके हँसते हुए देखता था।"

सफल माता बननेके लिए यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक

गृहिणी मनोविज्ञानकी पंडिता ही हो, पर यह आवश्यक है कि वह अपने बच्चेके दिमागमें उलझे विचारोंकी चलती आंधीका प्रेमपूर्वक अध्ययन करे ताकि बच्चेको वह दुनियाका सही-सही ज्ञान दे सके, अन्यथा वह आगे चलकर जीवनमें सुखी नहीं होगा और न उसका चरित्र ही उच्च होगा।

मानसिक शिक्षा

स्वस्थ शरीर बच्चेकी पहली आवश्यकता है, पर अगर उसे अच्छी मानसिक शिक्षा नही मिली है, वह जीवनका दृष्टिकोण भ्रात बनानेवाली है, तो स्वस्थ शरीर विशेष उपयोगी नही होगा ।

जानकारोका कहना है कि सात वर्षकी अवस्थातक मनपर जो छाप पडी होती है वही सारे जीवनको प्रभावित करती है और चौदह वर्षकी अवस्थाके बाद मनोवृत्तिमें शायद ही कोई परिवर्तन होता है। सबल मस्तिष्कवाले ऐसे भी कुछ लोग है जिन्होने युवावस्थामे अपनी मनोवृत्तिमे परिवर्तन किया है, पर उनकी सख्या नगण्य है और उनपर भी शैशव तथा कौमारका कुछ-न-कुछ प्रभाव है ही। अच्छी आदते भी बुरी आदतोकी ही तरह आसानीसे डाली जा सकती है। माता-पिता चाहे तो अपनी सतानको स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन प्रदान कर सकते है, और इस कर्तव्यका पालन आनददायक भी होता है, पर स्वयं उनका जीवन अव्यवस्थित होनेके कारण अधिकाश बच्चे इस उत्तराधिकारसे वचित रह जाते है ।

मनोवृत्तिकी प्रधानता

जीवनकी सफलता मनोवृत्तिपर ही निर्भर है। मन ही शरीरको योग्य बनाता है। जन-साधारणकी दृष्टिमें किसी व्यक्तिकी सफलता कितनी ही बड़ी क्यो न जान पडे, पर अगर उसमें सभी वस्तुओके साथ सामंजस्य स्थापित करनेकी शक्ति

नही है, दृष्टिकोण और समझ ठीक नही है, तो उसकी सफलता विलकुल निस्सार है। लोग साधारणत सपत्तिको ही सफलता माना करते है, पर हमने तो निर्धनोकी अपेक्षा श्रीमानोको ही अधिक दु खी देखा है। शरीरकी आवश्यकता पूर्ण हो जानेपर उससे संवद्ध कष्टका अंत हो जाता है, पर मानसिक अभावकी पूर्ति वोधसे ही हो सकती है जो आरभिक अवस्थामे ही प्राप्त होना चाहिए।

हमारी सारी समस्याएं—भ्रष्ट राजनीति, बेईमानी, व्यापार-में लोभ, युद्ध, अराजकता, मद्यादिका व्यसन, अयोग्यता, अप-राधकी मनोवृत्ति आदि—शैशवसे ही सवद्ध है। स्वस्थ शरीर और सवल मस्तिष्कवाला प्रत्येक व्यक्ति समाजका उपयोगी अग होता है। साधारण श्रेणीके आदमीसे इससे अधिकको आशा नही की जा सकती। सब लोग प्रख्यात नही हो सकते और यह आवश्यक है भी नही।

तरुण और प्रौढ अवस्थाकी मानसिक क्रियाएं और आदते शैशवमे पड़ी हुई छाप और आदतोपर ही निर्भर है, इसलिए वच्चोका लालन-पालन अच्छे वातावरणमे होना चाहिए। अगर शैशवमे अच्छी शिक्षा मिली है तो तरुण होनेपर ऐसी कोई बुरी आदत नही पडेगी जिसपर विजय पाना कठिन हो। आदतोंका बंधन आसानीसे नही टूटता। तवाकू और शरावकी लतपर विजय पाना कठिन है, पर मानसिक दुष्प्रवृत्तियोपर विजय पाना और भी कठिन है।

पालनेमें ही नींव

यथासंभव वच्चेको एकांतमे रहने दीजिए। कुछ माताओमे

प्यार और अज्ञानकी मात्रा इस कदर ज्यादा होती है कि वे थोड़ी-थोडी देरपर बच्चेको गले लगाती, प्यार करती और मित्रो-संबंधियोको बार-बार दिखलाती रहती हैं। बच्चेको शात रहने देना चाहिए, किसी तरहकी छेडछाड नही होनी चाहिए। इसी प्रकार रखे जानेपर उसे विकासका अवसर मिलेगा। उसपर अधिक ध्यान देना भी ठीक नही होता। इससे वह चिडचिडा हो जाता है, बराबर ध्यान देते रहनेकी मांग करता है और ध्यान न देनेपर क्रुद्ध होकर रोने लगता है। इस प्रकार बुरे स्वभावकी नीवं पालनेमे ही पड़ जाती है। रोनेसे ही मतलब पूरा होते रहनेसे आगे चलकर उसमे मचलने और रूठनेकी आदत पड़ जाती है।

काम निकालनेका तरीका बच्चे बहुत जल्द सीख लेते हैं। अगर वे अप्रिय बनकर यह कर सकते हैं तो यह मानी हुई बात है कि वे अपना स्वभाव बिगाड लेगे। अगर बच्चोंको यह अनुभव करा दिया जाय कि अप्रिय बननेसे कोई लाभ नही होता, तो उनकी इस प्रवृत्तिका शीघ्र ही अंत हो जायगा। माता आरंभमे तो अधिक ध्यान दे सकती है, पर दस-बारह वर्षकी अवस्था हो जानेपर, जब उसे बिगड़े हुए बच्चेकी देख-भाल करनी पड़ती है, स्थिति बिलकुल दूसरी हो जाती है।

प्यारके नामपर अपराध

प्यारके नामपर बहुतसे अपराध किये जाते हैं। बहुतसे बच्चोका तो प्यारसे ही अंत भी हो जाता है। अगर प्यारके साथ विवेकका मेल न हो तो वह विषकी तरह घातक हो जाता है। बहुतसे मां-बाप यह समझते हैं कि हम बच्चोमे लगे रहकर

उनके प्रति प्यार प्रकट कर रहे है, पर दरअसल वे उनको इस प्रकार शारीरिक और मानसिक ह्रासके मार्गपर ले जाते हैं; सच्चे प्यारमें सहायता, दया और धीरता होती है, पर नकली प्यारमें होहल्ला, दिखावा और अधीरता होती है। उनके लिए जो आवश्यक हो वही कीजिए, अनावश्यक कार्य करना बुरा होता है। सहायक होना तो उन्हे बहुत जल्द सिखाया जा सकता हैं। सफाईसे रहने, अपनी चीजे करीनेसे रखने, कपड़े पहनने आदिकी शिक्षा नौकरोके रहते हुए भी आरभिक जीवनमे ही दी जानी चाहिए। भावी जीवनमे इन छोटी वातोका प्रभाव स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता हे। चरित्रनिर्माणमे इनसे बड़ी सहायता मिलती है। हम जो कुछ करते है उसीसे हमारे जीवन-का निर्माण होता है—प्रत्येक विचार और प्रत्येक छोटा कार्य हमारे जीवनको रूप प्रदान करनेमें सहायक होता है। अच्छा शरीर अच्छे मनका कारण होता है और अच्छा मन अच्छे शरीरका।

धनी परिवारोंके बच्चे

धनी परिवारोके बहुतसे बच्चे वस्तुत. भाग्यहीन होते है। गरीव तो अपनी आर्थिक समस्याओमे उलझे रहनेपर भी बच्चोपर कुछ ध्यान दे लेते हैं, पर अमीर लोग धन-सग्रह और सामाजिक स्तर ऊंचा करनेके प्रयत्नमे इस कदर व्यस्त रहते है कि बच्चोके लिए उनको समय ही नही मिलता और वे नौकरोके जिम्मे कर दिए जाते है। क्रीतसेवा चाहे कितनी ही अच्छी क्यो न हो, वह वात्सल्य प्रेमकी समता नही कर सकती। सेवा भी अधिक नही होनी चाहिए, इससे बच्चे स्वार्थी हो जाते

है, दूसरोका स्वत्व हरण कर अपनी कोई चीज देनेका नाम भी न लेगे। यह सर्वथा अनैतिक है। जीवनमे क्षति और पूर्तिका ही सिद्धात चलता है, आदानके साथ प्रदान भी लगा हुआ है। उन्हे दूसरोका खयाल रखनेकी शिक्षा मिलनी चाहिए, हमेशा नौकरोपर हुकूमत ही नही चलाते रहना चाहिए। नौकरोको तो यह बुरा मालूम होगा ही, उनके लिए भी हानिकर होगा।

परिवार चाहे जितना भी समृद्ध हो, बच्चोको जीविका प्राप्त करनेकी शिक्षा मिलनी ही चाहिए। उनके मनमे सेवाका भाव भी दृढ कर देना चाहिए। आलस्यमय जीवनको कभी सफलता नही मिलती—कामसे भागनेवालो और समय नष्ट करनेवालोका जीवन कभी सुखमय नही होता। अच्छे कार्योंसे ही जीवनमे सर्वाधिक सतोष प्राप्त होता है। भावावेशयुक्त प्रेम और मौजके दिन ज्यादा नही चलते। प्रेम और उत्साहसे काम करना कल्याणकर होता है, पर कामके अभावमें प्रेम और उत्साह पतनकी ओर ले जाते है।

आज्ञापालनकी शिक्षा

बच्चोके विकासका काल बहुत लंबा होता है इसलिए मां-बाप तथा परिवारके अन्य लोगोके साथ उनका मेल बैठना बहुत जरूरी है। इसके अभावमे मां-बाप, विशेषकर माता बहुत जल्द ऊब जाती है जिसकी बच्चोपर बहुत गलत छाप पड़ती है। संघर्ष बचाने तथा अच्छा फल प्राप्त करनेके लिए बच्चोको आरभसे ही आज्ञापालनकी शिक्षा दी जानी चाहिए। आज्ञापालनसे ही शासन करनेकी योग्यता प्राप्त होती है। जिन परिवारोमे मा-बापके शब्द कानून-जैसे माने जाते है

उनमें संघर्ष बहुत कम होता है। अगर बच्चे यह जान जायं कि मां-बाप जो कहते हैं वह होकर ही रहेगा, हीला-हवाला करना बेकार है, तो कोई झमेला नही उठ खडा होगा। आज्ञा-का उल्लंघन करनेवाले बच्चोकी हालत बिलकुल भिन्न होती है। मा-बापको बार-बार आदेश देना पड़ता है और प्राय आदेशका पालन नही होता।

बच्चोको कुछ समझ हो जाय तभीसे आज्ञापालन और तत्परताकी शिक्षा दी जानी चाहिए। पीछे यह कार्य कठिन हो जाता है और अवस्थाके साथ कठिनाई भी बढती जाती है। बच्चे इतने अबोध होते हैं और उनमें इतनी आत्मप्रवंचना होती है कि वे यह बात समझ ही नही पाते कि अनुभव और विवेकके अभावमे हम अपना मार्ग निर्धारित नहीं कर पायेंगे। अपनी हानि और दूसरोंको परेशानी होनेपर भी वे इस अधिकारका त्याग करनेको तैयार नही होते। कड़ा पडनेका अवसर आनेपर कड़ाई बरतनी ही चाहिए, पर कड़ाईके साथ भी सहयोगकी ही भावना होनी चाहिए।

बच्चोको सुधारनेका माता-पिताका ढंग भिन्न-भिन्न हुआ करता है, पर यह बात अच्छी तरह समझमे आ जानी चाहिए कि आज्ञापालन आरंभिक योजनाका एक मुख्य अग है। उदाहरणार्थ, अगर बच्चा खानेके लिए बुलाया जाता है तो उसे फौरन पहुंच जाना चाहिए, अगर उसमे देर करनेकी प्रवृत्ति देख पडे तो उसे साफ-साफ कह दिया जाय कि बुलानेके साथ ही न आनेपर इस वक्त खाना न मिलकर दूसरे ही वक्त मिलेगा, और यही किया भी जाय। यह निर्दयता नही है। एक वक्त खाना न खानेसे कोई क्षति भी नही होती। इस उपायका अच्छा

असर होता है। इसी तरह उनके करनेके जो भी छोटे-मोटे काम हो उन्हे उनसे तत्काल कराना चाहिए। हां, मा-वापको भी समझदारीसे काम लेना चाहिए, अनावश्यक काम करनेके लिए वार-वार आज्ञा न देते रहे।

प्रकृतिमे प्राय. देखा जाता है कि जानवर वच्चोको यह सिखला देते है कि वे अपनी फिक्र करने योग्य होते ही किस प्रकार स्वतत्र रूपमे रह सकेगे। मा-वापको भी अपने वच्चोके साथ यही करना चाहिए। इससे माताको कुछ कष्ट हो सकता है; क्योकि वह अधिक-से-अधिक कालतक अपनी संतानको असहाय, परावलंवी और संसारसे पृथक् रखना पसंद करती है, पर चतुर माताए अपनी संतानके मार्गमे वाधक नही होती।

प्रेमका वंधन

जिस परिवारमे मां-वाप और वच्चे एक-दूसरेको जानते-समझते और प्यार करते है वह वहुत सुखी होता है। जिन्हे अपने वच्चोसे घनिष्ठता प्राप्त करनेका समय नही मिलता वे जीवनका एक ऐसा अग खो देते है जो न तो धनसे प्राप्त हो सकता है और न समाजमे प्राप्त ऊचे स्थानसे। कुछ लोग यह घनिष्ठता प्राप्त करनेमे वहुत विलव कर देते है। जव वच्चे वहुत छोटे रहते है तभी वे वहुत प्रिय होते है। उस समय जो प्रेमवधन प्रस्तुत होता है उसे समय या सकट छिन्न-भिन्न नही कर सकता। वडे हो जानेपर इस प्रकारका सवध स्थापित करना असभव हो जाता है। इस अवस्थामे वे अपने माता-पिताको भी उसी आलोचक दृष्टिसे देखते है जिससे वे दूसरोको देखते है। उनसे मैत्रीभाव हो तो भी प्रेमका अभाव ही होता है। दाम्पत्य प्रेम

अस्थायी होता है, पर माता-पिताके साथ संतानका जो प्रेम होता है वह वरावर वना रहता है।

कुछ माताए अपने वच्चोकी ओरसे लापरवाह हो सकती है, पर अधिकाश उन्हीमें लीन रहती हैं, संतान ही उनके जीवनका सर्वस्व हो जाती है। वढनेपर वच्चोका क्षितिज विस्तृत हो जाता है। शैशवमे वच्चेके जीवनमे माता-पिता व्याप्त रह सकते है, पर कुछ ही दिन वाद अन्य विषय उनका ध्यान आकृष्ट करने लगते है। जो माता इस तथ्यका अनुभव नही करती उसे एक दिन रोना पडता है और वह अपना हृदय वैसा ही सूना पाती है जैसा लडकेके चले जानेपर उसका घर सूना हो जाता है।

जो अपने वच्चोके साथ प्रेम-संवध स्थापित करते है उन्हे इसका फल भी अच्छा ही मिलता है। तथाकथित कृतघ्न वच्चोके मां-वाप भी अयोग्य ही होते है। माता-पिताको संतानसे कृतज्ञताकी आशा भी नही करनी चाहिए। उनके लिए उनके वचपनमे जो कुछ किया गया था उससे अधिक वे कुछ करते भी नही। योग्य मां-वाप प्रतिफल चाहते भी नही। मां-वापके निरीक्षणमे वच्चे वढते है और वच्चोके संपर्कसे मां-वापके भी ज्ञान, सहानुभूति, प्रेम आदिमे वृद्धि होती है।

शारीरिक दंड

शारीरिक दंडका प्रयोग किया जाय या नही, इसका निश्चय मां-वापको ही करना चाहिए। वहुतेरे लोग वच्चोके कामोमे दोप ही देखा करते है और 'यह मत करो,' 'वह मत करो'-की रट लगाया करते है। वेचारे वच्चे समझ ही नही पाते

कि क्या किया जाय, क्या न किया जाय। बच्चोमें आगेकी बात सोचनेकी शक्ति नही होती, दो बाते भी एक साथ नही सोच सकते। फल यह होता है कि वे भूल जाते है कि क्या नही करना है, और कर देनेपर मा-बाप उनपर बरस पडते है। मां-बापको बहुत-सी बातोकी ओरसे आख-कान मूद भी लेना चाहिए। जो माताएं बराबर मनाही करती रहती है उनके स्वरमें जल्द ही कर्कशता और चिडचिड़ापन आ जाता है जो सबको बुरा मालूम होता है। आवश्यकता न होनेपर बच्चोके संबंधमे हस्तक्षेप न करनेका नियम ही बना लेना चाहिए और एक समय एक ही काम करनेको कहना चाहिए, बहुतसे कामोकी आज्ञा देनेपर वे भूल जायेंगे।

अगर मां-बाप शारीरिक दंड देनेका निर्णय करे तो उन्हे उसके उचित होनेका निश्चय होना चाहिए। अनुचित दंड हमेशा हानिकारक होता है। बहुतसे लोग तो इतने क्रोधाभिभूत हो जाते है कि सिर्फ गुस्सा उतारनेके लिए बच्चोको पीटते है। यह बहुत बुरा होता है। अगर ठढे दिमागसे विचार करनेपर दंड देना आवश्यक जान पड़े तो शातिपूर्वक ही दंड दिया जाय। अरक्षित बच्चेपर क्रुद्ध पिताका पाशविक आक्रमण कायरपनका सूचक है। पीछे, उत्तेजना शात हो जानेपर, अपनी गलतीपर अफसोस करना पड़ता है, पर उनमें इतना नैतिक बल नही होता या इतना मिथ्याभिमान होता है कि इस अन्यायके लिए क्षमा भी नही माग सकते। ऐसे लोग बच्चोको कष्ट देकर प्रेमका अंत कर देते है। बच्चोमे उचित-अनुचितकी बड़ी तेज परख होती है।

डराने-धमकानेसे हानि

"अमुक बात बुरी है"—इस तरहका वाक्य बच्चोसे कभी

न कहा जाय, केवल अच्छी बातोंपर जोर दिया जाय। बार-बार बुरी चीजोंका नाम लेते रहनेसे वे ही उनके दिमागमें बनी रहेंगी। बच्चोंको डराना भी ठीक नहीं है। उनके रोने या कोई बात न माननेपर लोग हौवेकी बात कहते, अंधेरेमें छोड़ आने या किसी बुरे आदमी या जानवरसे पकड़वानेकी धमकी देते हैं। भय सबके लिए बुरा होता है। शरीर और मन दोनोंको इससे क्षति पहुंचती है। बढ़ते हुए बच्चोंके लिए तो यह खास तौरसे बुरा होता है। बचपनमें मनमें घुसा हुआ डर बहुतोंके जीवनभर बना रहता है। बचपनमें डराए गये बहुतसे लोग जवान होनेपर भी अंधेरेमें बाहर निकलनेसे डरते हैं।

भोजनसंबंधी नियमोंका ज्ञान

बच्चोंको भोजनसंबंधी नियमोंका भी कुछ ज्ञान करा देना चाहिए। भीतर बेचैनी मालूम होनेपर भोजन हानिकारक होता है, यह ज्ञान वर्गमूल निकालना जानने या व्याकरणके नियमोंके ज्ञानसे अधिक महत्त्वका है। कम चबाने या आवश्यकतासे अधिक खानेसे शरीर और मन दोनोंका अपकर्ष होता है—यह समझ गणितका कोई प्रश्न हल करनेकी योग्यतासे अधिक मूल्यवान् है; पर ऐसी बातोंकी शिक्षा इस ढंगसे दी जाय कि उन्हें यह भान भी न हो कि शिक्षा दी जा रही है।

इस प्रकार दी गई शिक्षाका मूल्य आंका ही नहीं जा सकता। अगर सच पूछिए तो राष्ट्रसुधारका कार्य बच्चोंके सुधारसे ही आरंभ होना चाहिए।

व्यावहारिक शिक्षा

आज वहुतसे लोग इस मतके समर्थक देख पडते है कि वच्चोके लिए किसी तरहके अनुशासन और कार्यक्रमकी पावंदी नही होनी चाहिए, नही तो उनकी भावना कुठित हो जायगी, उनका विकास नही हो पायेगा और उनका सारा उत्साह ठंढा पड जायगा जिससे बादमे उनमे तरह-तरहकी मानसिक गुत्थिया बन जायगी, पर दरअसल इस तरहके भ्रांतमतका अनुसरण करनेपर न तो उनमें आजादी या आत्मसम्मानका भाव जाग्रत् होगा और न माता-पिताके प्रति सम्मानका भाव वढेगा। एक समय था जब लोग आवश्यकतासे अधिक अनुशासनपर जोर दिया करते थे और इसका दुष्परिणाम भी हुआ करता था, पर अगर परिवारको सुव्यवस्थित रूपमे चलाना है तो वच्चोके कल्याणके लिए कुछ कार्यक्रम और व्यक्तिगत अनुशासनकी कुछ पाबदी तो होनी ही चाहिए, हा, वच्चोको इस वातका ज्ञान नही होना चाहिए कि उन्हे शिक्षा देनेकी गरजसे यह सब किया जा रहा है और न माता और बच्चोमे आयेदिन युद्ध ही चलता रहना चाहिए।

उचित शिक्षा न मिलनेके कारण वहुतसे वच्चोका जीवन खराव हो जाता है और यह शिक्षा न मिलनेका कारण कोई सदोष सिद्धात न होकर प्राय मा-वापका आलस्य या प्रेम-प्रदर्शनका गलत तरीका ही हुआ करता है।

दो उद्देश्य

बच्चोंको शिक्षा देनेके दो उद्देश्य होते हैं—एक तो यह कि वे स्वस्थ और सदाचारी बने रहकर अपनेको सुखी और परिस्थितियोंके अनुकूल बनाने योग्य हो जायं और दूसरा यह कि वे अपनेको पहले अपने परिवारके छोटेसे समाजके और बादमें स्कूल तथा संसारके बड़े समाजके उपयुक्त बना सकें। कुछ काल पूर्व मा-बाप लड़केसे कड़ाईके साथ अनुशासन आदि-का पालन कराकर उसे परिवारका एक योग्य सदस्य बनानेका प्रयत्न करते थे और इस प्रयत्नमें सफलता प्राप्त करनेका अर्थ बच्चेके व्यक्तिगत सुखका नाश ही होता था, पर आजकलके आजाद बच्चे न तो व्यक्तिगत रूपसे सुखी हो पाते हैं और न परिवार और समाजके योग्य सदस्य ही। ऐसा बच्चा शायद ही कहीं मिलेगा जो अनुशासनहीन वातावरणमें पलकर उन बच्चोंके समान सुखी और परिवारके कल्याणका साधन हो जो शैशवसे ही सद्व्यवहार, अच्छे रहन-सहन और दूसरोंके प्रति सद्भावनावाले वातावरणमें पले हैं। सच पूछिए तो माता-पिताके प्यारमें ही वह वातावरण प्रस्तुत हो जाना चाहिए जिसमें बच्चा कुछ साधारण कर्तव्यों और बुद्धिमत्तापूर्वक बनाये हुए कार्यक्रमकी परिधिमें अपनी ही गतिसे सुखपूर्वक आगे बढ़ता जाय।

माताका कर्तव्य

शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिए जिसमें बच्चा बड़ा होनेपर मां-बापपर अवलंबित न रहकर अपने पैरोंपर मजेमें खड़ा होने योग्य हो जाय। दरअसल यह कर्तव्य माताका ही है,

पर इस कर्तव्यके पालनमे पिताकी अपेक्षा उसे अधिक कठिनता होगी, फिर भी जबतक वह इस कार्यको संपन्न नही करती उसका कर्तव्य पूरा नही होता। जो माताएं अशिक्षा और अज्ञानके अंधकारमे पडी हुई है उन्हे तो इस कर्तव्यका ज्ञान भी होना मुश्किल है। कुछ माताए आवश्यकतासे अधिक लाड-प्यार कर बच्चेको इस कदर परावलंबी और आत्मबलसे शून्य बना देती है कि वह स्वतंत्र रूपसे आगे नही बढ सकता जिसका दुखद परिणाम यह होता है कि वह भविष्यमे कभी अपनेको समाजके योग्य बना ही नही पाता। उसका दापत्य जीवन भी अच्छा नही होता, क्योकि उसमे अज्ञात रूपसे पत्नीके बजाय माताकी आवश्यकता और चाह बनी रहेगी। बच्चोके बालिग हो जाने और स्वयं कर्ता-धर्ता बन जानेपर उनके और माता-पिताके बीच नये प्रकारका प्रेम और मैत्रीका भाव बढता है और अगर उनका शैशव अच्छे ढंगसे व्यतीत हुआ है तो यह मैत्री और प्रेम दिनोदिन गाढ़ा ही होता जाता है।

कहानीद्वारा शिक्षा

छोटे बच्चोको कथा-कहानी बहुत प्रिय होती है। ऐसी बहुत-सी कहानिया गढकर उन्हे सुनाई जा सकती है जिनमे नायक बच्चे हो और कहानी सुननेवाले बच्चे अपनेको उन नायकोके स्थानपर प्रतिष्ठित कर सके। चरित्र-निर्माणकी शिक्षा आदर्शसे ही मिलती है, इसलिए आदर्शात्मक कहानिया भी इस उद्देश्यकी पूर्तिमें बड़ी सहायक होती है। सीधे नसीहत देनेका खयाल भी नही होना चाहिए, क्योकि इसका परिणाम उलटा ही होता है। कहनेका अभिप्राय यह कि बच्चेको जैसा

बनाना अभीष्ट हो उसका चित्र उसके मानसमे विद्यमान होना चाहिए जिसमे उसका अंतर्मन उसे वैसा बननेके लिए प्रेरणा प्रदान करता रहे। कल्पनाकी उड़ान इस कार्यमें बाधक नही होगी।

बच्चे क्यों खीझते हैं ?

अगर बच्चा चीखता-चिल्लाता और क्रोध करता या खीझता है तो यह माता-पिताका ही दोष समझा जाना चाहिए; क्योकि वे प्राय. ऐसे कार्य कर बैठते है कि बच्चेकी सहन-शक्तिके परे हो जानेपर उसका धैर्य छूट जाता है। कभी-कभी माता-पिता यह नही समझ पाते कि बच्चेकी आवश्यकता या कहनेपर ध्यान न देना उसके लिए कितना कष्टकर होता है। कुछ लोग तो जान-बूझकर बच्चेकी ओर ध्यान न देकर दूसरोसे बात करते रहते है और बच्चेको क्षुब्ध बनाए रखते है। उनकी यह धारणा होती है कि बच्चेको आत्मनियत्रण और प्रतीक्षा करनेका अभ्यास होना चाहिए। कुछ हदतक यह खयाल ठीक हो सकता है, क्योकि बच्चेको कामोके क्रमका ज्ञान होना चाहिए और चलते हुए वार्तालापमे बाधक नही होना चाहिए, पर माता-पिताको भी यह विवेक होना चाहिए कि कैसे अवसरोपर बच्चेकी आवश्यकतापर तत्काल ध्यान देना चाहिए और कब उससे प्रतीक्षा करानी चाहिए। स्थितिका रूप चाहे जैसा भी हो, पर बच्चेको इस तरह परेशान करनेसे उसे कोई शिक्षा नही मिलती। अगर ऐसा किया जाता है तो बच्चेको धैर्य या सहनशीलताका ऐसा पाठ पढ़ानेका प्रयत्न किया जाता है जिसके लिए उसमे उस अवस्थामे धारण-शक्ति नही होती।

ऐसे बच्चेमे माता-पिता या परिवारके प्रति सहयोगका भाव नही आयेगा ।

बच्चा कभी-कभी खीझ भी जाया करता है जिसे माता-पिता उसकी नटखटी समझ लेते है । यह स्थिति प्राय उस समय प्रस्तुत होती है जब वह अपनी सारी शक्ति लगाकर कोई काम करता होता है, पर ठीक तरहसे न होते देख माता झटसे काम पूरा कर देकर सतोपका अनुभव करती है । यही बात बच्चेको खिझानेवाली हो जाती है; क्योकि काम पूरा करनेके लिए तन-मनसे लगे होनेपर उसे बीचमे ही अपने प्रयत्नमे विफल होकर कामसे विरत हो जाना पड़ता है । इस हालतमे बच्चा कभी-कभी खीझकर चिल्ला पडता है और माताको मार भी बैठता है । उसका यह कार्य नटखटीमे शामिल किया जा सकता है, पर इसका मूल कारण माताका ही हस्तक्षेप होता है । इस प्रकारके बहुतसे कार्य बच्चे तथा माताकी ओरसे होते रहते है, पर माताको यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी तरह बच्चेको खिझाना—चाहे शब्दसे हो या कार्यसे—शिक्षा नही बल्कि बच्चेको तग करना है और यह माताका बहुत बड़ा दुर्गुण समझा जायगा ।

जेब-खर्च

बच्चेको शैशव—लगभग ५ वर्षकी अवस्था—से ही जेबखर्चके लिए कुछ पैसे देना अच्छा सिद्धात है; क्योंकि इसके व्यय और बचतसे वह इस विषयमे बहुत कुछ सीख ले सकता है । बच्चेकी अवस्था तथा माता-पिताकी आर्थिक स्थितिके अनुसार इस रकममे कुछ अंतर हो सकता है, पर उसकी अवस्था

बढनेके साथ-साथ यह रकम भी कुछ-कुछ बढाते जाना चाहिए। सस्तीके जमानेमे जो रकम दी जाती थी वह इस महगीके जमानेमें बहुत कम होगी। यह रकम नियमित रूपसे दी जानी चाहिए और आकस्मिक व्ययसे इस रकमका कोई सबध नही होना चाहिए, क्योंकि समय-समयपर बच्चा कोई खास चीज खरीदनेके लिए आग्रह कर सकता है। उसे अपना पैसा अपने ढगसे और इच्छानुसार खर्च करने देना चाहिए, पर कुछ लिख-पढ लेने योग्य हो जानेपर खर्चका हिसाब रखनेकी शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। इस प्रकार वह रुपए और उसे बचानेका महत्त्व आसानीसे समझ जाएगा। अगर वह और कुछ खरीदना चाहे, पर नियमित रूपसे मिलनेवाली रकम खर्च करना न चाहे या पर्याप्त न हो तो उसे उपार्जन करनेके लिए कुछ छोटे-मोटे कार्य करनेके लिए भी प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, पर यह काम परिवारकी सहायताके लिए नही होना चाहिए और ऐसा भी नही होना चाहिए जो समाजके लिए उपयोगी न हो। पारिश्रमिक भी सभी कामोके लिए न दिया जाय, क्योकि कुछ काम ऐसे भी होते हे जिन्हे परिवारके सब लोगोको मिलकर करना चाहिए। अतिरिक्त कार्यके लिए दिया जानेवाला पारिश्रमिक माकूल होना चाहिए और वह बच्चेका अपना धन होना चाहिए। बच्चेसे अधिक कामकी आशा रखकर उसकी प्रवृत्तिको कुद भी नही करना चाहिए, उसका अधिक समय खेल-कूदमें ही लगना चाहिए।

बच्चोंके प्रति व्यवहार

आपके बच्चे जबतक बिलकुल छोटे रहते है, उनकी दुनिया अपने परिवारतक और कार्यक्षेत्र अपने ही घरतक सीमित रहता है तबतक आप, अगर परिस्थितिया अनुकूल हो और रिश्तेदारो या किरायेदारोके साथ रहने-जैसी कोई असुविधा न हो तो, उनके स्वास्थ्य आदिका खयाल रखते हुए चाहे जैसा भी खाना खिला सकते है और रहने, खेलने आदिके लिए मनचाही व्यवस्था कर सकते है, पर कुछ होश हो जाने, पास-पड़ोसके लोगोके सपर्कमे आने और स्कूल जाने लगनेपर उनका ससार क्रमश विस्तृत हो जाता है, तब उनके ससारमे अन्य लड़के, उन लडकोके घर और विद्यालयका जीवन सम्मिलित हो जाता है जिससे माता-पिताके लिए अपना पालन-पोषणसंबधी सिद्धांत या स्तर बनाए रखना असभव हो जाता है। कुछ लोग तो अपने सिद्धातपर, जो बहुत अच्छा भी हो सकता है, कायम रहने और कडाईके साथ उसका पालन करनेके प्रयत्नमे अपनेको और अपने बच्चोको भी बाहरी दुनियासे अलग कर देनेकी भूल कर बैठते है जिससे प्राय लाभकी अपेक्षा हानि अधिक हो जाती है। अपनेको बाहरी दुनियासे अलग रखकर अच्छा और पूर्ण जीवन व्यतीत करना संभव नही है और जिनके विचार सपर्कमे आनेवालोके व्यवहारसे मेल नही खाते उनके लिए कुछ अशतक अपने विचारोमे परिवर्तन कर सामजस्य लाना अनिवार्य हो जाता है।

यह कोई जरूरी नही है कि आपका लडका आपके ही

विचारोंका हो। प्राकृतिक नियमोंके आप चाहे जितने भी कायल और समर्थक क्यों न हो, पर अपने बच्चेसे यह आशा करना कि वह भी आपकी ही तरह आपके सिद्धातोको, जिन्हें कुछ लोग सनक भी कहते-समझते होंगे, प्रचार करनेका प्रयत्न करेगा, उचित नही माना जा सकता। यह आवश्यक भी नही है, क्योकि अगर हम कुछ खास बातोमे ढीलापन ला दे तो बच्चे और उसके समवयस्को या मित्रोका आपसका सबध उसे दंड देकर खराब करनेकी मूर्खता न कर व्यवहारमे प्राकृतिक नियमोका मजेमे पालन कर सकते है।

सबसे विषम अवस्था

बच्चोकी किशोरावस्था, जो लगभग ग्यारहवें वर्षसे आरभ होकर लगभग सोलहवे वर्षतक चलती है, उनके लिए सबसे विषम होती है। शरीरमें होनेवाले परिवर्तनो और विस्तृत होते हुए जीवनसबधी दृष्टिकोणसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइया घरकी परिस्थितियोके कारण कम भी हो जा सकती है और बहुत बढ भी जा सकती है। अगर बच्चेमें माता-पिताके प्रति सहानुभूति न हो तो इस अवस्थाका आगमन होनेपर उनके साथ उसका सघर्ष अनुचित रूपमे बढ़ जा सकता है। अगर इस तरहका कोई चिह्न देख पडे तो अपने सिद्धातोका पालन करानेका आग्रह अग्निमे घी डालनेका काम करेगा और आपसकी तनातनी इस कदर बढ जायगी कि वह शीघ्र ही विद्रोहका रूप धारण कर लेगी। यह कोई जरूरी नही कि इस विद्रोहका कारण आपका सिद्धात उसे पसंद न आना हो, बल्कि यह होगा कि वह इस समय ऐसी ही अवस्थासे गुजरता होता है जिसमे

वह अपने घरको, यहातक कि मां-बापको भी नापसद करने लगता है और घरमे जो भी चीज प्रचलित व्यवहारके अनुरूप नही होगी वह उसमें विशेष रूपसे कुढन पैदा करनेवाली होगी।

पारिवारिक ऐक्यका भंग होना बहुत बुरा होता है। हम लोगोंमें ऐसा कोई नही होगा जो वात्सल्यप्रेम खोना पसद करे, फिर भी बहुतसे माता-पिता और बच्चे इस अवस्थामे आपसका संबंध बहुत कटु बना देते है। यह अवस्था प्रस्तुत हो जानेपर आपसमे संतोषजनक रूपमे बरतना बहुत कठिन हो जाता है। इस तरहकी कठिनाइयोसे बचनेका सबसे अच्छा और सरल उपाय यह है कि पूर्ववर्ती कालमे एक-दूसरेको समझनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न की जाय।

आरंभिक कालसे ही मां और बच्चेमे परस्पर विश्वास और सम्मानका भाव होना आवश्यक है। अगर भय—डांट-डपट, भर्त्सना, शारीरिक दंड आदि—के द्वारा शैशव और कुमारावस्थामे अनुशासन कायम रखनेका प्रयत्न किया गया है तो किशोरावस्थामे, जब कि बच्चेके साथ इस तरहका वर्ताव करना संभव नही हो सकता, घरके नियत्रणोके विरुद्ध उसमे प्रतिक्रिया हो सकती है; पर अगर युक्तिसंगत आधारपर—छोटी उम्रसे ही अच्छी आदते डालकर, अच्छे उदाहरण प्रस्तुत-कर, समझा-बुझाकर और अच्छे कामोके लिए पुरस्कृतकर—अनुशासनका पालन कराया गया है तो इस कालमें विरोधकी स्थिति प्रस्तुत होनेकी सभावना नही रहेगी।

किशोरावस्थामे बने रहनेवाले आपसके सम्मान और सहानुभूतिकी नीवं भी माता बच्चेकी अल्पावस्थामें ही उसकी बातोंपर ध्यान देकर डाल सकती है। प्रायः माताको इतनी

कम फुरसत मिलती है और बच्चोकी योजनाए और समस्याएं पारिवारिक कार्योंके मुकावलेमे इतनी महत्त्वहीन होती है कि माताए प्राय उनकी बाते ध्यानसे नही सुनती। अगर नौ-दसकी अवस्थामे भी वच्चेको यह विश्वास हो जाय कि माता उसकी वातोपर पूरा ध्यान देगी और उसकी समस्याओके प्रति सहानुभूति दिखलायेगी और कभी-कभी कठिनाईसे निकलनेका मार्ग सुझा भी देगी तो आगे चलकर भी अपनी कठिन समस्याओके हलके लिए उसके माताका सहारा ढूढते रहनेकी वहुत कुछ संभावना रहेगी, इसके विपरीत अगर माता-पिताने शैशवकालकी समस्याओको समझने और सहानुभूति दिखलानेपर ध्यान नही दिया तो वडा होनेपर वह अपनी समस्याएं उनके सामने रखनेका शायद ही खयाल करे।

दूसरोकी समस्याओको कोई समस्या न मानकर टाल देना, कम महत्त्वकी मानना या उनके पीछे माथापच्ची करना, बेकार समझना आसान होता है, पर यह अच्छा नही है। अगर बच्चोकी समस्याओके प्रति भी ऐसी ही मनोवृत्ति दिखलाई गई तो उनमे यह विश्वास उत्पन्न नही होगा कि आगे चलकर आवश्यकता पडनेपर माता-पिता उनकी समस्याएं समझने और उनके प्रति सहानुभूति दिखलानेका खयाल रखेगे।

विरोधका कारण

अगर चौदह या इससे अधिककी अवस्थामे वच्चेमे विद्रोहकी भावना वढती हो, विशेपकर उस हालतमें जव आपसमे मैत्री, सहयोग और सहानुभूतिका भाव नही उत्पन्न किया गया है, तो वे माता-पिता जो किसी अच्छी वातमे वहुत विश्वास करते

है और अपने बच्चेके संबंधमें उसे ही बरतना चाहते हैं, यह देखेंगे कि वही बात विरोधका कारण बन रही है। उदाहरणके लिए प्राकृतिक आहारकी ही बात ले लीजिए। माता-पिता तो यह खयाल करते हैं कि बच्चेके शारीरिक लाभके विचारसे विशेष प्रकारका आहार रखनेका आग्रह सर्वथा न्याय्य है और बच्चेको स्कूलमें दिया जानेवाला नाश्ता न लेने देकर उसके लिए खास तरहका नाश्ता घरसे भेज सकते हैं। अगर बच्चा घरकी चीजोंसे संतुष्ट है तब तो कोई बात ही नहीं, पर अगर वह उन्हें नापसंद करे और अपने साथियोंसे भिन्न पदार्थ खाना बुरा माने तो घरसे नाश्ता भेजना बंद कर देना चाहिए। अगर बच्चा अपने मित्रों या सहपाठियोंसे मिलना चाहता है या उनके साथ भ्रमणमें बाहर जाना चाहता है तो यह जानते हुए भी कि उसका भोजन भिन्न प्रकारका, औरों-जैसा ही होगा, उसे जानेसे नहीं रोकना चाहिए और विरोधसूचक विचारोंको मुंहपर नहीं लाना चाहिए।

भोजन कैसा हो?

प्राकृतिक भोजन भी स्वादिष्ट और आकर्षक बनाया जा सकता है और बनाया जाना भी चाहिए जिसमें बच्चे बाहरकी चीजोंसे घरकी चीजोंमें अधिक आनंद मानें और बाहरकी चीजें अच्छी मानते हुए भी तरजीह घरकी चीजोंको ही दें। अगर घरसे बाहर जानेपर बच्चे खान-पानसंबंधी भूलें करें तो माता-पिताको बुरा नहीं मानना चाहिए। बच्चोंकी प्रवृत्ति प्रयोगकी तरफ अधिक होती है। अगर उनपर कोई ऐसा प्रतिबंध न लगाया जाय जिससे उनमें विद्रोहकी भावना उत्पन्न हो और

उनकी आरंभिक शिक्षा और खान-पान अच्छे सिद्धांतके आधार-पर चलाया गया हो तो वे अधिक दिनोतक नही भटकते रहेगे। अगर बच्चेके साथियोंको कभी दावत दी जाय तो खाद्य पदार्थ बहुत कुछ प्राकृतिक रखते हुए भी इस प्रकार तैयार किए जाय कि उसके मित्र उन्हे खाकर आनंद और तृप्ति प्राप्त कर सके। अगर आपका बच्चा यह अनुभव कर सके कि उसके मित्र आपको सनकी न समझकर भोजन और पाकविद्याकी प्रशसा करेंगे तो इसका उसके मनपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। उसके मित्र किस प्रकारका भोजन पसंद करेगे इसका विचार कर कुछ परिवर्तन कर दिया जा सकता है। ऐसा न होनेपर बच्चेका दिल टूट जायगा और भविष्यमे अपने साथियोंको बुलानेका साहस नही करेगा जो उसके जीवनके लिए अनिष्टकर होगा।

अगर किशोरावस्थाके आगमनकालमें बच्चेमें प्राकृतिक आहारके प्रति अरुचि हो तो उस अवस्थामे उसकी प्रवृत्ति रोकनेके लिए कुछ कर सकना मुश्किल है। अगर आरभिक शिक्षा या रहन-सहनका ढंग उसपर ऐसी कोई छाप नही डाल सका है तो इस अवस्थामे उसपर कोई स्थायी प्रभाव नही डाला जा सकता। इस स्थितिमें कड़ाई और हठसे काम लेनेपर परिणाम संघर्षके रूपमें ही सामने आयेगा। निर्माणका काल शैशव ही है। माताने शैशवकालमे प्राकृतिक आहारद्वारा स्वास्थ्यकी जो आधार-शिला रखी है उसीसे उसको संतोष करना चाहिए और इसके लिए दुःख नही मानना चाहिए कि उसका लड़का उसी रास्तेपर नही चल रहा है, उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य तो पहले ही हो चुका रहेगा।

हठी बच्चे

जब अदृष्ट किसी स्त्रीकी गोद फूलसे कोमल नन्हे बच्चेसे भर देता है तो वह घड़ी उसके जीवनके महान् परिवर्तनका समय होती है। स्त्रीके हृदयमे बच्चेके प्रति बेहद प्यार पैदा हो जाता है और उसका मुख्य एवं सर्वश्रेष्ठ कार्य बच्चेकी हर तरहसे रक्षा करना एवं जहांतक बन सके उसे पूर्ण जीवनके निकट ले जाना हो जाता है। उसकी इसी मनोवृत्तिको मातृत्व कहते है।

शिशुपालन एव पोषणसबधी विज्ञानमे इधर पिछले कुछ वर्षोंमे बहुत उन्नति हुई है जिसकी जानकारी कोई भी मां कर सकती है। इस जानकारीके कारण कई देशोमे बच्चोकी मृत्यु-संख्या बहुत घट गई है। इधर हालमे बच्चोके संबधमे और भी एक खास खोज हुई है जिसकी जानकारी माताओके लिए नितांत आवश्यक है। यह खोज बच्चेके मस्तिष्क, उसकी भावनाओ एवं आत्माके विकाससे संबंध रखती है और बताती है कि मनुष्यके मनोवैज्ञानिक शिक्षणोके लिए उसके जीवनके आरभके दो वर्षोका बहुत अधिक महत्त्व है।

आरंभिक अवस्था

आज स्कूलो और कालेजोंकी संख्या बहुत बढ़ जानेपर भी युवको एवं युवतियोमे न तो वह सच्चरित्रता पाई जाती है और न वह बुद्धिबल जिसकी हम उनसे आशा रखते हैं। इस हीनताका कारण उनके मानसिक विकासके समय ठीक मनो-विज्ञानपूर्ण वायुमंडलका अभाव है। सबसे पहली बात यह है

कि माताको इसका ज्ञान होना चाहिए कि प्रौढके और वच्चेके मस्तिष्कमे वहुत वडा अंतर होता है। वच्चेका मस्तिष्क वर्षोंके शिक्षण एवं विकासके वाद ही काम करना आरंभ करता है। नवजात शिशुको किसी प्रकारका कोई भी ज्ञान नही होता, ज्यो-ज्यो उसका मस्तिष्क विकसित होता है वह सीखता जाता है।

आरंभमें वच्चेके अविकसित मस्तिष्कमें डर, क्रोध और प्यार—केवल ये तीन नैसर्गिक वृत्तिया निवास करती है। जोरकी आवाज, गिरने और दर्दसे वह डरता है, किसी प्रकारकी रुकावट होनेपर उसे क्रोध आता है और उसे धीरे-धीरे थपथपाना उसमे प्यार पैदा करता है। यही थोड़ी-सी पूंजी लेकर वच्चेका मस्तिष्क 'अवस्या धर्म' एवं 'सुयोग धर्म'के अनुसार सीखता एवं वढता है।

अवेरेमे वच्चेको यदि कोई टकरा दे या गिरा दे तो ऐसे समय उसका डर अंधेरेसे संवद्ध हो जाता है जिसका फल यह होता है कि आगे जव कभी उसे अंधेरेमे लाया जाता है तो वह अवेरेसे वहुत अधिक डरने लगता है। धीरे-धीरे थपकी लगाना वच्चेका प्यार जाग्रत् करता है और क्योकि वच्चेको मांकी थपकियां अधिक मिलती है इसलिए उसका प्यार मांसे संवद्ध हो जाता है।

वच्चेकी दुनिया

ज्यों-ज्यो वच्चा वडा होता है उसकी आंखे देखने लगती है और नाड़ीसंस्थानका वल वढनेके साथ-साथ उसका संवंध वच्चेके दिमागके साथ जुड़ने लगता है। इस समय वच्चा

कोई चमकीली-सी चीज—जैसे कोई खिलौना—पकड़नेकी हालतमें हो जाता है, धीरे-धीरे वह हाथको हिलाने लगता है और खिलौनेको अपने खटोलेपर पटक देता है। इस वक्त बच्चेकी खुशी बढ जाती है, उसकी खुशीमें देखने और कुछ करनेकी खुशी शामिल हो जाती है। यही उसकी दुनिया है और उसे इससे जो खुशी मिलती है उससे प्रतीत होता है कि उसे उसकी दुनिया बहुत मधुर लगती है। जब उसकी बोलने-की शक्ति बढती है तब अपनी इस प्रसन्नताको प्रकट करनेके लिए वह किलकारियां मारता है।

बच्चा धीरे-धीरे शोर करना सीख जाता है। मान लीजिए ऐसे वक्त किसीके सिरमे दर्द है, बच्चेका शोर करना उससे सहन नही होता। वह बच्चेके हाथसे झिडककर खिलौना छीन लेता है और उसके हाथोको दबाकर उसे चादर उढा देता है। बच्चा विवश हो जाता है और आप जानते है विवशता उसमे क्रोध उत्पन्न करती है जिसे व्यक्त करनेके लिए वह चिल्लाने और रोने लगता है। उसके आनंद और खुशीकी सारी दुनिया ही उजड गई है और वह चादरके छोरसे बांध दिया गया है। विवशताके इस बंधनसे मुक्त होनेके लिए वह पागलकी तरह प्रयास करता है। यदि उसके जीवनमे इस प्रकार क्रुद्ध होनेके मौके बराबर आते रहते है तो उसमे घृणा करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार हम बच्चेको दुनियासे घृणा करना एवं उससे लडना सिखा देते है।

भयका तूफान

जब बच्चा जरा बड़ा होता है और घुटनोंके बल चलने

लगता है तब वह हर चीजके निकट पहुंचनेकी कोशिश करता है। वह देखिए उसने अपने पिताजीकी सोनेकी घडी उठा ली कितना सुदर खिलौना है वह ! अब वह उसे धरतीपर पटकने जा रहा है। पिताजीने देखा। डांटा बच्चेको। दौड़-कर उसे दो धौल लगाये और उसके हाथसे घड़ी छीन ली। बच्चेकी सुनहली चिड़िया उड गई। पिताजीके डांटनेकी आवाज और मारसे हुई पीड़ा उसके मनमे क्रोध उत्पन्न कर देती है। बेचारा बच्चा जमीनपर लोट जाता है और जोर-जोरसे रोने लगता है—वह दुनियाके सबसे महान् एवं विनाशक शत्रु भयसे आक्रात है। बच्चेको घरमे क्या नही छूना चाहिए, किस चीजसे उसे नही खेलना चाहिए, यह सिखानेका यदि माता-पिताका यही तरीका रहा तो बच्चेको भयके इन तूफानो-का बार-बार सामना करना पडता है और अंतमे बच्चेमें दुनियाकी चीजे ढूढ़ने और उनसे खेलनेकी इच्छा और शक्ति ही मर जाती है। अब हर चीजको छूते, हर नया काम करते उसे डर सताने लगता है। इस प्रकार कोई भी माता अपने बच्चेको हीन बना रहनेवाला लडका बना सकती और उसमें हर चीजसे और हर आदमीसे डरनेकी आदत डाल सकती है।

कुछ करनेका हौसला

बच्चा इस सारी धरतीका राजा है, दुनियाकी सारी चीजे उसकी है, उसके खेलनेके लिए बनी है। जिन चीजोको मां बच्चेकी निगाहसे बचाना चाहती है उन्हे उसे अक्लमंदीसे जरा ऊंचेपर या दूर रखना चाहिए, पर अगर बच्चेने कहीसे कैंची खोज ही निकाली तो उसे कोई दूसरी चीज देकर बहला लेना

कठिन नही है। इस समय बच्चेके लिए जीवनका अर्थ ही नई-नई चीजे करना है। उसके शरीरका अग-अग प्रत्येक मिनट दुनियामें जो चीजे हैं उन सबके साथ कुछ कर देखनेकी कोशिश करता है।

इस प्रकार माका बच्चेको एक चीजके बाद दूसरी चीजसे परिचित कराना, उसे हर चीजको अपनी शक्तिके अनुसार पूरी तरह समझनेका मौका देना ही बच्चेमे कुछ नया करनेका बीज बोता है एवं उसके मस्तिष्कको सही अर्थमे शक्तिशाली बनाता है।

योगधर्म

बच्चेमे न तर्क करनेकी शक्ति होती है, न नैतिक बुद्धि और न उसमे स्मरणशक्तिका विकास हुआ होता है। चीजे उसे योग-धर्मके अनुसार याद रहती है जिसका अर्थ है उसके अचेतन मनपर बाहरी प्रभाव पडता है और यदि वह प्रभाव काफी गहरा है तो वह हमेशाके लिए बच्चेके मनपर लिखा रह जाता है। उदाहरणके लिए बच्चा जब जलती लालटेनकी चिमनीसे हाथ लगाता है तो उसकी अगुलिया जल जाती है; अब दर्द और लालटेनका योग हो जाता है और वह लालटेनसे डरना सीख जाता है।

बच्चेका लालटेनसे डरना उसकी याददाश्तके बलपर नही होता, यह डर उसके चेतन नही, अचेतन मस्तिष्कमे होता है। डरना उसकी नैसर्गिक वृत्तिमे शामिल हो जाता है जिसपर बुद्धिका कोई प्रभाव नही पडता। प्राय. सभीको लालटेनसे जलनेका अनुभव हुआ है, फलत गरम चीजके संपर्कमे आते

ही हर आदमी सिकुड जाता है। यह क्रिया सहानुभूतिसाध्य है। दिमाग उसके लिए कुछ करे इसके पहले ही वह पूरी हो जाती है। इससे बचपनमे चरित्रपर पड़नेवाले कार्योंके प्रभाव-को अच्छी तरह समझा जा सकता है। जिसके दिमागपर 'यह मत करो', 'वह मत करो'के हथौडेकी चोटके बचपनमें पड़े अनगिनत दाग होते हैं वह स्वभावत. हर हुक्मके विरुद्ध हो जाता है। असलमे वह बागी बना दिया जाता है।

अगर मां यह समझती है कि बच्चेमे क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए समझनेकी शक्ति है और उसके गलती करनेपर उसे चपत लगाती है तो बच्चेमें डर और क्रोध घर कर लेते हैं और अचेतन मनमे स्थान बनाकर बच्चेको हर शक्ति और हर आज्ञाका विरोधी बना देते हैं। अतमें यह विरोध योगधर्मद्वारा उसकी मासे संबद्ध हो जाता है जो उसे सिखाता है कि हर आनंदका काम उसे छिपकर करना चाहिए ताकि माको कभी उसकी जानकारी न हो।

हठकी प्रवृत्ति

अपने दूसरे वर्षमे बच्चेको अपनी मिली चीजे अधिक प्रिय हो जाती हैं और जब बच्चेसे वे छीन ली जाती हैं, उसे अपनी इच्छाकी पूर्ति नही करने दी जाती तो बच्चा जोरोसे रोने और पैर पटकने लगता है, यहातक कि वह जमीनपर लोटने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसे कोई दौरा आ गया हो। उसकी यह दशा उसके क्रोध एवं नैराश्यकी गहराईके द्योतक है। वह इन आवेगोंके वशीभूत होकर तबतक रोता-चिल्लाता रहता है जबतक कि उसमे शक्ति रहती है;

अंतमे वह शिथिल होकर पड जाता है और सिसकिया भरने लगता है। अब मां डर जाती है, बच्चेको गोदमे उठा लेती है और उसे उसकी इच्छित वस्तु दे देती है। बच्चा रोने और वस्तुके मिलनेसे संबध जोडता है और जान जाता है कि क्रोध करना और रोना विजयके सहायक है और इस प्रकार वह हठ करना सीख जाता है।

शिक्षणकी रीति

बच्चेके शिक्षणकी उचित रीति यह है कि दुनियाको समझनेमे उसकी उचित सहायता की जाय और उसे समझनेका आनद उठाने दिया जाय। आनदप्राप्तिकी कोशिश ही उसके हर कामके पीछे होती है। जो माता दुनियाको समझनेमे बच्चेकी सहायता ईमानदारीके साथ इस रीतिसे करती है उसका बच्चा उसकी आज्ञाओका पालन बड़ी खुशीसे करता है और ज्यो-ज्यो उसकी याद रखनेकी शक्ति बढती है, तर्क-शक्ति एव नैतिकता जाग्रत् होती है वह आवश्यक नियमोका पालन करने लगता है।

बस, इसी एक उपायसे माता बच्चेके मस्तिष्क और चरित्र-को सौंदर्य और आनदका पथिक बना सकती है अन्यथा बच्चेमें शरारतके बीज बोये जाते है, वे लडना-झगडना सीखते है और बड़े होनेपर सारी दुनियाको युद्धकी अग्निमे झोक देते है।

हम बालकको बार-बार कहा करते है—"अब हठ मत करना, तू कितना हठी है? कितना जिद्दी है?" ऐसा कहनेसे बालकको यह ज्ञात होता है कि उसमे हठ करनेकी शक्ति है, वह हठी है, जिद्दी है। इस प्रकार बालक अधिकाधिक

हठी होता जाता है। इससे हम दुखी होते है किंतु बालक हमसे भी दस गुना दुखी होता है। उसका सारा दिन "एं-एं-एं" करनेमे बीतता है। फलत. बालक और हममे एक नई अनावश्यक खटपट होने लगती है।

दूर कैसे किया जाय ?

बालकका हठ दूर करनेका सच्चा उपाय यह है कि हम अपने मनमे तो यह समझ ले कि वह हठी है, किंतु उससे न कहे कि वह हठ करता है। हठका ठीक-ठीक इलाज करनेके लिए सबसे पहले यह जानना-समझना चाहिए कि हठ है क्या ? कई बार हठका कोई इलाज नही होता। इसका कारण यह है कि हठ-जैसी दिखाई देनेवाली बहुत-सी बातोको हम हठ माननेकी भूल करते है अथवा वास्तविक हठको ठीक-ठीक नही समझते।

हठ दूर करनेका पहला उपाय है वास्तविक हठके रूपको पहचानना। अतः "हठ क्या है ?" यह सवाल सदा हमारे सामने रहना चाहिए।

एक चार वर्षकी लडकी अपनी बड़ी बहनके साथ किसी पडोसिनके यहां गई। पड़ोसिनने कहा "बहन, हमारा पटडा भिजवाना"। घर पहुंचकर लड़की पटडा उठाने लगी और उसके न उठनेपर जोर-जोरसे रोने और चिल्लाने लगी। जब घरके आदमियोने उसके रोनेकी ओर ध्यान ही नही दिया तो वह और भी जोरसे रोने लगी। अब पिताका ध्यान उसकी ओर गया। रोनेका कारण पूछनेपर मालूम हुआ कि वह पटडा उठाकर पड़ोसिनके घर ले जाना चाहती है। पिताके अकेले

ही पटडा उठानेपर वह फिर रोने लगी, क्योकि वह सिर्फ सहायता चाहती थी। इसपर पटडेको एक तरफसे उसके पिताने और दूसरी तरफसे उसने और उसकी वहनने पकड़ा। इस प्रकार पटडा पडोसिनके घर पहुंचाया गया। लड़की आनदसे नाचने लगी और खुश होकर पड़ोसिनसे कहने लगी—'देखिए हम आपका पटडा ले आये हैं।'

पटडेके न उठनेपर लडकीका रोना और चिल्लाना कोई सामान्य बाल-हठ जैसी चीज न थी। आवश्यक सहायता देनेके वदले "लडकी कितनी हठीली है?" "एक वातके पीछे पड़ जानेपर उसे छोडती ही नही" "किस लिए चिल्ला रही है?" "अभी नही", "हम भिजवा देगे" "क्यो दिमाग चाट रही है?" आदि वातोमेसे कोई वात उसे कही जाती तो उसको भारी दु ख होता—एक तो अपने निश्चित अच्छे एवं निर्दोष कार्यके अधूरे रह जानेका और दूसरे अपने घरके प्रियजनोकी असहानुभूतिका।

वास्तविक हठको पहचाननेके लिए वालकको निकटसे, उसीका बनकर, उसीकी दृष्टिसे देखने और समझनेका अभ्यास करना चाहिए और जव वह ऊधम करे तव इस वातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि असली हठ है क्या चीज।

ऐसा करनेपर हमे मालूम हो जायगा कि पहले जिन घटनाओमे हमे हठ नजर आता था उनमे हठ नही था। अशक्ति, अस्वस्थता अथवा थकावटके कारण वालकके रोने और झगड़नेको ही हम हठ समझ बैठते है। ज्यो-ज्यो हम कारणोकी खोज करेगे त्यों-त्यों हमें हठके असली रूपका पता लगता जायगा और एक वार तो ऐसा लगेगा कि वाल-जगत्मे हठ-जैसी कोई

चीज है ही नही, किंतु यह वात नही है। वालक कितनी ही वार हठ-रोगसे पीड़ित होता है जिसका तत्काल इलाज होना चाहिए।

अस्वस्थताकी अवस्थामें

शारीरिक अस्वस्थता या निर्वलताके कारण यदि वालक झगडालू और चिडचिडा हो गया है तो उसका इलाज करना और उसकी सार-सभाल रखना आवश्यक है, किंतु ऐसे समय वालकका मानसिक निर्वलता या विकारका शिकार हो जाना भी सभव है। अत इस ओर भी हमारा ध्यान होना चाहिए। ऐसे समय वालककी वीमारीकी अवस्थासे अधिक महत्त्व देने अथवा जरूरतसे ज्यादा उसकी सार-संभाल करने तथा सव कुछ उसके इच्छानुसार करते रहनेसे उसके हठीला वन जानेकी संभावना है। घरमे एक ही वालक होनेके कारण जरूरतसे ज्यादा उसका मान होनेसे भी वह हठीला वन जाता है। अक्सर सवसे छोटा वालक हठी वनता है। धनवानोके वालक प्राय· हठी होते हैं।

हठ करनेकी लत

वाल-हठमे वालकको दुनियाका राजा वननेकी इच्छा होती है। इसका मतलव यह है कि जिनपर वालकका प्रभाव होता है उन सवको अपने इच्छानुसार वह चलाना चाहता है। ऐसी विकृत इच्छाका उदय तभी होता है जव वालकको यह ज्ञान हो जाता है कि उसके रोने और झगड़नेमे वड़े-से-वड़ेको अपने सामने झुकानेकी शक्ति है।

एक चार वर्षकी इकलौती लडकी थी। उसकी सार-सभाल करनेके लिए उसकी माताके अलावा एक नौकरानी भी थी। नौकरानीका यह खयाल था कि घरमे एक ही वच्ची है, वह जो कुछ कहे वह करना ही चाहिए। मांका खयाल था कि घरमे एक ही लडकी है, इसलिए वड़े अच्छे ढगसे इसका पालन-पोषण होना चाहिए। जब वालिका स्वच्छद होकर कुछ कहती तो मा उसको रोक देती। थोडी देरमे नौकरानी आती और कहती 'आप तो वडी निर्दय है। ले-देकर एक ही तो लड़की है, वह इतनी रोती है, किंतु आपके मनमे जरा भी दया नही आती।' यह कहकर वह उसे अपनी गोदीमे उटा लेती, खानेको देती, समझाती और 'रानी वेटी', 'हीरा वेटी' कहकर उसे मनाती। हृष्ट-पुष्ट होनेपर भी लडकी दिनमे दो-तीन वार रोती और घटोतक रोती रहती। यदि यह कहे तो वेजा न होगा कि उस लड़कीको हठ-रोग हो गया था।

लड़कीकी मांका ध्यान इस ओर गया। उसने एकदम एकतत्र राज शुरू कर दिया। एक-दो वार लडकी खूव रोई, किंतु माके दृढ रहनेपर वह आठ-दस दिनमे ही विल्कुल वदल गई। आठ-दस दिन पहले जो लडकी दु खी रहती और रोती थी वह अब प्रसन्नचित्त, हँसोड और सुदृढ मनवाली वन गई।

ऊपरके उदाहरणमे जो स्थान नौकरानीका था वही स्थान घरमे आमतौरपर माता-पिताका होता है। नौकरानीको तो घरसे अलग किया जा सकता है, किंतु कुटुवको तोड देना असभव है। यही कारण है कि बालक हठके शिकार वन जाते है; किंतु लोगोकी तो यह धारणा है कि जो वालकको मारता है, डांटता है, वही उसको कैसे मना सकता है? इसलिए एक

मारनेवाला, डांट-फटकार वतानेवाला और सख्ती करनेवाला हो और दूसरा ऐसा प्रसंग आनेपर वालकको प्यारसे अपने पास वुलानेवाला हो। मां मारे तो वालक नानी या दादीके पास जाय और वह 'वस, अव रो मत' कहकर उसको अपने पास विठाये। इस प्रकार नियंत्रणकी दूषित कल्पना हमारे अंदर घर कर गई है जिसके फलस्वरूप वालक व्यर्थ ही दुखी होते हैं।

दो विशेषताएं

हठकी दो विशेषताएं हैं—एक तो अपनी वात करवाकर छोड़ना और दूसरी नियमोंका पालन न करना। वालक हो चाहे वड़ा, यदि वह अपनी इच्छा-शक्तिका विवेकपूर्वक उपयोग करता है तो वह इच्छा-शक्ति है; इसके विपरीत यदि वह अपनी इच्छा-शक्तिका दुरुपयोग करता है, विचारपूर्वक उससे काम नही लेता तो यह हठ है। वालककी विकसित होनेवाली इच्छा-शक्तिको वलवान् वनाने तथा उसको हठका रूप धारण करनेसे वचानेके लिए नियंत्रणकी आवश्यकता है। दुलारमें पला हुआ वालक नियमोको तोड़ना अपना विशेषाधिकार समझता है और नियमपालन करानेवाले माता-पिताको अपने इच्छानुसार झुकानेमे उसे सत्ताके विकृत आनंदका अनुभव होता है।

हठी वालकका विकास नही होता। उसमे शक्ति होनेपर भी वह अविकसित ही रहता है। फलत. वालक और हम दोनों ही दुखी होते है। हठ छुड़ानेका पुराना तरीका इच्छा-शक्तिको तोड़ देना है, किंतु वालककी इच्छा-शक्तिको तोड़कर

उसको आज्ञाकारी बनानेका तरीका कुछ अच्छा नही है । इससे तो बालक उल्टा विद्रोही और द्वेषी बनता है । इस प्रकार उसकी इच्छा-शक्तिका बल घटनेके बजाय अधिक तेजीसे विकृत होता है, अत. बालक डरपोक और भीरु बनता है । मतलब यह कि उसकी इच्छा-शक्ति सचमुच टूट जाती है, पराधीन बन जाती है और उसका विकास नही हो पाता । हठका एक ही इलाज है—दृढ निश्चय । किंतु इस बातका जरूर पता लगाते रहना चाहिए कि हमारा निश्चय ठीक है या नही । एक बार निर्णय कर लेनेके बाद हमे चौहानकी तरह सख्त और दृढ बन जाना चाहिए । अधिक बोलने और समझानेसे भी कोई लाभ नही होता । फिर बालकका रोना-धोना, हाथ-पैर मारना या और कुछ करना बडी शाति और दृढतासे देखते रहना चाहिए । इन एक-दो अग्निपरीक्षाओमेसे गुजरनेके बाद बालक ठीक रास्तेपर आ जायगा ।

हतोत्साह बच्चोंका सुधार

जिन वच्चोका लालन-पालन प्राकृतिक ढगसे होता है वे साधारणत. इतने स्वस्थ होते हैं कि उनके हर एक कामसे उनके अच्छे होनेका परिचय मिलता है और अन्य बच्चोके मुकाबलेमे वे इतने अच्छे ठहरते है कि वरवस ध्यान आकृष्ट कर ही लेते है। उनकी आंखे चमकती रहती है, त्वचा स्वच्छ होती है, वे उत्साह और उमंगसे भरे होते है और हर एक बातमें सतर्क देख पडते है। फिर भी कुछ ऐसे बच्चे होते है जिनका पालन उपर्युक्त ढंगसे होनेपर भी प्राय. कोई-न-कोई शिकायत बनी रहती है। उनकी अवस्था देखकर तो यही अनुमान होता है कि यह पद्धति जैसी होनेका दावा करती है वस्तुतः वैसी नही है। माता-पिता और संबधियोको इसका कारण भी समझमे नही आता। इस पद्धतिमे दिलचस्पी लेनेवाले प्रायः अन्य आवश्यक बातोसे भी परिचित होते है, इसलिए उनके सबंधमें यह नही माना जा सकता कि वे अपने बच्चेको शारीरिक दंड देते होगे। इसके विपरीत वे बच्चेका सहयोग प्राप्त करना चाहेगे, क्योकि वे जानते है कि उसकी वृद्धि और प्रगति उसीकी आंतरिक शक्तिके सहारे होगी, धमकी या दंडके जरिये बाहरसे उसमे नही लाई जा सकती।

ये माता-पिता और अभिभावक भी तो आखिर मनुष्य ही है; उनमे कमजोरियां हो सकती है और धारणाए भी भ्रांत हो सकती है। ऐसी हालतमे, सभव है, उनका और बच्चेका संबंध उतना अच्छा न रह पाता हो। शायद वे बच्चेसे बहुत

अधिककी आशा करते हो, शायद यह भी आशा करते हो कि बच्चा अपने वर्गमे शीर्षस्थानीय होकर रहेगा, पर ऐसा न होनेपर उनका दिल बैठ जाता हो और अधिक परिश्रम करनेके लिए वे दवाव भी डालते हो। एक क्षेत्रमे यह स्थिति प्रस्तुत होनेपर और क्षेत्रोमें प्राप्त होनेवाली सफलता इस दोषको मिटा दे सकती है, पर प्राय होता यह है कि बच्चेमे जवतक अयोग्य और औरोसे हीन होनेकी भावना वनी रहती है, तवतक सफलता उससे दूर ही रहती है।

उत्साहहीनताका प्रभाव

उत्साहहीनताका शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकारका प्रभाव होता है। जो विषय बच्चेके लिए कठिन पडता है वही अगर रोज क्लासमे चलता रहे तो वह अस्वस्थ हो जा सकता है, उसका दिल-दिमाग खराव हो जा सकता है और हकलानेका या और कोई विकार भी उसे हो जा सकता है। बच्चेमें आनेवाली उत्साहहीनता उसके चलने, खडे होने, वैठने आदिमे जल्द ही प्रकट होने लगती है। उसके शरीरकी आकृति परिवर्तित हो जाती है और कुछ अंगोमें स्थान-भ्रष्टता आनेके कारण उनकी सक्रियता भी मंद पड़ जाती है। प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार चाहे जितना भी उसका उपचार किया जाय उसकी उत्साह-हीनता नही जायगी। इसे दूर करनेके लिए पहले माता-पिताको उसकी स्थितिसे भलीभाति परिचित होना पड़ेगा जिसमें उसके अदर आया हुआ तनाव निकालकर उसकी प्रगतिका मार्ग उन्मुक्त किया जा सके। अगर कठिन मालूम होनेवाले विषयका ज्ञान प्राप्त करनेमे व्यक्तिगत रूपमे उसकी

कुछ सहायता कर दी जाय तो वह धीरे-धीरे सफलताके मार्गपर अग्रसर होने लगेगा और वह उसमे मनोयोगपूर्वक लग जायगा क्योकि अव वह यह समझने लगेगा कि ज्ञान प्राप्त करनेसे ही प्रगति होती है।

परिस्थितियोंका प्रभाव

माता-पिताका दवाव ही हमेशा वच्चोंकी उत्साहहीनताका कारण नही हुआ करता। युद्ध, राजनीतिक उथल-पुथल—जैसी कि हालमे ही भारतमे आवादीके तवादलेके कारण हुई है—आदिके कारण सामाजिक व्यवस्था विशृंखल हो जानेसे जो कठिनाइया उत्पन्न होती है उनका सहन करनेमे वच्चे समर्थ नही होते जिससे परीक्षामे असफल होकर हतोत्साह हो जाते है। अस्वस्थता या किसी और कारणसे कुछ दिनोतक विद्यालयसे अनुपस्थित रहनेवाले वच्चे वहुतसे पाठोको नही सीख पाते और वर्गकी पढाईके साथ चलनेमे असमर्थ होकर उत्साहहीन हो जाते है। जो वच्चा अपनी अवस्थाके अनुसार पढा-लिखा नही होता वह न तो प्रसन्नचित्त होगा, न उसमे आत्मविश्वास होगा और न पूर्णरूपसे स्वस्थ रहेगा, आप भले ही उसे प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार अच्छे-से-अच्छा पोपण क्यो न दे। पहले उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि वह पढाईमे क्यो पिछडा हुआ है और अगर अवतक आगे नही वढा है तो वढ सकता है। अव उसका पाठ नये सिरेसे वहासे आरभ होना चाहिए जहांतक वह अच्छी तरह सीख चुका है और उसे इस तरह आगे वढ़ाना चाहिए जिसमे उसमे आत्मविश्वासके साथ-साथ निश्चय और उत्साह वढता जाय। इससे उसे जो संतोप

और आनद प्राप्त होगा वह उसके सारे शारीरिक और मानसिक विकारोको दूर कर देगा।

जो बच्चा शैशवमे पढना और लिखना नही सीख लेता उसको सिखलाना कुछ कठिन होता है। उसका मन इतना कोमल और भावुक होता है कि थोडा-सा भी दवाव और कड़ाई होनेपर उसका दिल और दिमाग जवाव दे देता है। पहले यह समझ लेना चाहिए कि जितना करनेको कहा जाता है उतना वह कर ले सकता है तभी वह उसे करनेमे समर्थ हो सकता है। सफलता मिलने लगनेपर वह स्वय अधिक सीखनेकी इच्छा और उत्साह प्रकट करने लगेगा। कभी-कभी उत्साहहीनताकी लहर आ सकती है, पर उत्साह और शक्ति वढ जानेपर वह आप-ही-आप दूर हो जायगी।

दोषगोपनका प्रयत्न

जिस बच्चेको यह अनुभव होता है कि वह शब्दोको उनके शुद्ध रूपमे नही लिख सकता, सही उच्चारण नही कर सकता, स्पष्ट और सुदर लिपि नही लिख सकता या उसकी शिक्षाकी पृष्ठभूमि ही उपयुक्त नही है वह भी इनके कारण उद्विग्न होकर हतोत्साह हो जा सकता है। परिणाम यह होता है कि जव इन कामोको करना आवश्यक होता है तो वह मुह मोड लेता है। आमतौरसे देखा भी जाता है कि जो शुद्ध नही लिख सकता या जिसकी लिपि खराव है वह टेलीफोन, टाइपराइटर आदिका सहारा लेनेकी ओर प्रवृत्त हुआ करता है और लिखनेसे भरसक वचनेका उपाय करता है, जिसका उच्चारण ठीक नही है वह समाजमे वोलनेका साहस नही करेगा और अगर कभी

वोलेगा भी तो वहुत मंद स्वरमे जिसमे उसका दोष प्रकट न होने पाये। वच्चे ही नही, वडे लोग भी अपने इन दोषोको छिपाये रखते है और उनकी पूर्ति तरह-तरहके उपायोसे किया करते है और इस कलामे कुशल भी हो जाते है। वच्चे भी अपनी त्रुटियो-को छिपानेके लिए ऐसे ही उपायोकी ओर वढनेकी कोशिश करते है इसलिए उनको कठिनाइयोका सामना करनेमे सहायता देते रहनेका ध्यान रखना चाहिए जिसमे दोषको अन्य उपायोसे छिपानेकी प्रवृत्ति उनमे जरा भी न रहने पाये।

स्वभावगत दोष

कुछ वच्चोकी प्रकृतिमे भी कुछ ऐसी वाते होती है जो उनके कृतकार्य होनेमे वाधक हुआ करती है इसलिए उनका स्वास्थ्य भी पूर्णत. संतोपजनक नही होता। वहुतसे वच्चे मुहचोर होते हैं। इस दोषका वढना या दूर होना माता-पिता, भाई-वहनो और साथियोके रुखपर निर्भर है। न तो इसे हँसीका विपय वनाना चाहिए और न इसकी ओर वच्चोका ध्यान आकृष्ट करना चाहिए वल्कि इस ओर ध्यान न देकर उन्हे कार्यमे प्रवृत्त करना चाहिए। सफलताका अनुभव होने लगनेपर यह दोप दूर हो जायगा और इसमे प्राप्त सफलताका प्रभाव उनके अन्य कार्योपर भी पडेगा जिससे सभी दिशाओमें उनकी अच्छी प्रगति होने लगेगी और स्वास्थ्य भी एक नया ही रूप ग्रहण कर लेगा। अगर वच्चोंको यह समझा दिया जाय कि उनका दोष दूर हो रहा है तो इसे और शीघ्रतासे दूर करनेमें उन्हे वड़ी मदद मिलेगी।

हमारे एक मित्रका लड़का मोहन, जिसकी अवस्था लगभग

सात वर्षकी थी, इतना मुहचोर था कि बोलनेका तो जल्द नाम ही नही लेता था और इजारबदका छोर मुहमे डाले रहता था, अगर बोलनेको लाचार होता तो इजारबंद मुहमे दबाये-ही-दबाये बडी धीमी आवाजमे बोलता और अगर कभी इसकी ओर उसका ध्यान दिलाया जाता तो उसका चेहरा लाल हो जाता। यो तो अवस्थाके मुताबिक उसमे अक्ल भी थी, पर दोष एक यही था। एक दिन उसके महल्लेमे रामलीला हुई जिसे वह भी देखने गया। दूसरे दिन महल्लेके छोटे बच्चोने भी लीला करनेकी ठानी और मोहनको भी उसमे पार्ट दिया। उसने अपना पार्ट इतना अच्छा किया कि लोग देखकर दग रह गये। न मालूम कहासे उसमे अभिनेताओकी-सी गंभीरता आ गई और इजारबद, मुहकी बात कौन कहे, हाथमें भी नही आया, शब्द भी साफ-साफ और लहजेके साथ निकले। उस दिनसे वह ऊची आवाजमे बोलने लगा, इजारबंदका मुंहमे जाना धीरे-धीरे बद हो गया और सभी तरहके कामोमे उत्साह दिखलाने लगा। इस प्रकार एक ही कार्यमे उसकी सफलताने उसका कायापलट कर उसे सभी दिशाओमे आगे बढा दिया।

भाषाका प्रयोग

आत्मविश्वास या उत्साहहीनता उत्पन्न करनेमे भाषाके प्रयोगका सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योकि जीवनकी हर एक अवस्था और रोज-रोजके कामोमे किसी-न-किसी रूपमे इसकी आवश्यकता पडती रहती है। छोटे बच्चे भाषा जितना समझ सकते है उतना बोल नही सकते इसलिए जब वे बहुत छोटे हो तभीसे उनको कुछ-कुछ पढ़कर सुनाते रहना चाहिए और

उन्हें रोचक कोई बात मिले तो समझाते जाना चाहिए—भले ही वे उसे पूरी तरह ग्रहण न कर सकें। यह व्याख्या उनमें अपनेको बुद्धिमान् समझनेकी भावना उत्पन्न करेगी। उनकी क्रीड़ामें भी बराबर भाषाका प्रयोग होना चाहिए। इससे उनकी वाणीका आधार प्रस्तुत हो जाता है और वे बोलनेके प्रयत्नमें आनंदका अनुभव करते हैं।

कुछ बच्चे बहुत दिनोंतक नहीं बोल पाते। कारण यह होता है कि उनकी आवश्यकताकी सारी वस्तुएं उनके पास प्रस्तुत रहती हैं और उन्हें कुछ बोलकर अपनी इच्छा प्रकट करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। कुछ लोग तो बच्चेका जल्द न बोल सकना एक रोग समझकर डाक्टरकी सहायता लेना चाहते हैं, पर दरअसल यह कोई शारीरिक समस्या न होकर केवल मानसिक है। ऐसे बच्चोंको ऐसी परिस्थितिमें रखना चाहिए जिसमें उनकी जरूरतकी सारी चीजें प्रस्तुत न हों और यह आशा की जाय कि वे जरूरत पड़नेपर उनकी मांग करेंगे।

नई संतानके आगमन, बच्चोंके प्रति माता-पिताके बर्तावमें भिन्नता, बड़ोंके द्वारा उपेक्षा या अधिक प्यार तथा इस तरहकी अन्य बातोंका भी बच्चोंपर मानसिक प्रभाव होता है। इसलिए माता-पिताको बच्चोंमें उत्साहहीनता लानेवाले अवसरोंका सावधानीके साथ निवारण करते जाना चाहिए।

माता-पिताके लिए दस हिदायतें

ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत बड़ी होगी जो किसी-न-किसी प्रकारके मानसिक विकार या उसके कारण उत्पन्न किसी रोगसे

ग्रस्त होगे। चाहे जहा जाइए आपको माता-पिता बच्चोके आचरण या उद्दडतापूर्ण वर्तावकी शिकायत करते हुए मिलेगे, ऐसे परिवार वहुत कम मिलेगे जिनमे कलहका प्रवेश न हुआ हो। आखिर इन सव खरावियोके लिए कौन जवावदेह है ? माता-पिता तो सतानको ही इसके लिए दोपी ठहराते है, पर दरअसल दोप उन्हीका होता है। क्यो ? इसलिए कि प्राय. सभी मानसिक विकार वाल्यावस्थामे उचित शिक्षा न मिलनेके ही परिणाम हुआ करते है। शैशवकालमे परिवार ही वच्चेका संसार होता है और आगे चलकर उसकी दृष्टिमे प्रत्येक स्त्री माताकी प्रतिमूर्ति और पुरुष पिताका प्रतिरूप होता है। अगर हम किसी प्रौढ व्यक्तिको यह शिकायत करते सुनते है कि समाज मेरे प्रति जरा भी सहानुभूति नही रखता, तो हम इसी निष्कर्षपर पहुचते है कि यह माताके लाड़-प्यार-संबंधी दोषोका ही परिणाम है। अगर माता-पिता अपना दायित्व अच्छी तरह समझ पाते तो आज समाजका रूप कुछ और ही होता।

मानसिक विकारोकी रोक-थामका परिवारमे ही इस प्रश्नपर उचित ध्यान देनेके अलावा और कोई उपाय नही है। माता-पिताको अपना व्यवहार इस प्रकारका रखना चाहिए कि वच्चोमे भावनात्मक द्वद्वोके उत्पन्न होनेका अवसर ही न प्रस्तुत हो। ये ही द्वद्व उनके प्रौढावस्थामे पहुचनेपर उन्हे पागलखानेमे पहुचा दे सकते है। अगर माता-पिताका व्यवहार वुद्धिमत्तापूर्ण हो तो वे अपने वच्चोको प्राप्तवयस्क होनेपर हजारो रुपयेके अनावश्यक उपचार-व्ययसे वचा दे सकते है। एक मानसोपचारकने इस संवधमे माता-पिताके लिए मोटे

तौरपर दस नियम बनाए हैं जिनपर ध्यान देकर बच्चोंको मानसिक विकारोंसे बहुत कुछ बचाया जा सकता है ।

१. माता-पिता बच्चेकी उपस्थितिमें कभी कहा-सुनी या झगड़ा न करें; अगर उनको झगड़ना ही हो तो अन्यत्र चले जायं ।

अगर बच्चेका उचित रूपमे विकास होने देना अभीष्ट है तो उसके लिए सामंजस्य और प्रेमका वातावरण उतना ही आवश्यक होगा जितना जीवनके लिए भोजन और ओषजन । अगर आपके प्रति बच्चेका विश्वास न रह जाय तो उसके मनमे उथल-पुथल बनी रहेगी, वह अपनेको अरक्षित समझेगा, उसके नैतिक विचारोंमे कमजोरी आ जाएगी और उसका अतःकरण संकीर्ण हो जायगा ।

२. अगर आपके कई बच्चे हों तो बड़े बच्चोंके प्रति विशेष प्रेम प्रदर्शित कीजिए ।

माता-पिताका प्रेम या ध्यान एकाएक अपनी ओरसे हटकर नवजात शिशुकी ओर जाते देखकर बड़े बच्चेको बहुत अधिक मानसिक कष्ट होता है । इसकी प्रतिक्रिया दो रूपोंमे होती है—या तो उसमे उनके प्रेमसे वंचित होनेकी भावना उत्पन्न हो जाती है या द्वेषकी । द्वेषकी भावनाका पहला लक्ष्य नवजात शिशु होता है और यह भावना यहांतक बढ जाती है कि उसकी प्रवृत्तियां घातक रूप धारण कर लेती है । इसके अलावा यह द्वेष माता-पिताके प्रति भी हो जाता है । परिणाम यह होता है कि उसके हृदयमे द्वेषात्मक संघर्ष और दुष्कर्म तथा आशंकाकी भावना प्रबल हो जाती है ।

३. अपने बच्चेके प्रति अत्यधिक प्रेम मत दिखाइए ।

अगर माता-पिता, विशेषकर माता अपने बच्चेकी आवश्यकतासे अधिक फिक्र और देखभाल करने लगे तो बच्चेमे दायित्वका ज्ञान विकसित होनेका अवसर ही नही आने पाएगा, उसमे परावलबनकी घातक मनोवृत्ति बनी रहेगी और स्वय कोई निर्णय करनेमे डरनेके कारण वह धीरे-धीरे भीरुता और नाडीदौर्वल्यका शिकार हो जायगा। अगर माता प्रेम-प्रदर्शन-सबधी शारीरिक क्रियाओमें अधिक सलग्न रहे तो ये विकार बढकर भीषण रूप धारण कर ले सकते है। बच्चेके प्रति अत्यधिक प्रेम-प्रदर्शन दापत्य-जीवनके प्रति माताके असतोषका सूचक होता है। इसका बच्चेके यौनजीवनपर बहुत बुरा असर होता है—आगे चलकर उसके लिए समवयस्को, विशेषकर भिन्न (पुरुष हो तो स्त्री और स्त्री हो तो पुरुष) वर्गके साथ सामजस्य स्थापित कर सकना असंभव नही तो कठिन अवश्य हो जाता है। इस स्थितिके सबधमे उसमे दोषकी जो भावना उत्पन्न होती है वह उसके लिए बहुत अनिष्टकर होती है और उसे मानसिक रोगका शिकार बना दे सकती है।

अगर माता अधिकार-प्रदर्शन और शासनके रूपमे प्रेम-प्रदर्शन करे, बच्चेके हर काममे दखल देती या शरीक होती रहे और आलोचना करती रहे तो बच्चेकी कमजोरी और आशंकाकी भावना बहुत बढ जायगी जो प्राय सहवर्गीय यौनप्रवृत्ति उत्पन्न कर देती है।

४. बच्चेके प्रति आपका प्रेम बहुत कम भी न हो।

प्रत्येक बच्चेको प्रेम और उचित ध्यानकी आवश्यकता होती है। अगर बच्चा यह समझने लगे कि घरमे उसकी कोई पूछ नही है तो उसमे दीन, हीन और असहाय होनेकी भावना

घर कर लगी। आगे चलकर जीवनमे और लोगोसे मिलने और साबका पड़नेपर वह पराजयकी ही उम्मीद रखेगा। इस प्रकारका बच्चा हमेशा अपनेको असफल मानेगा और जिन वातोके दूसरोको अंगीकार न होनेकी सभावना देखेगा उनसे वचनेके प्रयत्नमे अपनेको कोसता रहेगा।

५. अगर बच्चा हस्तमैथुन आदि यौन दोष करता हुआ देखा जाय तो उसे दंड देनेकी धमकी मत दीजिए।

वहुतसे वच्चे इस प्रकारके दोपके शिकार हुआ करते है। इसका वहुत अधिक होना आगे चलकर हानिकारक होता है, पर हानि विशेपत. निषिद्ध कर्ममे प्रवृत्त होनेकी भावनासे होती है। जननेद्रियके वेकाम होने या मानसिक रोग होनेका भय दिखलानेसे सचमुच इस तरहके रोग प्रस्तुत हो जा सकते है। यह स्थिति हस्तमैथुनके कारण नही वल्कि भावनात्मक द्वद्वके कारण उत्पन्न होती है और इस द्वंद्वकी उत्पत्तिका कारण एक ओर तो अपराध और आशकाकी भावना होती है और दूसरी ओर दुर्दमनीय यौनप्रवृत्ति।

६. बच्चेकी जननेंद्रियपर ज्यादा ध्यान मत दीजिए और न उसे लज्जापूर्वक छिपानेका प्रयत्न कीजिए।

कुछ माताए अपने वच्चेकी जननेद्रियके साथ तरह-तरहके खेल खेलकर मनोविनोद किया करती है, लड़केको लड़कीकी और लडकीको लडकेकी पोशाक पहनाया करती है और प्राय· ग्यारह-वारहकी अवस्थातक अपने ही साथ सुलाया करती है। इस तरहके काम बडे खतरनाक होते है, क्योकि वच्चेकी यौन-भावना असमय जाग्रत् हो जाती है। अगर वच्चेमे यौनसंवंधी दोपकी भावना तीव्र हो तो वह उन्मादरोगके रूपमे परिणत

हो जा सकती है। बादमे इस यौनभावनाको औरोंकी ओर प्रवृत्त करना कठिन हो जाता है और इसका परिणाम सहवर्गीय यौनभावनाके रूपमे सामने आता है।

जननेंद्रियको लज्जापूर्वक छिपाना भी उतना ही हानिकारक हो सकता है, क्योकि इससे दोष और आशकाकी भावना उत्पन्न होती है। इसलिए सबसे अच्छा तरीका यही है कि बच्चेमे यौनभावना कृत्रिम रूपमे उत्पन्न न कर आप-से-आप विकसित होने दी जाय।

७. माताएं अपने पतिपर हावी होनेका प्रयत्न न करें।

माता-पिताके बीच इस प्रकारकी स्थितिसे भी बच्चेमे सहवर्गीय यौनभावनाकी प्रवृत्ति बढनेका आधार प्रस्तुत हो जाता है। अगर माता दबंग और उग्र स्वभावकी हो और पिताका स्वभाव कोमल और दब्बू हो तो बच्चेकी शारीरिक और मानसिक स्थिति स्पष्ट न रह सकेगी। लडका तो इस मर्दानी माताके सामने कुढनकी भावना और स्त्रीसुलभ नम्रताके साथ झुकता रहेगा और लडकी अपनेको उस माताके रूपमे समझकर पुरुष प्रकृतिकी हो जायगी जिससे न तो वह विवाहके योग्य रह जायगी और न सामान्य यौन-जीवनके साथ सामजस्य स्थापित कर सकेगी।

८ न तो ज्यादा नरम बनिए और न बहुत कड़ा दंड दीजिए।

प्रत्येक बच्चेमे माता-पिता, विशेषकर माताको अपनी इच्छाओकी पूर्तिका साधन बनानेकी प्रवृत्ति होती है। आसानीसे उसकी बाते मानते जाना एक तरहसे दासत्व स्वीकार करना है। इसके अलावा दूसरी बात यह होगी कि बच्चा बड़ा

होनेपर विफलता और नैराश्यकी स्थिति सहन करनेमें समर्थ नही हो सकेगा।

बच्चोका काफी बड़े होनेतक रातमे सोते समय बिस्तरपर पेशाब करते जाना इस प्रकारकी अनुचित दयालुताका एक अच्छा उदाहरण है। बिस्तर गीला हो जानेपर बच्चा चिल्लाकर माताको इधर ध्यान देनेके लिए प्रेरित करता है, अगर माता उसकी तरफ फौरन ध्यान न देकर कुछ उपेक्षा कर दिया करे तो बच्चेकी यह बुरी आदत छूट जायगी।

दड देना नियम न होकर अपवाद ही होना चाहिए। मारना-पीटना तो विशेष रूपसे हानिकारक हो सकता है; क्योकि भूल करनेपर बच्चा प्रतिकारके रूपमे इसकी प्रतीक्षा करने लगता है। अगर इस तरहका व्यवहार बच्चेके प्राप्तवयस्क होनेतक चलता रहे तो वह एकके बाद दूसरा ऐसा काम करता रहेगा जिसमे उसे क्षति पहुचती रहे और तब वह दुनियाके बुरी होने और अपने प्रति अन्याय किये जानेकी शिकायत करने लगेगा।

९. बच्चेको अनावश्यक नश्तर मत लगवाइए।

यो तो अनिवार्य हो जानेपर नश्तर लगवाना ही पड़ेगा, पर ऐसे बहुतसे अवसर आते है जब नश्तर उतना आवश्यक नही होता। स्मरण रखनेकी बात यह है कि नश्तरसे बच्चेको भयंकर मानसिक आघात पहुंचता है और बच्चेके मनमे यह आशका और धारणा बैठ जाती है कि ऐसा कोई काम किया जा रहा है जिससे शरीरकी पूर्णतामें हमेशाके लिए कमी आ जायगी।

अगर बच्चेके मनमे हस्तमैथुन आदिके संबंधमे दोषकी

कोई भावना हो तो चीरा लगाना खोजा बनाने-जैसा प्रतीत होगा जिसकी उसके मनमे पहलेसे ही आशका बनी रहती है। सुन्नतके संबधमे तो यह बात और भी सत्य प्रमाणित होती है।

१० बच्चेपर मलमूत्रके त्यागके लिए अनावश्यक दबाव मत डालिए।

यह देखना तो आवश्यक है ही कि बच्चेके मलादिका विसर्जन नियमित और उचित रूपमे हो रहा है, फिर भी बच्चा यह जल्द ही समझ जाता है कि उससे क्या आशा की जाती है और उसे माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध पाखाने आदिकी हाजत रोकनेके रूपमे अपने मनकी बात कर उन्हे कुढानेका अच्छा उपाय मिल जाता है। माता इसके लिए जितना ही जोर देती है उतना ही बच्चा इसके विरोधमे बैठा रहकर उसे कुढानेमे आनद मानता है। अगर कुढानेकी यह प्रवृत्ति स्थायी हो जाय तो भावी जीवनमे यह मानसिक असतुलनका कारण बन जाती है।

अगर आप अपने बच्चेको स्वस्थ और साधारण मानसिक अवस्थावाले तरुणके रूपमे देखना चाहते है तो इन नियमोका पालन करनेका प्रयत्न कीजिए; क्योकि प्रौढावस्थामे होनेवाले मानसिक विकारोका आरभ शैशवकालमे ही हुआ करता है।

बालरोगोंका कारण और उपचार

वालरोगोके उपचारके सबधमे एलोपैथिक पद्धति और प्राकृतिक पद्धतिमे मूलत अतर है। मेडिकल कालेजोके छात्रोको हजारो दवाओं, उनके मिश्रणो और उन लक्षणोका ज्ञान प्राप्त करना पडता है जिनमे उन दवाओ और उनके मिश्रणोका प्रयोग किया जाता है।

दवाओके प्रयोगका उद्देश्य उन लक्षणोको दूर करना—और अगर ठीक-ठीक कहा जाय तो दवाना—होता है। जो दवाए पहले प्रयोगमे आती थी उनके प्रभावहीन सिद्ध होनेपर इधर कुछ दिनोसे उनके स्थानपर सुई और टीका प्रयोगमे लाये जाने लगे है, फिर भी रोगोकी व्यापकता ज्यो-की-त्यो वनी हुई है। इसके विपरीत प्राकृतिक चिकित्सक यथासंभव पीड़ा और कष्टको कम करते हुए शरीरमे मौजूद मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न करता है जो लक्षणोंके रूपमे व्यक्त होता है। लक्षणोको दवा देनेसे रोगसे छुटकारा नही मिलता।

खतरेकी घंटी

अगर वच्चेको सिरदर्द या वुखार हो तो डाक्टर दर्द दूर करनेके लिए एस्पिरिन और वुखार कम करनेके लिए कुनैन या इस तरहकी कोई दवा दे देगा, पर प्राकृतिक चिकित्सक तो सिरदर्द, वुखार आदिको खतरेकी घटी मानेगा जिनके द्वारा शरीर यह सूचित करता है कि अंदरकी हालत ठीक नही है और सुधारकी आवश्यकता है या सुधार हो रहा है।

अगर सड़ककी मरम्मत होते समय सवारियोको चेतावनी देनेके लिए लाल झडी लगाई जाय तो चालक इस झंडीको हटानेकी वात कभी न कहेगा, वह समझ जायगा कि सडककी हालत ठीक नही है और जवतक सडक ठीक न होगी झडी नही हटाई जायगी। उसी प्रकार सिरदर्दकी हालतमे उसके मूल कारण कब्ज आदिको न दूर कर एस्पिरिन खिलाना अपने रोगसंवधी अज्ञानका परिचय देना है। सिर्फ सिरदर्दका दूर किया जाना ठीक वैसी ही स्थिति है जैसी सडककी हालत ठीक न होनेपर भी झडीका हटाया जाना।

अगर बच्चेको दमा हुआ है तो डाक्टरका उद्देश्य होगा सासका कष्ट दूर करना, उसका ध्यान इस बातपर कभी नही जायगा कि सासका यह कष्ट अदरकी असाधारण अवस्थाका व्यक्त लक्षणमात्र है। थोड़े समयके लिए यह कष्ट दूर हो जा सकता है, पर इससे दमेसे छुटकारा नही मिलेगा। प्राकृतिक पद्धति इसके मूल कारणको ही दूर कर आगेका दौरा रोकनेकी कोशिश करेगी।

औषधविज्ञानका कहना है कि ये विभिन्न प्रकारके रोग कीटाणुओके कारण होते है जो शरीरमे प्रविष्ट होकर विशेष प्रकारसे कार्य करते है, पर प्राकृतिक पद्धतिके मतानुसार सभी रोग एक ही मूल कारणसे उत्पन्न होते है, और यह कारण सर्दी, खांसी, दमा, फोड़ा, मसूरिका आदि तरह-तरहके रोगोके रूपमे व्यक्त हो सकता है।

रोग क्यों ?

वालरोगोंका मूल कारण साधारणत. पांच प्रकारसे प्रस्तुत हुआ करता है—

(१) अयुक्त आहार—सभ्य जातियोंके आहारमें रोग उत्पन्न करनेवाली दो बातें होती हैं—एक तो यह कि आहारकी मात्रा आवश्यकतासे बहुत अधिक होती है या उसमें कुछ ख़ास चीजोंकी मात्रा बहुत अधिक होती है और दूसरी बात यह होती है कि उसमें तरकारियां, फल और पूर्णान्न न होनेके कारण वह बहुतसे तत्त्वोंसे वंचित होता है जिससे अंगों और रक्तकी शक्ति कम पड़ जाती है। इन दोनों बातोंका परिणाम यह होता है कि शरीर अपने मल-मार्गों—त्वचा, फेफड़ों, वृक्कों और आंतों—से सारा मल और विकार नहीं निकाल पाता, बचा हुआ मल शरीरमें ही रह जाता है और विशेष भागोंमें एकत्र होकर रोगका आधार बनता है।

(२) धूप, हवा आदिकी कमी—धूप, शुद्ध हवा और निद्रा सभी मनुष्योंके लिए आवश्यक है और बच्चोंके लिए तो उनकी आवश्यकता और भी अधिक है। स्वस्थावस्थामें भी बहुतसे बच्चोंको पर्याप्त मात्रामें इनकी प्राप्ति नहीं हो पाती और रुग्णावस्थामें तो, जब इनकी और अधिक आवश्यकता रहती है, बहुतसे बच्चोंको शुद्ध हवा और निद्रा और भी कम मिल पाती है।

(३) दुर्घटना, आघात आदि—चारपाई, पालने आदिसे गिरनेके कारण कभी-कभी मेरुदंड आदिका स्थान-भ्रंश हो जाता है जिसका उस समय पता नहीं चलता, पर इसके कारण शारीरिक क्रियामें बाधा पड़ने लगती है। प्रसवमें कठिनाई होनेपर यंत्रों आदिके प्रयोगसे भी खोपड़ीकी जड़के पासकी कोमल अस्थियां अपने स्थानसे हट जा सकती हैं। इस स्थान-भ्रंशके कारण कुछ नाड़ियोंपर दबाव पड़ सकता है जिससे वे अपने

क्षेत्रका नियन्त्रण करनेमे असमर्थ हो जा सकती है। उदाहरणार्थ, श्वास-कष्ट खोपड़ीके मूलके पासकी नाड़ीपर दवाव पड़नेका परिणाम हो सकता है और यदि वह आहारोपचारसे ठीक न हो तो मालिश आदिसे ठीक किया जा सकता है।

(४) गर्भगत और आनुवशिक प्रभाव—यह सत्य है कि गर्भमे रहते समय प्रकृति अगर आवश्यक हो तो माताकी शक्तिका ह्रास करके भी शिशुकी यथासभव रक्षा करती है, पर पुश्त-दर-पुश्त बेमेल या वुरा आहार ग्रहण करते और वुरी अवस्थामें रहते आनेके कारण कुछ रोगोकी प्रवृत्ति आनुवशिक हो जाती है। मा-वापके कारण भी कुछ वच्चोमे विकार आ जाते है जो एकसे दूसरी पीढीमे संक्रमण करते रहते है।

(५) रोग दवानेवाला उपचार—रोगके लक्षणोको दबानेवाले और गलत उपचारसे पीछे उसी मूल कारणसे किसी दूसरे रूपमे रोग प्रकट होता है।

ये ही पांच बाते अलग-अलग या एक दूसरीसे मिलकर रोगका कारण बनती है। इनकी बहुत कुछ रोक-थाम की जा सकती है और लक्षणोको दवाओ, वैक्सीन, लसीका आदिके जरिये दबानेकी अपेक्षा इन रोग उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियोमे परिवर्तन करना अधिक वुद्धिमत्तापूर्ण बात है। कुशल यही है कि शरीरमे पूर्वस्थिति प्राप्त करनेकी प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है और वह स्वास्थ्यलाभके लिए हमेशा प्रयत्नशील रहता है। सर्दी, फोडा आदि शरीरके अपने विकारको दूरकर सफाई कर लेनेके प्रयत्नके ही परिणाम है।

कीटाणुओंका स्थान गौण

एलोपैथी बच्चोके संक्रामक रोगोको कीटाणुओके आक्रमणका परिणाम मानती है जिसपर माताका वस्तुत कोई नियंत्रण नही होता। इसलिए यह पद्धति इन कीटाणुओका नाश करने और चाहे जिस प्रकारका आहार देकर रोगीकी ताकत बनाये रखनेका प्रयत्न करती है। प्राकृतिक पद्धति इसके विपरीत कीटाणुओंको गौण स्थान देती है और यह मानती है कि वे तो बच्चेके शरीरमे तभी अड्डा जमाते है जब उनकी बाढके लिए उपयुक्त क्षेत्र प्रस्तुत रहता है और शरीरमे एकत्र मल और विकारको छिन्न-भिन्न करके साफ करनेकी जरूरत होती है।

कीटाणु शत्रु नहीं!

प्रकृतिका संतुलन कायम रखनेका तरीका बहुत जटिल और विचित्रतापूर्ण है। जिन कीटाणुओके विरुद्ध डाक्टर युद्ध छेड़ते है वे प्राय. मानव-जातिके मित्र होते है। शरीरकी हालत ठीक न होनेपर वे इसकी सूचना देते है और एकत्र मलपर, जो उनका आहार है, रहकर शरीरके लिए भंगीका काम करते है। कुछ कीटाणु बच्चेके शरीरमे विशेष प्रकारके लक्षण भी उत्पन्न करते है। विशेष प्रकारका चर्मस्फोट, खांसी, ग्रंथिशोथ आदि इसी प्रकारके लक्षण है जिन्होंने डाक्टरोंको कीटाणुओका मूल कारण माननेको बाध्य किया है। शरीरकी प्राकृतिक रक्षण-शक्ति इन भंगियोसे बादमें निपट लेती है और अंतमे उन्हे ठीक उसी तरह नष्ट कर देती है जिस तरह ये कीटाणु एकत्र मलका खातमा करते है। अगर शरीरको पुन. साधारण क्रिया करने

योग्य स्वस्थ बनाना है तो एकत्र मल, नष्ट हुए कीटाणुओ, निर्जीव श्वेतकणो तथा इस प्रक्रियाके कारण उत्पन्न अन्य सारे विकारोको शरीरसे किसी-न-किसी प्रकार बाहर निकालना ही होगा। विचारकी दृष्टिसे आक्रमण करनेवाले कीटाणुओका विषय गौण है। अधिकाश संक्रामक रोगोका क्षेत्र बहुत कुछ सीमित होता है, पर रोगका दौरा समाप्त हो जानेपर बच्चेकी अवस्थामे बहुत अधिक अतर आ जाता है—वह रोगका तीव्र रूप रहते समय जैसा उपचार हुआ होगा उसीके अनुरूप होगी। इसलिए उपचारमे इन चार बातोपर विशेष रूपसे ध्यान देना आवश्यक है।

१. बच्चेके शरीरमे जो मल एकत्र है उसमे किसी तरह वृद्धि न होने पाये। मतलब यह कि जबतक बच्चेको बुखार रहे तबतक उसका भोजन—चाहे वह कोई ठोस पदार्थ हो या दूध आदि तरल पदार्थ—बिलकुल बद रखा जाय, जब मलके पूर्णत. निकल जानेका लक्षण प्रकट हो तभी खानेको दिया जाय। औषध, पुष्टिकारक पदार्थ, सूई आदिका प्रयोग भूलकर भी न किया जाय; क्योकि इन्हे भी निकालना पडता है और ये शारीरिक क्रियामे बाधा डालने और असंतुलन उत्पन्न करनेके अलावा मलकी वृद्धि करते है।

२. शरीरको मलसे, जो भगियो (कीटाणुओ)के आक्रमण-का कारण हुआ है, छुटकारा पानेमे मदद दी जाय। इसका अर्थ यह है कि मल निकालनेवाले चारो प्राकृतिक मार्गोको अपना काम करनेमे सभी संभव उपायोसे सहायता दी जाय।

३. बच्चेकी जीव-शक्ति और नाड़ियोकी शक्तिकी रक्षा की जाय जिसमे शरीरकी सारी शक्ति मल-निष्कासनके कार्यमे

सलग्न हो सके। अभिप्राय यह कि वच्चेको बिस्तरपर गरम रखा जाय और उसकी शक्ति भोजन या दवा पचाने या अभिशोपित करनेके कार्यमें जरा भी न लगे।

४. मल निकल जानेपर शरीरके नव-निर्माणके लिए वच्चेको अच्छे खाद्य पदार्थ दिये जायं।

'औषधविज्ञानकी भूल

प्रचलित औषध-पद्धतिमें इन चारो बातोंपर ध्यान देनेकी जरूरत नही समझी जाती। यह सत्य है कि रुग्ण वच्चेके शरीरसे उस खाद्य पदार्थको निकालनेके लिए जो उसे नही देना चाहिए था, दवामें कुछ रेचक भी रखा जाता है, पर कोषाणुओमे स्थित मूल विकार, मृत और जीवित कीटाणुओ और लक्षणोको दवानेके लिए प्रयोगमे लाई गई तरह-तरहकी रासायनिक दवाओंको शरीरसे बाहर निकालनेके प्रश्नपर जरा भी ध्यान नही दिया जाता। ये सभी बच्चेके शरीरके लिए विजातीय होते हैं, इसलिए उसके स्वाभाविक रूपमें कार्य करनेके लिए इनका निकाला जाना जरूरी है और अगर शरीरको इनके निकालनेके प्रयत्नमे सहायता न दी जाय तो इनका वहुत-सा अंश शरीरमे पडा रह जायगा।

इस प्रकार औषधोपचारका परिणाम यह होता है कि रोग अपनी स्वाभाविक अवस्थामे पहुच जाता है और शरीर विकारो, विषो तथा प्रयोगमे लाये गये खनिज द्रव्योसे भरा ही रह जाता है और शरीरका अपनी सफाई करनेका प्रयत्न विफल हो जाता है। रोगकी तीव्रावस्था समाप्त हो जानेपर भी वच्चेकी तबीयत खराब ही रहती है और उसका शरीर वड़ी मथर गतिसे स्वास्थ्यकी ओर वढता है। कहनेके लिए तो

बच्चा नीरोग हो जाता है, क्योकि रोगका कोई लक्षण मौजूद नही होता, पर दरअसल उसका रोग पूर्व अवस्थामे बना रहता है और उसका शरीर सफाईके दूसरे अवसरपर कीटाणुओंके आक्रमणके लिए उपयुक्त क्षेत्र बना रहता है।

प्राकृतिक उपचार चार मुख्य सिद्धातोपर आधारित है—

१ उपवास—भोजन, दवा और सूईसे परहेज,

२. स्वच्छता—चारो मल-मार्गोसे मलका समुचित विसर्जन जिसमे भीतर-बाहर पूरी सफाई रहे,

३ विश्राम—जीवशक्तिका सचय, और

४. पुनर्निर्माण—उपवासके बाद संयत मात्रामे उपयुक्त आहार।

उपवास

अस्वस्थ शिशु आप-ही-आप भोजनका त्याग कर देता है। शरीरके ठीक तरहसे काम न करते समय उसका भार न बढने देनेका यह प्रकृतिका उपाय है। माताको प्रकृतिके इस आदेशके पालनपर हमेशा ध्यान देना चाहिए और उसे प्रसन्न होना चाहिए कि बच्चेका स्वास्थ्य इतना अच्छा है कि अस्वस्थ होनेपर भोजन नही ग्रहण कर रहा है और उससे परहेजकर विश्राम करना चाहता है। प्राय बच्चे खानेके लिए तैयार हो जाते है जब कि खानेसे एक-दो दिन और परहेज करना अच्छा हुआ होता। जुकाम, टौंसिलका बढना, खांसी, कृमि आदि जैसे रोगोमें यह स्थिति हो सकती है। इस हालतमे माताको इस बातका प्रयत्न करना चाहिए कि बच्चा खानेसे परहेज करे।

खाद्य पदार्थ बच्चेकी दृष्टिसे अलग रहे और उसे उसकी

गंध भी न मिलने पाये। सबसे अच्छा यह हो कि बच्चा बिस्तर-पर ही रखा जाय। भोजनजन्य आनंदके अभावकी पूर्ति उसे खिलौने आदि देकर की जा सकती है। माताको चाहिए कि पहलेकी अपेक्षा उसके निकट अधिक समयतक रहे और उसे कुछ सुनाती या उसके साथ खेलती रहे।

स्वच्छता

उपचारका यह सर्वाधिक सक्रिय अंग है। सफाईके चार मार्ग हैं इसलिए इसके चार विभाग हो जाते हैं—

क—आंतोंके द्वारा—उपवास करते समय मल-विसर्जनकी साधारण क्रियाको उत्तेजित करनेके लिए बच्चेके अन्नमार्गमें कोई नया पदार्थ नहीं पहुंचता, इसके अलावा अभिशोषणकी क्रिया न होनेके कारण शरीरके कोषाणुओंसे मल निकलकर आंतमें पहुंचता है। इस मलको आंतमें नहीं रुकना चाहिए, नहीं तो शरीर पुनः उसका शोषण कर लेगा। इसलिए उपवास करते समय बच्चेको सुबह-शाम एनिमा देना आवश्यक है। यह बिलकुल सरल काम है, इसमें माता या बच्चेको कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए।

ख—त्वचाके द्वारा—त्वचा मल निकालनेका अच्छा अंग है और उसके साथ इसी रूपमें व्यवहार भी होना चाहिए। वह छोटे-छोटे छिद्रों या स्वेद-ग्रंथियोंसे भरी रहती है जिनके जरिए बराबर क्लेद निकलता रहता है। इस क्लेदके भाफ बननेपर स्वस्थावस्थामें भी मलके सूक्ष्मकण त्वचापर जम जाते हैं, रुग्णावस्थामें तो इस प्रकार निकलनेवाले मलकी मात्रा और बढ़ जाती है, इसलिए त्वचाको यह कार्य करनेके लिए

उर्द्दीप्त करनेका जो भी उपाय हो करना चाहिए। पहला उपाय तो यह है कि अगर बच्चा बहुत बीमार नही है, तेज बुखार नहीं है या बहुत लस्त नही हो गया है तो उसे रोज गरम पानीसे दो बार नहलाया जाय, बुखार आदिकी हालतमे गरम पानीमे तौलिया निचोडकर बदन पोछ दिया जाय। इससे त्वचापर जमा हुआ मैल निकल जायगा और नीचेकी ग्रथियां उद्दीप्त होकर और सक्रिय हो जायगी।

दूसरा उपाय कटि-स्नान है। इससे भी त्वचा और आतोको अधिक मल निकालनेके लिए उद्दीप्त किया जा सकता है। बुखार होने और पसीना कम निकलनेकी हालतमें यह बहुत प्रभावकर होता है और नीद भी लाता है। ठड न लगने देनेके संबधमें पूरी सावधानी बरती जाय।

तीसरा उपाय सारे बदनकी गीली पट्टीका प्रयोग है। इससे शरीरको कभी-कभी बहुत लाभ पहुंचता है और उसकी मल-निष्कासनकी शक्ति बढ जाती है। अगर माताको इस उपचारमे हिचक या घबराहट मालूम हो तो इसे करना जरूरी नही है। अगर पहली बार इस उपचारसे परिचित किसी व्यक्तिसे मदद ली जाय तो बुद्धिमानीकी बात होगी।

ग—फेफडोके द्वारा—फेफडा मल निकालनेवाला तीसरा अंग है। सास छोडनेपर क्लेद और वाष्पीय मल शरीरसे निकल जाता है और अगर सांससे लगातार शुद्ध हवा न मिलती रहे तो निकला हुआ मल फिर फेफड़ोके अंदर पहुच जायगा।

रुग्ण बच्चा गरम रखा जाय, पर कमरेकी हवा ताजा हो। इसका मतलब यह है कि खिडकियां खुली रखी जाय। अगर ठंड अधिक हो तो बैठे रहते समय गरम पानीकी बोतलें

रखी जाय और बच्चा स्वेटर या कोई आरामदेह कपड़ा पहने रहे। अगर बहुत आवश्यक हो तो कमरेमें आग भी रखी जा सकती है, पर चाहे जैसे हो, हवा शुद्ध रहे। अगर बच्चा बहुत बीमार या अशक्त न हो तो सुबह-शाम खिड़कीके पास जाकर गहरी सांस लेनेका कुछ व्यायाम करे और अगर कमरेमें धूप आती है तो चारपाई इस तरह रखी जाय कि उसको कुछ धूप मिल सके।

घ—वृक्कोंके द्वारा—रुग्ण बच्चेको खाना तो नही चाहिए, पर वह पानी इच्छाभर पी सकता है। सादा पानी सबसे अच्छा होता है और कुछ बच्चे और पेयोंसे इसे अधिक पसंद भी करते हैं। अगर वह सादा पानी पीना न चाहे तो सतरे, सेव, दाख-जैसे किसी फलका रस या तरकारीका कुनकुना या ठंडा रसा भी दिया जा सकता है। पानीमें घोला हुआ कच्ची गाजरका रस बहुत अच्छा पेय है। अगर बर्फ मिलती हो तो बहुतसे बच्चे उसका एक टुकड़ा ग्लासमें रखना पसंद करते हैं। पेयकी मात्रा बच्चेकी इच्छापर निर्भर है। कभी-कभी रुग्ण बच्चे काफी पानी पीते हैं और कभी बहुत कम। रातमें उसके बिस्तरके पास एक ग्लास पानी अवश्य रहे और कमरेमें मंद प्रकाश भी रहे जिसमें बच्चेको प्यास लगनेपर पानी आसानीसे मिल जाय।

विश्राम

वस्तुत शरीरकी जीवशक्ति ही आरोग्य प्रदान करती है। यहा जिस उपचारका उल्लेख किया गया है उससे शरीरके अंदर निहित आरोग्यदायक शक्तिको सहारा भर मिलता है जिसमें वह और अधिक कार्य कर सके। शरीरकी सारी शक्ति आरोग्य-

लाभकी इसी प्रक्रियामे लगनी चाहिए। यह भी एक कारण है जिससे बच्चेको बिस्तरपर गरम रखनेकी राय दी जाती है जिसमे उपवास करते समय शरीरमें गरमी लाने या चलने-फिरनेमे उसकी शक्ति खर्च न हो। फिर भी अगर बहुत बीमार न हो तो छोटे बच्चेको उपवास करते समय भी हमेशा बिस्तरपर रखना अच्छा नही होता। अगर बच्चा वस्तुतः रुग्ण न होकर साधारण रूपमे अस्वस्थ हो और जीवन तथा उत्साह लहर मार रहा हो तो उपवास करते समय भी उसे बिस्तरपर रखना भूल है। इस हालतमें उसकी प्रवृत्तिके विरुद्ध उसे बिस्तरपर रखनेमे कमरेमे खेलनेकी अपेक्षा नाड़ी-शक्तिका अधिक व्यय होगा।

उपवास करते समय बच्चेको कमरेके अंदर ही रखना चाहिए जिसमे उसे ठड लगनेका भय न रहे और वह खाद्य पदार्थको देख या उसकी गध न पा सके। अगर वह बिस्तरपर पडा न हो तो उसे मध्याह्नमे पूरा विश्राम करना चाहिए और शामको जल्द सो जाना चाहिए। बीमारीकी हालतमें प्राकृतिक उपचार करानेवाले बच्चोको उन बच्चोसे अधिक नीद आती है जिन्हे अपने रोगके साथ-साथ आहार और दवासे भी निपटना पडता है। वे स्वस्थावस्थाकी तरह आरामकी नीद नही सो पाते, पर उनमे अधिक सोनेकी प्रवृत्ति रहती है। यह आरोग्य-लाभकी प्रक्रियाका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अगर बच्चा सो रहा हो और उसे कटि-स्नान कराकर या बदन पोछकर सोनेके लिए तैयार करनेका समय हो तो भी उसे नही जगाना चाहिए।

साधारणत बच्चे शामको कटि-स्नान, एनिमा आदिके लिए तैयार हो जाते है, और यह कुछ दिन रहते, कर लेना

अच्छा होता है; क्योंकि देर होनेपर थके हुए बच्चे सो जाया करते हैं। ज्वरग्रस्त बच्चेको गाढी नीद नही आती और वह स्वप्नमे प्रलाप भी कर सकता है, इसलिए कमरेमे लालटेन रखकर किसी चीजसे ओट कर दी जाय और कोई प्रौढ व्यक्ति उसके निकट रहे जिसमे प्रलाप करने लगनेपर उसे शांत कर सके।

पुनर्निर्माण

ज्वर उतर जानेपर—जिसमे प्रायः तीन दिन और कभी-कभी पांच दिन लग जाते हैं—पाचन-क्रिया पुन प्रकृत रूपमे चालू हो जाती है। अधिकांश अवस्थाओमे पहले फलका रस—जल मिलाया हुआ नही—देना अच्छा होता है और बादमे संतरा, टमाटर, सेव आदि फल दिये जा सकते है। फलाहार कितने दिन चले इसका निश्चय बच्चेके रोगकी अवस्थापर निर्भर होगा। कुछ हालतोमे दूध या पानी मिला हुआ दूध फलके साथ दिया जा सकता है। इसके बाद आहारमे सूखे फल, हरी तरकारियां, चोकरदार आटेकी रोटी, मक्खन, शहद, आलू आदि रखे जा सकते है।

जो बच्चे पहले तरकारी नापसद करते थे उन्हे अगर उपवासके बाद थोड़ी तरकारी दी जाय तो वे खुशीसे स्वीकार कर लेगे। इस कालमे इस बातका खयाल रखना चाहिए कि बच्चेके आहारकी मात्रा आवश्यकतासे अधिक न हो—मात्रा संयत होनेपर भूख तेज रहेगी। कई दिनोके उपवासके बाद उसे उठकर तत्काल दौड-धूप भी नही करनी चाहिए, क्योंकि भोजन आरभ करनेपर बडी शक्ति मालूम होती है। उसे धीरे-धीरे ही बढने देना चाहिए।

लक्षण दबाए न जायं

रोगका मूल कारण दूर न कर ज्वर या रोगके लक्षणोंको दवाओंके जरिए दवानेका भयंकर परिणाम यह होता है कि मसूरिका आदि रोगोंके वाद तरह-तरहके उपद्रव उठ खड़े होते हैं। आरंभिक रोगके परिणामस्वरूप दृष्टि, हृदय आदिको किसी तरहकी क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए। प्राकृतिक पद्धतिके जो सिद्धांत यहां दिये गए हैं उनके अनुसार उपचार होनेपर इस तरहकी कोई वात नहीं होती, क्योंकि रोग अप्रिय या कष्ट-कर होते हुए भी शरीरकी प्राकृतिक प्रक्रिया है—स्वास्थ्यका सुधार करनेका प्रकृतिका एक उपाय है। मनुष्य प्रकृतिके इस रहस्यको न समझकर रोगके लक्षणोंको दवानेका प्रयत्न करता है जिससे रोग पीछे दूसरे और प्राय अधिक भयकर रूपमें प्रकट होता है।

प्राकृतिक पद्धतिसे बच्चेका उपचार होनेपर उसका स्वास्थ्य मसूरिका आदिके प्रकट होनेके पहलेकी अपेक्षा अधिक अच्छा होगा। उसका शरीर अव ऐसे मकानके समान होगा जो पूरी सफाईके कारण कुछ अव्यवस्थित तो हुआ था, पर उसमेंकी सारी धूल, जाले और मकड़े निकल गए हैं। अव सारी चीजें यथास्थान हो गई है और मकान धो-पोंछकर चमका दिया गया है। अगर उपचार उचित ढंगसे हुआ है तो स्वास्थ्य-लाभका समय लंवा नही होगा और रोगका प्रत्यावर्तन और उपद्रव आदि होनेकी भी कोई संभावना नही रहेगी।

रोगकी पूर्वावस्था और उसका निवारण

अगर हम शतप्रतिशत स्वस्थ हो तो ऐसा कोई कारण नही जिससे हम शरत् ऋतुमे भी ग्रीष्मकी ही तरह स्वस्थ न रह सके; पर दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि हमारा स्वास्थ्य ऐसा नही है और हम मौसिम या जीवन-यापनके ढगमे परिवर्तन होते ही रोगके चगुलमे फस जाया करते हैं। यही कारण है जिससे आश्विन और चैत्रमे हमेशा रोग व्यापक हो जाया करता है। अगर स्वास्थ्य गिरी हुई अवस्थामे न हो, रोगकी प्रवृत्ति या उसकी पूर्वावस्था पहलेसे प्रस्तुत न हो तो सक्रिय रहनेवाले बच्चोके पास रोग फटकनेका नाम भी न ले। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे इस अवस्थापर ध्यान देना बहुत आवश्यक है और प्राकृतिक पद्धति तो इसीको रोगका अग्रदूत मानती है।

रोगकी पूर्वावस्था शरीरकी वह अवस्था है जिसमे उसका कोई भाग इससे अछूता नही रहता। इस अवस्थाकी अतिम परिणति किसी एक अंगमे व्यक्त रोग या किसी सक्रामक रोगके रूपमें हो सकती है, पर आरंभिक रूप उपर्युक्त अवस्था ही है जो सारे शरीरमे व्याप्त रहती है।

रोगकी पूर्वावस्थाके लक्षण

रोगके किसी अंगमे प्रकट हो जानेपर दवाओ, सूइयों या प्रचलित चिकित्सा-प्रणालीके अन्य साधनोके जरिए केवल उस अंगका या उस अंगमे व्यक्त लक्षणोंका उपचार करनेमे लग जानेकी गलती करना लोगोंके लिए साधारण-सी बात है,

पर जो माता-पिता स्वास्थ्यके रहस्योसे परिचित है वे रोगके प्रकट होनेकी प्रतीक्षामे नही बैठे रहेगे, वे बराबर सावधानीके साथ यह देखते रहेगे कि बच्चेमे रोगकी पूर्वावस्था प्रस्तुत न होने पाये और उसका स्वास्थ्य इतना अच्छा बना रहे कि वह खूब खेलता-कूदता रहे, प्रसन्न रहे, अच्छी तरह सोए और उसे अच्छी भूख लगे. पर साधारणत लोग कोई रोग प्रत्यक्ष न होनेपर बच्चेको स्वस्थ मान लेते है और उन्हे रोगकी इस पूर्वावस्थाकी पहचान नही हो पाती । ऐसे बच्चेमे साधारणत ये बाते देखी जा सकती है—

१. दांतोंका क्षय,
२ चिड़चिडापन,
३. कब्ज,
४ अनिद्रा या प्रगाढ निद्राका अभाव,
५ सर्दीकी प्रवृत्ति,
६. आतमे कृमि,
७ जल्द थकान आना, और
८ सादे, प्राकृतिक आहारसे चिढ़ ।

क्षयोन्मुख दात, चिडचिडापन, भोजनसबंधी परेशानिया आदि रोगकी पूर्वावस्था वर्तमान होनेके ही चिह्न है, पर ये अवस्थाए ऐसी नही है कि इनका स्वतत्र रूपमे उपचार किया जा सके; क्योकि ये गहराईतक पहुची हुई खराबीके लक्षणमात्र है और औषध, इजेक्शन आदि उपचारोद्वारा इनपर नियंत्रण नही किया जा सकता । इस पूर्वावस्थाके निवारणका एकमात्र निरापद उपाय है स्वास्थ्यका सुधार जिसके लिए निम्नांकित सात उपायोका सहारा लेना आवश्यक है ।

सुधारके उपाय

१. वच्चेकी समुचित वाढ और जीवन-धारणसंवधी दैनिक क्रियाओके विचारसे उसके आहारमे सभी आवश्यक तत्त्वोवाले खाद्य पदार्थ सादे और अविकृत रूपमे पर्याप्त मात्रामे रहे। कुछ पदार्थोका अपक्वावस्थामे रहना भी आवश्यक है। यह व्यवस्था विना किसी झमेलेके, इतमीनानके साथ होनी चाहिए।

२. वच्चेके आहारमे कोई नि.सत्त्व पदार्थ न रहे, पाकक्रिया-द्वारा स्वादिष्ट वनाया हुआ पदार्थ भरसक न रहे और अगर रहे भी तो नाममात्रका।

३. आहार पूर्णत. संतुलित हो, उसमे किसी पदार्थकी मात्रा आवश्यकतासे अधिक न रहे; क्योकि अच्छा होते हुए भी उसके अधिक होनेपर शरीरमे विकार एकत्र हो जायगा।

४. वच्चेको दिन और रातमे भी पर्याप्त स्वच्छ वायु मिलने-की उचित व्यवस्था रहे।

५. वच्चेके व्यायाममें कमी न हो और जहांतक संभव हो मैदानमे धरतीमाताके संपर्कमें हो।

६. वच्चा गाढी नींदमें काफी सो सके।

७. वच्चा यह अनुभव करे कि वह सुखी और सुरक्षित है और उसे प्यार प्राप्त है, पर इसका दिखावा न हो और उसके प्रति जो कुछ वर्ताव हो वह उतावलीके साथ न होकर अनुशासित रूपमें हो।

नियमोंका उल्लंघन

ये सभी नियम केवल व्यवहारबुद्धिपर आधारित हैं और शायद अधिकाश माताए इनसे सहमत होगी, वे यह भी खयाल कर सकती हैं कि वे इन नियमोका पालन भी कर रही हैं, फिर भी वे यही देखती हैं कि उनका बच्चा रोगके चगुलमे फंस जाता है। हमारा खयाल है कि बहुत कम माताएं इन नियमोका पालन करती हैं और अधिकाश तो प्रथम तीन नियमोका अवश्य ही उल्लंघन करती हैं। प्राकृतिक सिद्धातोके आधारपर निकलनेवाली पत्रिकाओके पाठक भी, जो प्राकृतिक आहार चलानेका प्रयत्न करते हैं, उक्त नियमोके पालनमे पूरे नही उतर पाएगे। अगर इन नियमोका पालन न हो तो धीरे-धीरे अलक्षित रूपमे निर्बलता आती जायगी और रोगकी पूर्वावस्थाके कुछ लक्षण प्रकट होने लगेगे। अगर इन नियमोका ईमानदारीके साथ पालन भी किया जाय तो आनुवशिक दोषो और निसत्त्व धरतीमे उपजाए जानेके कारण खाद्य पदार्थोकी खराबीका सवाल रह ही जाता है। फिर भी ये त्रुटियां ऐसी नही हैं जिनके कारण उपर्युक्त नियमोके पालनकी आवश्यकतामे किसी तरहकी कमी आए।

आनुवंशिक दोष

अगर आनुवशिक दोषके कारण बच्चेको पुष्ट शरीर नही प्राप्त हुआ है तो माता उपर्युक्त नियमोके पालनपर उचित ध्यान देकर बच्चेका बहुत कुछ कल्याण कर सकती है, पर वह यह आशा नही कर सकती कि उसका बच्चा आनुवंशिक विशेषताके कारण अच्छा शरीर पानेवाले और स्वास्थ्यकर ढगसे रहनेवाले बच्चेकी तरह हृष्ट-पुष्ट और स्फूर्तिमय होगा।

कभी-कभी माताके सामने यह वैपरीत्य एक बड़ी कठिनाईके रूपमे उपस्थित हो जाता है कि वह तो अपने बच्चेका स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिए कोई प्रयत्न उठा नही रखती, पर उसे बराबर निराश ही होना पड़ता है और पड़ोसिनका बच्चा, जिसके लिए वह कोई प्रयत्न नही करती और बच्चा जो जीमे आता खाता-पीता रहकर उसके बच्चेसे अच्छा नही तो कम तदुरुस्त नही रहता। यह बात हतोत्साह करनेवाली प्रतीत होती है, पर इससे उक्त नियमोंकी विशेषतामे कोई अंतर नही आता। अगर कोई व्यक्ति निराश माताके कार्योको गौरसे देखे तो उनमे दोष अवश्य देख पड़ेगे, साथ ही यह भी हो सकता है कि पडोसिनके बच्चेका स्वास्थ्य दरअसल उतना अच्छा न हो जितना होनेका वह अनुमान करती है।

पहले नियममे बच्चेके आहारकी व्यवस्थाके संबंधमे इतमीनानकी आवश्यकता बतलाई गई है। इसका अभिप्राय यह है कि मातामे बच्चेके आहारके सबंधमे किसी तरहका उतावलापन नही होना चाहिए और न इसके संबंधमे माता और पितामे या माता-पिता और घरके बड़े-बूढो या अन्य सदस्योमें किसी तरहका मतभेद होना चाहिए। प्राय. लोग बच्चेकी बात लेकर आपसमे झगड़ जाया करते है। हालां कि अच्छे-से-अच्छा खाद्य पदार्थ भी किसी बच्चेके लिए अयुक्त या अस्वास्थ्यकर सिद्ध हो सकता है।

सिद्धांत और व्यवहार

कभी-कभी माताएं इन नियमोंको सिद्धातरूपमे तो मानती है, पर उनके व्यवहारमें यही देखा जाता है कि बच्चेमे किसी कारणसे रोगकी पूर्वावस्था प्रस्तुत होनेपर इस अवस्थाके

निवारणके लिए वे इन नियमोका और कडाई और विवेकसे पालन करनेके वजाय औषधोपचारकी ओर दौडती है। मलमे दो-एक केचुओका पाया जाना इसका अच्छा उदाहरण है। वे इन पराश्रयी जीवोको देखकर बहुत डर जाती है और उन्हे नष्ट करनेके लिए झटपट दवा इस्तेमाल करने लगती है। इससे होता यह है कि इन पराश्रयी जीवोको, जो कब्ज या जुकाम-जैसे रोगकी पूर्वावस्थाके कारण आतोमे पड जाते है, नष्ट करनेके लिए जो विषैली दवा दी जाती है वह अनिवार्यतः इतनी तेज होती है कि बच्चेके शरीरको भी विषाक्त कर देती है। केचुओकी उपस्थितिसे प्रत्यक्ष होनेवाली रोगकी पूर्वावस्था दूर करनेके लिए किया जानेवाला यह उपाय बच्चेकी हालत और खराब कर आसानीसे रोग प्रस्तुत कर देता है। अगर इस पूर्वावस्थाका समझदारीके साथ उपचार किया जाय तो औषधोपचारसे प्रस्तुत होनेवाली पाचनकी अस्तव्यस्तता आदि खराबियोका आसानीसे निवारण हो जाय।

जिस तरह घबड़ाकर द्रव्यौषधोका सहारा लेना बुरा होता है उसी तरह घबडाहटमे उपवासका सहारा लेना भी हानिकारक हो सकता है। माताका प्रयत्न स्थिरता और धीरताके साथ बच्चेका स्वास्थ्य ऐसा बनानेका होना चाहिए जो रोगकी पूर्वावस्थासे उसे मुक्त कर दे।

दवा और टीका

कुछ दिनोकी वात है कि एक एलोपैथिक डाक्टर मित्र हमसे मिलने आए तो अपने चिकित्सा-सबंधी अनुभव सुनाने लगे। हम उनके अपने कुटुवमे हुए अनुभवोंको सुननेके लिए ज्यादा उत्सुक थे। उन्होने वताया कि उनके छोटे वच्चेकी वीमारी उनके या उनके मित्रोकी समझमे नही आ रही थी फिर भी डाक्टरोने स्टेप्टोमाइसिनका उपयोग किया। वच्चेकी तवीयत कुछ सभली, लेकिन फिर यकायक एक रात खराव होने लगी और उसकी कोई सहायता न की जा सकी। हमारे मित्रका विश्वास था कि वच्चेको पहले जो स्टेप्टोमाइसिनका तीस लाख यूनिट दिया गया था उसीने वच्चेको उस वक्ततक चलाया था। हमारे मित्रके इस विश्वासपर कि स्टेप्टोमाइसिन उनके वच्चेको लाभकारी हुआ हमारी कोई आस्था नही हो सकी।

हम किसी भी रोगकी किसी भी अवस्थामे किसी भी दवाके इस्तेमालके विरोधी है। दवाद्वारा लाए जानेवाले नाशसे हम परिचित है फिर भी कही किसी औषधकी वातपर विचार किया जा सकता है, पर वच्चोंकी चिकित्सामे तो दवाका प्रयोग प्राय घातक ही होता है। दवा रोगके लक्षणोंको दवानेके प्रयत्नमे जीव-शक्ति कम कर देती है और वच्चेके नीरोग होनेकी संभावना कम हो जाती है। यदि शरीरकी अपनेको स्वस्थ करनेकी शक्ति रोग और दवा दोनोसे निपट पाती है तभी रोगी स्वस्थ हो पाता है। यों लोग इस चीजको समझते है, इसीलिए छोटे वच्चोकी चिकित्सा एलोपैथसे न कराकर

थोडी दवा देनेवाले होमियोपैथ या काष्ठ औषधोका प्रयोग करनेवाले वैद्यसे कराते है।

वच्चेके रोगी होनेका कारण क्या है ?

पहला कारण बच्चेको आवश्यकतासे अधिक खिलाना है। दूसरा कारण पीनेके लिए बच्चेको पानी न देना। तीसरा कारण है ठोस चीज खानेको देना, जब कि उसका मेदा उसे पचानेके काबिल नही होता। उसके बीमार पड़नेका कारण उसे बेजरूरत कपड़ोसे लादे रखना और तग तथा बंद कोठरियो या घरोमे रखना भी है। बच्चेको साफ हवा मिलनी ही चाहिए। साफ हवा बड़ोकी बनिस्बत बच्चोके लिए ज्यादा जरूरी है। फिर कसरतकी भी, आदमी बूढा हो या बच्चा, हर उम्रमें जरूरत है।

इतना ध्यान रखा जाय तो बच्चा बीमार न पड़े, पर यदि बच्चा बीमार हो ही जाय तो दवाके बदले बच्चेकी चिकित्सा क्या हो ?

बच्चेको बहुत कपडोसे ढके नही, उसे काफी पानी पिलाए। पानीमे स्वादके लिए नीबूका रस, थोडा शहद या किसी फलका रस मिलाया जा सकता है। बच्चेको पेटके बल सुलाकर यदि उसकी रीढपर हलके गरम पानीमे भिगोया मोटा कपड़ा रख दिया जाय तो उसके शरीरकी सारी नाडियोको अपना कार्य करनेके लिए उत्तेजन मिलेगा। बच्चेको रोगके समय उपवास कराते जरा भी न डरे।

बीमारीमे बच्चेकी भूख बंद हो जाती है। उस समय उसे केवल पानी पिलाना आवश्यक है। दो-तीन दिनतक बच्चेको पानीपर रखनेमे किसी तरहकी चिता करनेकी जरूरत नही है।

रोग जानेके बाद ही बच्चेको दूध देना चाहिए। बच्चा

मांका दूध पीता हो तो बच्चेको मांका ही दूध पिलाना चाहिए अथवा गायका। बकरीका मिल सके तो ज्यादा अच्छा है। बकरीके दूधको लोग कोई महत्त्व नही देते हालां कि वह मांके दूधका स्थान लेनेके लिए अधिक उपयुक्त है। गायके दूधकी अपेक्षा बकरीका दूध अधिक सप्राण होता है, इसकी चिकनाईके कण गायके दूधकी चिकनाईके कणोकी अपेक्षा छोटे होते है, वे गायके दूधकी तरह दूधके ऊपर इकट्ठे होनेके बजाय सारे दूधमें मिले रहते है। कही-कही गांवोंमे बकरीका थन बच्चेके मुहमे लगा दिया जाता है और बच्चा दूध पी लेता है। यह पद्धति आदर्श है। कुछ शहरोमें ग्वाले घर-घर गाय ले जाकर दूध दुह देते है, यह दूध भी बच्चोके लिए उपयोगी है।

यहां बच्चेकी हर हालतकी चिकित्सा बताना संभव नही है, पर जितना बताया गया है उसपर बच्चेकी चिकित्साके लिए डाक्टर बुलानेके पहले विचार करने लायक है।

याद रखे जबतक बच्चेके पूरे दात नही आ जाते वह ठोस चीज खाने लायक नही होता, दात आनेपर ही वह ठोस चीजोको चबा सकता है। अत पूरे दात आनेतक बच्चेको दूध ही देना चाहिए और कोई दूसरी चीज नही; पर यदि दूध बच्चेको उबालकर देना पड़े तो बच्चेको थोडा-सा संतरेका या किसी फलका रस भी दिया जा सकता है।

टीका घातक क्यों ?

टीका लगाना भयंकर भूल है और यह प्राय. घातक भी होता है। इसके द्वारा नन्हेंसे शरीरमे पहुंचाया जानेवाला पदार्थ रोगग्रस्त गाय, चूहे या घोडेके शरीरसे लिया जाता है। प्रकृतिका उद्देश्य प्रत्येक जीवको स्वास्थ्यका पात्र बनाकर रखना

है और स्वास्थ्यका अर्थ है स्वच्छता; इसलिए रोगी जानवरके शरीरसे लिया गया विषाक्त पदार्थ शरीरमें प्रविष्ट करना कभी युक्तियुक्त नही कहा जा सकता। इसके लाभदायक होनेके प्रमाणमे इसके हिमायती आकडे भी पेश कर सकते है, पर वे सही न होकर भ्रामक ही होते है। जादू-टोनेमे जनता और सरकारी कर्मचारियोका जिस समय विश्वास था उस समय डायनोका अस्तित्व भी सिद्ध करना कठिन नही था। जनता जिस बातको सत्य मान लेती है उसे आकड़ोका सहारा बडी आसानीसे दिया जा सकता है।

जीवविज्ञानकी प्रयोगशालाओमे तैयार किये गये वैक्सीन, लसीका आदिका प्रयोग करनेके लिए लोगोको धुन सवार हो गई है और यह मान लिया गया है कि इनमे स्वास्थ्य प्रदान करने या रोगनिवारण करनेकी बडी शक्ति है। बच्चोमे बहुकालव्यापी या स्पष्ट प्रभाव प्रकट किये विना ही इन विषोको निकाल बाहर करनेकी पर्याप्त शक्ति होती है। टीका लगाने-पर बच्चोमें इतना अधिक विष प्रविष्ट हो जाता है कि उन्हे स्वास्थ्य-लाभ करनेमे महीनो लग जाते है और प्राय मृत्यु भी हो जाती है। कभी-कभी तो सूई देनेके कुछ ही समय बाद मृत्यु हो जाती है, पर इसपर किसी तरहका दोषारोप नही किया जाता। बच्चेके शरीरको विषाक्त करना एक अपराध है, उसे स्वस्थ जीवन व्यतीत करनेका अवसर मिलना चाहिए। जिस बच्चेकी देखभाल समझदारीके साथ होगी वह एक दिन भी अस्वस्थ नही होगा और जो बच्चा एक मास, एक सप्ताह या एक दिन भी स्वस्थ रहने योग्य है वह हमेशा स्वस्थ रह सकता है।

पेटका दर्द

छोटे वच्चोके पेटमे जव-तव दर्द पैदा हो जाता है। नादान वच्चा वताये क्या, माता नही जानती और न डॉक्टर कुछ समझ पाते हैं। वडी परेशानी होती है। यह दर्द कोई नई वीमारी नही है, सभीको होता आया है और इस दर्दके कई घरेलू उपचार भी प्रचलित है, पर इस सवधमे जो नयी खोजे विदेशकी शिशु-हितैषिणी संस्थाओने की है वे हमारी वहनोके लिए लाभदायक हो सकती है, इसी खयालसे यहां उनका जिक्र किया जा रहा है।

वायुका प्रवेश

पेटका दर्द लगभग तीन महीनेके वच्चेको ही अधिकतर होता है। वड़ा हो जानेपर उसे यह कम ही सताता है। दर्दके समय वच्चेके पेटमे मरोड़ भी होती है, वह रोने-चिल्लाने लगता है और ज्यो-ज्यो दर्द जाता है वच्चा रोना कम करके सिसकने लगता है और धीरे-धीरे रोना वंद कर देता है। ऐसा दर्द यकायक ही आता है और जानेके वाद फिर करीव-करीब निश्चित समयपर आता है।

यदि वच्चा मांका दूध पीते वक्त हवा अधिक पी जाता है अथवा पेटमे वायु अधिक होती है तो पेटमे दर्द हो जाता है। इस समय मां वच्चेको कंधेसे लगाकर उसकी पीठपर धीरे-धीरे थपथपाए तो वच्चेको डकार आ जाती है और क्रमश. दर्द चला जाता है। इस विधिसे यह साधारण दर्द प्राय. मिनटभरमे गायव हो जाता है।

जो दर्द अधिक देरतक रुकता है और लौट-लौटकर आता है उसका कारण बच्चेकी पाक-प्रणालीमे, खास तौरसे आतोमे वायुका पैदा होना है। यह दर्द भी डकार आनेसे कम हो जाता है, पर इससे दर्दका मूल कारण वायुका बनना—नही रुकता। ऐसी दशामे बच्चेको किसी गरम कपड़ेपर या गरम पानीसे भरी और तौलियेमे लपेटी हुई रबरकी थैलीपर पेटके बल लिटाना चाहिए। इससे वायु शीघ्रतासे निकल जायगी। यदि इस समय एक चम्मच गरम पानीमे दो बूद नीबूका रस निचोड़कर बच्चेको पिलाया जाय तो भी शाति मिलेगी। इस दर्दमे आध पाव गरम पानीका एनिमा देना भी लाभकर सिद्ध होता है। बच्चेके पेटमें दर्द उसको अधिक पिलाने या पिलानेमे जल्दबाजीसे काम लेनेसे हो जाया करता है, पर नई बात जो मालूम हुई है वह यह है कि बच्चेकी खुशीमे बाधा पडनेसे भी यह दर्द पैदा हो जाता है अर्थात मानसिक व्याघातके कारण बच्चेको यह शारीरिक कष्ट होता है। छोटे बच्चो और बडे बच्चोकी मानसिक बनावटमे बडा अतर रहता है। दुर्भाग्यकी बात यह है कि बडे बच्चोके सबधमे जितनी कुछ जानकारी हो चुकी है उससे बहुत ही कम छोटे बच्चोके सबंधमे हुई है। इसमे जरा भी सदेह नही है कि छोटे बच्चोके मस्तिष्कपर मनोवेगोका एव मनोवेगोपर शारीरिक सुख-दु खका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

परिस्थितियोंका प्रभाव

नवजात शिशु अपनेको नई परिस्थितिके अनुकूल बनानेमे बड़ी कठिनाइयोका सामना करता है। उसका मानस, उसकी पाचन-प्रणाली और उसका शरीर तीनो ही बड़ी कोमल दशामे रहते है जिनका सतुलन बडे बच्चोकी अपेक्षा बहुत आसानीसे

और बहुत शीघ्र बिगड़ जाता है। उदाहरणके लिए, बराबर यह देखा जाता है कि तीन महीने या तीन महीनेसे कमके बच्चेको यदि डरा दिया जाय या उसके निकट अधिक शोर किया जाय तो इसका उसपर एक विशेष प्रभाव पडता है। यदि बच्चेकी खाट किसी चीजसे टकरा जाय या बच्चेके सिरके निकट कोई चीज जोरसे खटखटाई जाय तो वह अपने हाथोको फैलाकर उनसे अपनेको ढकनेकी कोशिश करता है। बड़े लड़कोमे यह प्रवृत्ति नही देखी जाती।

पाचन-प्रणालीके रोगोके संबंधमे जितने अन्वेपण हुए है वे सभी बताते है कि जब पाचन-प्रणाली ठीक रहती है तब आदमी खुश रहता है और मानसिक स्थिति अपेक्षाकृत अधिक शात रहती है। यह स्थिति बच्चो और बड़ोंमे समान होती है, पर विशेष जाननेकी बात यह है कि बच्चे जितने ही छोटे होते है इस स्थितिके प्रति उतने ही अधिक संवेदनशील होते है। यह सब देखते हुए यह जान पडता है कि बच्चेके पेटके दर्दका संभाव्य कारण परिस्थितिद्वारा उसके मनपर पड़नेवाले प्रभावकी प्रतिक्रिया एवं पाचनकी गड़बड़ी है।

बच्चोके पेटका दर्द प्राय दोपहरके बाद शामको या रातको होता है, क्योकि इस वक्त बच्चा और उसकी मां दोनो ही थके रहते है जिससे साधारण कारण भी उन्हे शीघ्रतासे उत्तेजित एव क्रुद्ध कर देते है। यह भी देखा गया है कि जो बच्चे शोरगुलवाली जगहमे रहते है उन्हे पेटका दर्द अधिक होता है। शहरके बीच रहनेवालोके बच्चे शहरसे दूर शांत वातावरणमें रहनेवालोके बच्चोकी बनिस्बत पेटके दर्दसे अधिक पीड़ित रहते है। यदि बच्चोको इस पेटके दर्दसे बचाना चाहते

हैं तो उन्हे उचित भोजन देना चाहिए, उनके आरामका खयाल रखना चाहिए और देखना चाहिए कि उन्हे शौच समयपर होता है और इन सबके ऊपर उन्हे शात वातावरणमे रखना चाहिए। शात वातावरण बच्चोको अनेक रोगोसे बचाता है।

घरमे होनेवाली पड़पड-तडतड़—जैसे टेलीफोनकी घटीका बार-बार बजना, घरका दरवाजा खुलवानेके लिए दरवाजेपर-की थप-थप, रेडियोके बेसुरे गीत या लेक्चर, लोगोका हँसी-ठट्ठा या सिलाईकी मशीनका करकर—बड़ोको बुरी नही लगती, क्योकि वे लोग इन आवाजोका अर्थ समझते है और इस तरहके घरमे होनेवाले अनेक तरहके शब्दोके विरुद्ध उनके कानोंमे प्रतिरोधक शक्ति पैदा हो गई होती है, पर बच्चोकी श्रवण-शक्तिमे ऐसा कोई प्रतिरोध तो पैदा हुआ नही होता अत. वे शीघ्रतासे चौक उठते है। यह प्रतिक्रिया चाहे आपको दिखाई न दे, पर ऐसी प्रतिक्रियाएं मिलकर बच्चेमे पेटका दर्द पैदा करनेमे कारण होती है।

दूधका असर

बच्चा जबतक तीन महीनेका नही हो जाता तबतक उसकी मांसे उसका बहुत अधिक संबंध रहता है और उसकी मांकी खुशी और नाराजगी, स्वास्थ्य और अस्वास्थ्यका उसपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि मां क्रुद्ध अथवा चिंतित हो जाय अथवा उसमे नाड़ी-दौर्बल्य पैदा हो जाय तो इससे उसके दूधकी किस्म और मात्रापर ही असर नही पड़ता वरन् उसके द्वारा मांके मनकी स्थिति भी बच्चेको मिलती है और वह बच्चेमे पेटका दर्द भी पैदा कर सकती है।

माको दूध पिलाते वक्त खूब खुश रहना चाहिए और बच्चे-को ऐसा सहज भावसे होशियारीसे उठाना और हटाना चाहिए कि वह किसी तरह चौक न जाय और उसके आस-पास पूर्ण शांत वातावरण रखना चाहिए, क्योकि शाति बच्चोको पेट और हर तरहके दर्दसे बचाती है।

कोष्ठबद्धता

वच्चोके लिए यह रोग वहुत वुरा होता है, क्योकि इसे ठीक तरहसे सभाल ले जाना कुछ मुश्किल होता है। इससे तरह-तरहके शारीरिक विकार तो उत्पन्न होते ही है, मानसिक विकार भी पैदा हो जाते है जो रोज-रोजकी परेशानीके कारण होते है। वहुतसे विकारोमे तो लोगोको यह अनुमान भी नही हो पाता कि उनका मूल कारण यही होगा।

रोगका आरंभ

साधारणत यह रोग शैशवके आरभमे ही पैदा हो जाता है और अगर सावधानीके साथ इसकी प्रवृत्तिका निवारण न कर दिया जाय तो यह पूरे शैशवकालमे ही नही, युवावस्थामे भी बना रह जाता है और तरह-तरहके रोग उत्पन्न किया करता है। कहा जाता है कि रातमे या सफर आदिमे वच्चेको तौलिये-पर रखना और उसके गदा हो जानेपर उसे वदलनेमे विलव करना ही इस रोगकी प्रवृत्ति होनेका कारण होता है, क्योकि इससे मलमार्गके तंतुओमे उपदाह पैदा हो जाता है जिससे वच्चेकी आत साफ नही हुआ करती।

वच्चेमे कोष्ठवद्धता होनेका असल कारण होता है स्तनपान करानेवाली माताका बुरा खान-पान तथा वच्चेको खिलाने-पिलानेका गलत तरीका। ये तथा छोटी-मोटी अन्य भूले आंतमे शिथिलता आने तथा बनी रहनेका कारण हुआ करती है। कभी-कभी मां-वाप भूलसे मृदु विरेचकके जरिये पेटका

साफ होना कब्जका दूर हो जाना मान लेते है। अगर शैशव-कालमे इसकी प्रवृत्ति दूर करनेकी ओर उचित ध्यान न दिया जाय तो मा-बापकी आंखोके सामने कम रहनेकी अवस्था होनेके समयतक रोग जीर्ण रूपमे परिणत हो जा सकता है जिससे बच्चेका जीवन ही संकटमय हो जायगा।

लक्षण

कोष्ठबद्धताके सारे लक्षणोका उल्लेख करना बहुत कठिन है। सच तो यह है कि बच्चेका स्वास्थ्य बुरा होनेका सूचक एक भी लक्षण ऐसा नही हो सकता जिसकी जडमे आंतका यह विकार न हो। सबसे प्रकट लक्षण तो मलका अवरोध है, पर इसकी बुराई कहातक पहुचती है इसका अनुमान केवल इस अवरोधसे नही किया जा सकता। मुख्य बात तो रक्त आदिके द्वारा बड़ी आतसे विषका अभिशोपित होना है। इसके साथ अन्य मार्गोसे मलके विसर्जनमे जो कमी आती है उसे भी शामिल कर लीजिए तब कही आप यह अनुमान कर सकते है कि रोगोके निर्माणमे यह विकार कितना सहायक होता है।

जिस बच्चेको कब्ज रहता है उसमे किसी भी रोगकी—मामूली जुकामसे लेकर यक्ष्मातककी—प्रवृत्ति हो जायगी। इस विकारसे आत्मविपमयता प्रस्तुत हो जाती है जो रोगका निर्माण करती है। सास बहुत गंदी हो जाती है, जीभपर मैल बैठ जाता है, नीदमे बच्चा दांत भी पीस सकता है, रातमें डरकर चौक सकता है और कभी-कभी उसे मूर्च्छा भी हो सकती है। वह छोटी-छोटी बातोपर चिढ जाया करेगा। जीर्ण-प्रतिश्याय, क्षीणता, दतक्षय-जैसे भयंकर शारीरिक लक्षण भी इसके कारण प्रकट हो सकते है।

दूर करनेका उपाय

अगर इस विकारकी ओर ध्यान देनेमे कुछ दिनोतक लापरवाही होती रहे तो इसपर काबू पाने और बच्चेके रहन-सहनका तरीका ठीक करनेमे कुछ समय लगेगा। खिलाने-पिलानेकी आदतोका विश्लेषण कर यह पता लगानेका प्रयत्न किया जायं कि इस विकारका आरभ कैसे हुआ। अगर सारे शरीरमे प्रतिश्याय हो तो शरीरकी भीतरी सफाईकी तरफ फौरन ध्यान दिया जाय। इसका फल भी शीघ्र ही देख पडने लगेगा। ऐसी हालतमे अच्छा यह होगा कि आतकी सफाई और शारीरिक क्रियाओके उद्दीपनके लिए एनिमाका प्रयोग किया जाय और बच्चेको दो-एक दिन पानी या संतरेके रसपर रखनेके बाद तीन-चार दिन सिर्फ फल और सलादपर रखा जाय। यह उपचार किसी तरहकी दवा देनेसे कही अच्छा होगा। जबतक बच्चेके मलसे बदबू बिलकुल दूर न हो जाय और मल साफ न निकलने लगे तबतक वह फलो और तरकारियोपर ही रखा जाय। अन्य अवस्थाओमे केवल आहार ठीक कर देना काफी होगा। आहारके संबंधमे सादगीका ध्यान बराबर रखा जाय। तरह-तरहकी पाकक्रियाओद्वारा खाद्य पदार्थोको जायकेदार बनाकर खानेकी चाट बढानेकी जरूरत नही है।

आहार

जिन बच्चोकी आतोमे शैथिल्यकी प्रवृत्ति हो उनको नाश्तेमे ताजा और सूखा फल, दोपहरके भोजनमे चोकरदार आटेकी थोड़ी-सी रोटी, थोडा मक्खन, कुछ हरी तरकारी और सलाद और शामके भोजनमे फल और थोडा दूध देना लाभ-

दायक होगा। विशेष रूपसे स्मरण रखनेकी वात यह है कि आहार और दिनचर्या ठीक करनेके अलावा वच्चोका कब्ज दूर करनेका और कोई उपाय नही है। रोगोके निर्माण, सर्दी, टौंसिल आदिके पीछे होनेवाली परेशानी और समयकी वर्वादीमे कब्जका कितना हाथ रहता है इसे मां-वाप कभी-कभी नही समझ पाते। अगर आते ठीक तरहसे काम करती रहे तो किसी तरहकी कोई शिकायत पैदा होनेका कोई कारण ही नही रहेगा।

अग्निमांद्य

अग्निमाद्य अर्थात् आहारका परिपाक कर पोषण ग्रहण करनेकी अक्षमता रोगकी दिशामे पहला कदम है। बच्चेके आरभिक जीवनमे यह बात विशेष रूपसे घटित हुआ करती है। अगर इस कालमे आहारसंबधी नियमोका उचित रूपमे पालन न किया जाय तो पाचन-संस्थान इस कदर खराब हो जा सकता है कि मृत्यु भले ही प्रस्तुत न हो, पर हालत आजीवन खराब ही बनी रहेगी।

कारण

अगर बच्चेको प्राकृतिक आहार अर्थात् माताका दूध न मिले और वह तरह-तरहके कृत्रिम खाद्य पदार्थोपर रखा जाय तो उसकी जीवन-यात्रा कभी खतरोसे खाली न होगी। बहुधा इसी अवस्थामे अग्निमाद्यका आरभ होता है और कुछ दिनमे उसके जीर्ण रूपमें परिणत हो जानेपर पाचनसंस्थान उसीका आदी हो जाता है। बहुतसे बच्चे तो जन्म लेनेके दिन ही इसके चंगुलमे फँस जाते हैं; क्योकि उन्हे पहले ही दिन स्तन-पान शुरू करा दिया जाता है। दूसरी भूल है बार-बार दूध पिलाना। अगर बच्चेमे दूध पिलानेके नियत समयोके बीच कुछ बेचैनी देख पडती है तो माता इसे पाचनकी खराबीकी सूचक न मानकर भूखकी सूचक मान लेती है। इस प्रकार आहारकी मात्रा और भी बढ जाती है जिसका भार बच्चेके पाचन-सस्थानके लिए असह्य हो जाता है।

लक्षण

यो तो इस विकारमे और भी लक्षण होते है, पर बच्चेकी शारीरिक परीक्षा करनेपर तीन लक्षण आमतौरपर देखे जाते है—(१) पाचनक्रियाका शिथिल होना और कुछ खाद्यांशका अपक्व अवस्थामे शेष रह जाना, (२) जुकामकी प्रवृत्ति, मलमे श्लेष्माकी अधिकता और अन्ननालीकी श्लैष्मिक कलाकी सकुलता, और (३) अगर रोगकी हालत बुरी हो और उसकी उपेक्षा होती रहे तो अंत्रावरणमें प्रदाह या व्रणकी उत्पत्ति। इन लक्षणोके साथ बच्चेमे बेचैनी भी रहा करती है। तीव्रावस्थामे वमन, उदरामय और ज्वर भी हुआ करता है, मलत्यागमे नियमितता नही रहती और कभी-कभी श्लेष्मा अधिक मात्रामे निकलता है। कुछ अवस्थाओमे अफरा और दर्द भी होता है।

रोगके जीर्णावस्थामें परिणत हो जानेपर लक्षणोमे और अधिक विभिन्नता देख पड़ती है। बच्चेकी बाढ़ रुक जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और वजन जितना होना चाहिए उतना नही होता, मलत्याग नियमित रूपमे नही होता और मलमें बहुत अधिक श्लेष्मा रहता है; जीभपर मैल बैठ जाता है, सांस गंदी हो जाती है और नीद भी ठीक तरहसे नही आती, बच्चेको जोरोकी सर्दी हो जाती है और श्लेष्माके कारण वायुमार्गमे घडघड़ाहट रहती है; वह बहुत जल्द चिढ जाता है और छोटी-सी बातपर आगबबूला हो जाता है और अगर उसमें नाड़ी-दुर्बलता हो तो पासके लोगोके साथ मेलसे रहना उसके लिए कठिन हो जाता है। इस विकृत पाचनके कारण बहुतसे बच्चोका स्वभाव खराब हो जाता है, पर लोगोंको असल कारणका पता नही रहता।

उपचार

अगर रोगी बहुत कमजोर हो गया हो या उसमे चिड़चिड़ापन आदि लक्षण देख पडते हों तो उसे विस्तरेपर रखिए और रोज शरीरके तापमानवाले पानीका एनिमा देकर उसकी आत साफ कर दीजिए। अगर यह काम ठीक तरहसे हो जाय तो आहारका वह अंश जो पचा नही है, वाहर निकल आएगा और वच्चेको बहुत आराम मालूम होगा।

इस अवस्थामे अन्ननालीमें सड़नेकी क्रिया चलती रहती है। औषधोपचारक इससे उत्पन्न होनेवाले जीवाणुओको नष्ट करनेके लिए जीवाणु-नाशक घोलका प्रयोग करते है, पर यह हानिकारक होता है। फलके रसका आहार इसका सवसे निरापद उपाय है। अगर प्रोटीन (दूध, दही, दाल, मांस, अंडा), कर्वोज, (रोटी, चावल, आलू) चिकनाई और साधारण चीनी देना वदकर नारगी, अनन्नास, सेव आदि फलोंका रस दिया जाय तो सड़नेकी क्रियापर काबू होनेके साथ ही पोषणकी प्राप्ति भी होती रहेगी। अडीका तेल आदि दवाए देना वुरा होता है। रसाहार चलानेके बाद तीन-चार दिनोतक केवल ताजा फल दिया जाय और साधारण आहार देनेकी अवस्था आनेपर तीन बातोका खयाल रखा जाय—(१) भोजन साधारण और सादा होनेके साथ ही भरसक सूखा हो, (२) तरह-तरहकी चीजे एक साथ न मिलाई जाय, और (३) अधिक खानेकी गलती करनेसे कम खानेकी गलती करना अच्छा है।

इस रोगके शिकार हुए बच्चोका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जानेकी सभावना रहती है और वे सव बातोमे अपनी ही ओर ध्यान देते है। इसलिए अगर संभव हो तो उन्हे ऐसे वातावरणमे

रखना चाहिए जहां वे अपनी योग्यताका विकास और रचनात्मक कार्योंमे अपनी नाड़ीशक्तिका उपयोग कर सकें, उन्हें अपने पैरोंके वल खडा होनेका प्रयत्न करने दिया जाय और अधिक मार्ग-प्रदर्शन न किया जाय ।

उद्रामय या कै की प्रवृत्ति

उदरामयसे मा-वापको अन्य रोगोंकी अपेक्षा अधिक परेशानी होती है। यह रोग शैशवकालके विलकुल शुरूमे भी पैदा हो जा सकता है और बेचारी अनुभवहीन माता घवडाकर गलत उपचार करने लगती है। वच्चेके स्तनपान करते समय और अन्य बातोंके विलकुल ठीक होनेपर भी पालन-पोषणके साधारण ढंगमे थोड़ा भी परिवर्तन हो जानेपर यह रोग हो जाया करता है।

अतिपानका परिणाम

अधिक स्तन-पान कराना ही उदरामयका मुख्य कारण होता है। वच्चोके अधिकांश विकार अतिपानसे ही होते हैं, अल्पपानसे नही जैसा कि साधारणत लोग विश्वास किया करते हैं। अतिपानका पहला लक्षण है दूधका वमन, पर अफसोसकी वात तो यह है कि माताए इसका रहस्य ठीक-ठीक नही समझ पाती और वच्चेको मोटा-ताजा देखनेकी धुनमे इस तरह पागल बनी रहती है कि अधिक पिलानेसे वाज आनेका नाम ही नही लेती। प्रकृति इस अतिपानके खतरेसे वच्चेको बचानेके लिए ही उदरामय पैदा कर अनावश्यक अंश शरीरसे वाहर निकाल दिया करती है।

इसे दवा देकर दवानेका प्रयत्न नही करना चाहिये, आहारकी मात्रा वहुत घटा दी जाय। आतोको आराम पहुंचानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि वच्चेको सिर्फ सन्तरेके रसपर चौबीस घंटे रखा जाय। अगर मलमे सड़ान और वदवू ज्यादा

हो तो गुनगुने पानीसे एनिमाद्वारा आंतकी धुलाई कर दी जाय और कुछ कालतक बच्चेको उतना ही पिलाया जाय जितना वह धारण कर सके, जरा भी मुहसे वाहर निकालनेपर मात्रा घटा दी जाय। अगर मा-वाप अच्छी तरह समझ जाये कि साधारण उदरामय अतिपानके ही कारण होता है तो उसके उपचारमें कोई कठिनाई नही होगी।

वड़े वच्चोंको भी अधिक खाने तथा चीनी, श्वेतसार आदि खमीर पैदा करनेवाले पदार्थोंके साथ कच्चा फल या मास-मछली आदि जल्द सड़नेवाली चीजें गरमीमें खानेसे उदरामय हो जाया करता है। इनमेंसे कोई एक कारण यह विकार पैदा करनेके लिए काफी होता है। अगर रोगका रूप साधारण हो तो वच्चेका पेट जल्द ही साफ हो जाता है, पर गंभीर होनेपर सुस्ती, ज्वर आदि लक्षण प्रकट हो जाते है।

उपचार

रोगका रूप चाहे जैसा हो, उपचार एक ही प्रकारसे होता है। पहला उपाय है खिलाना वंद कर देना। साधारण उदरामयमें तो यही काफी होता है, पर गंभीर अवस्थामे वच्चेकी ताकतका खयाल रखना पडेगा कि कही जवाव न दे दे। उपवास करते समय एनिमा दे-देकर उसकी आतकी पूरी सफाई कर दी जाय और जहातक हो सके मानसिक और शारीरिक विश्राम देनेका खयाल रखा जाय। ऐसा न होनेपर उसपर वहुत जोर पडेगा जिसका असर रोग जानेके बहुत दिनो वादतक वना रहेगा।

सामान्य लक्षणके रूपमें

वच्चोंके वहुतसे रोगोमें उदरामय सामान्य लक्षणके रूपमें

प्रस्तुत हुआ करता है। दंतप्रस्फुटनके समय होनेवाला तथाकथित उदरामय पाचनकी खराबीका ही परिणाम होता है। रोहिणी, आरक्त ज्वर, शीतला आदि कुछ कठिन रोगोमे उदरामय कुछ दिनोतक वना रह सकता है। उस हालतमे इस मल-विसर्जनको अच्छा समझना चाहिए। दवाके जरिए इसे रोकनेका प्रयत्न वहुत वुरा होता है। औषधोपचारक माता-पिताके आग्रहसे प्राय. यह गलती कर बैठते है।

भोजनमें सतर्कता

अगर उचित उपचार हो तो इसका रूप शायद ही कभी गभीर होगा, पर आरोग्योन्मुख अवस्था संभाल ले चलना रोग संभालनेसे अधिक कठिन होता है। आम तौरसे भूल यह होती है कि लोग वच्चेको जल्द ही प्रोटीन और श्वेतसारवाले खाद्य पदार्थ खिलाने लग जाते है। आहारपर कड़ाईसे ध्यान दिया जाय और रोगका जरा भी चिह्न देख पड़े तो खिलाना फौरन बद कर दिया जाय। गर्मीके दिनोमे मांस-मछलीसे परहेज किया जाय, श्वेतसारवाला पदार्थ सिर्फ एक वक्त दिया जाय और केला, आलू तथा इस वर्गके अन्य पदार्थ भरसक न दिये जायं और अगर दिये जायं तो वहुत कम। इनके स्थानपर मौसिमी फल, हरी तरकारियां, सलाद आदि और दूध भी दे सकते है। मट्ठा देना, विशेषकर गर्मीके दिनोमे, वहुत अच्छा होता है।

सर्दी और खांसी

बच्चेका पालन चाहे जितनी सावधानीसे क्यो न किया जाय, पर वह शैशवकाल विना सर्दी हुए पार कर जायगा, इसकी संभावना कम ही रहेगी। इस रोगकी उत्पत्तिमे ऋतु-परिवर्तन उतना सहायक नही होता, पर मौसिममे अचानक होनेवाला अल्पकालिक परिवर्तन सब रोगोको उत्तेजन दिया करता है।

सर्दी और खांसीमें लक्षणोको दवानेका प्रयत्न सबसे ज्यादा खतरनाक होता है। अगर इन छोटे विकारोके उपचारमे समझदारीसे काम न लिया जाय तो जीर्ण रोगोके लिए, जिनका शरीरमे अज्ञात रूपमें निर्माण होता रहता है, दवाकी तलाश करनेको वाध्य होना पड़ेगा।

दवासे लाभ नहीं

सर्दीकी नपी-तुली परिभाषा बतलाना वहुत कठिन है। कीटाणुवादियोका कहना है कि सर्दी कीटाणुओके कारण होती है और वे कभी भी आक्रमण कर दे सकते है इसलिए सर्दीका निवारण करने या उससे छुटकारा पानेके लिए वायुमार्गके क्षेत्रमे कीटाणुनाशक द्रव्योका प्रयोग करना आवश्यक है, पर दरअसल ये द्रव्य कुछ सफाई करनेके अलावा और कोई खास लाभ नही पहुंचाते और भविष्यमे रोगका निवारण करनेकी दिशामे तो वे जरा भी प्रभावकर नही होते।

प्राकृतिक पद्धतिका सिद्धांत

सर्दी और खांसीके सबंधमे प्राकृतिक पद्धतिका सिद्धात

बिलकुल भिन्न है जिसकी सत्यताकी परीक्षा दूसरी बार सर्दी होनेके समय आसानीसे की जा सकती है। रोग शरीरमें एकत्र विषाक्त मलका ही परिणाम होता है। क्षय और निर्माण-की क्रियामे विषाक्त मलका बनना जारी रहता है और साधारण रूपमे कार्य करते समय शरीर इस मलको वृक्क, त्वचा आदि मलमार्गोके जरिए बराबर बाहर निकालता रहता है। अगर किसी कारणसे मल-विसर्जनकी यह क्रिया मद हो जाय तो यह विकार ततुओमे एकत्र होने लगता है। अगर यह अवस्था अधिक दिनोतक बनी रहे और मल-विसर्जनकी क्रिया उद्दीप्त करनेका कोई उपाय न किया जाय तो रोगकी नीव अवश्य पड़ जायगी।

ऐसे विषाक्त मलसे भरे हुए शरीरमे सर्दीका प्रस्तुत होना कोई कठिन बात नही है। ठढ लगने या इस तरहकी और कोई बात होनेपर शरीरकी प्रतिक्रिया सर्दीके रूपमे हो सकती है। अगर सर्दी बहुत मामूली हो तो वायुमार्गके ऊपरी हिस्सेमे सिर्फ उपदाह-जैसा सवेदन जान पडेगा, बार-बार खांसी आएगी और कुछ श्लेष्मा भी निकल सकता है, पर अगर इसका रूप गभीर हो तो गलेमे श्लेष्माके कारण घड़घडाहट मालूम होगी और खासनेपर काफी श्लेष्मा निकलेगा। अगर नासा-रंध्र मे उपदाह हो तो बहुत छीक आएगी और नाक भी बहेगी और नीचेकी ओर बढे तो श्वसनी इससे ग्रस्त हो जायगी और उसमे प्रदाह प्रस्तुत हो जायगा, फेफडोमे फैल जाय तो फुप्फुसप्रदाह (न्यूमोनिया) हो जायगा। कुछ द्रव्यौषधोके सहारे शरीरके सफाईके इस प्रयत्नको दवा देना सभव है, पर इसका परिणाम बहुत भयंकर हुआ करता है।

अगर वच्चोकी सर्दी और खासी इस दृष्टिसे देखी जाय तो उपचारके लिए अच्छा आधार मिल जाता है। यह फौरन स्पष्ट हो जायगा कि कीटाणुओका पीछाकर उनको ढूढ निकालनेका प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नही है, यह सारी प्रक्रिया हानिकारक विषाक्त पदार्थको निकाल वाहर करनेकी है।

वच्चोको सर्दी कई तरहसे हुआ करती है। थोड़ी-सी ठढ लग जानेपर भी ऐसा मालूम होता है कि सर्दी हो गई है और यह अवस्था कुछ कालतक वनी भी रह सकती है, पर इससे माता-पिताको घवड़ाकर तथाकथित आरोग्यदायक औषधोंके प्रयोगकी वात नही सोचनी चाहिए; क्योंकि वे लक्षणोपर पर्दा डालकर उनको इस धोखेमे डाल दे सकते है कि खतरा विलकुल दूर हो गया।

जाड़ेमें होनेवाली सर्दी

जाड़ेमे आम तौरसे होनेवाली सर्दी-खांसीसे प्राय सभी लोग परिचित है। खान-पान आदिमे कोई गड़बड़ी होनेपर इसका आरंभ हुआ करता है और इससे छुटकारा पानेका प्रयत्न करनेपर भी प्रायः वसंतागमतक वनी रहती है। यह एक वंधे हुए रास्तेपर चलती है, कभी-कभी पेटमे कुछ गड़बड़ी हो जाती है और कुछ खांसी हो सकती है जो वढकर कुकुरखांसीका रूप ग्रहण करती हुई जान पड़ सकती है। माता-पिता औषधोपचारकी सहायता लेते है, पर उसका कोई खास प्रभाव नही होता और लगभग इसी समय वसंत आकर इसका अत कर देता है। अगर माता-पिता सर्दी और खासीको हौवा वनने देना नही चाहते तो उन्हे इसे समझनेके लिए प्राकृतिक

पद्धतिका दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। इस हालतमें वे इस समस्याका आसानीसे हल करनेमे तो समर्थ होगे ही, इसे दवाके जरिए दवाकर जीर्णरूपमें परिणत करनेकी गलतीसे भी वच जायंगे।

इस दृष्टिसे देखनेपर सर्दी और खासीकी भयंकरता भी गायव हो जाती है। इसके लिए मा-वापको वच्चेकी रोज-रोजकी आदतोंका विश्लेषण कर सर्दीके कारणका ही नही, उसे दूर करनेके उपायका भी पता लगाना पडेगा। यह उपाय शरीरकी क्रियाओको उत्तेजित कर उसका प्रयत्न आगे वढाने-की दिशामे उतना न होकर उसने जो कार्य आरभ किया है उसमें पडनेवाली वाधाओको दूर करनेका होना चाहिए।

उपचार

शरीरको स्वयं अपना प्रयत्न करनेके लिए छोड़ देना चाहिए। इसके लिए पहला काम तो यह होना चाहिए कि भोजन विलकुल बंद रहे; क्योकि इस समय शरीर खाद्य पदार्थोंको पचाने और उनसे पोषण ग्रहण करनेकी अवस्थामे नही होता। इस समय भोजनसे अरुचि भी हो जाती है जो भोजन वद रखनेका प्रकृतिका सकेत है।

सर्दी और खासीसे ग्रस्त वच्चेको सफाईकी जरूरत होती है जो सिर्फ उपवाससे पूरी हो सकती है। चौवीस या छत्तीस घटेका उपवास सर्दीका जोर खत्म करनेमे जितना सहायक होगा उतना और कोई उपाय नही हो सकता। इस तरहके उपवाससे किसी तरहके खतरेकी आशंका करना भूल है, उलटे इससे वच्चेको शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे वड़ा लाभ होता

है। इससे शरीर अपनी सफाई करनेकी क्रिया ठीक तरहसे चलानेकी स्थितिमे हो जाता है और इसके साथ ही बच्चेमे आत्मानुशासनका भाव भी आ जाता है जो और किसी उपायसे उतना नही आता। अगर परिस्थितियां अनुकूल हो तो बच्चेके लिए उपवास करना कठिन नही होगा। प्रौढोमे जो भय और परेशानीकी स्थिति होती है वही बच्चेका सतुलन अस्तव्यस्त कर देती हैं।

उपवासके बाद बच्चेको कुछ दिन सिर्फ फल और सलादपर रखा जाय। इन पदार्थोसे उसे शरीरके लिए आवश्यक वानस्पतिक लवण तथा अन्य तत्त्व मिल जायगे। इसके बाद हालतमे ज्यो-ज्यो सुधार होता जाय पूर्णान्न और तरकारियां बढाते जाइए और फिर दूध तथा दूधसे बने पदार्थ शामिलकर उसे प्राकृतिक पद्धतिद्वारा अनुमोदित आहारका रूप दे दीजिए जिसमें बच्चेके शरीरमे रोगोका निरोध करनेकी शक्ति काफी बढ़ जाय।

कुकुरखांसी

कुकुरखासी बहुत कष्ट देनेवाला रोग है और अगर इसके उपसर्गोपर ध्यान दिया जाय तो यह बहुत खतरनाक भी है। इसके कारणोके संबधमे बहुत मतभेद देख पड़ता है। औषधोपचारकोके अनुसार यह रोग सक्रामक होता है और जाडेके दिनोमे तो यह बहुव्यापक भी हो जाता है। पहली और दूसरी बार दात निकलनेके बीचकी अवस्थावाले बच्चे इसके अधिक शिकार होते है। दुधमुहे बच्चे भी इसके अपवाद नही है। यह भी कहा जाता है कि यह रोग लडकोसे अधिक लडकियोको होता है। कभी-कभी जवानो और बूढोको भी हो जाता है और बूढोमे तो इसका रूप बहुत भयकर होता है। ऐसा जान पडता है कि जुकामकी हालतमे ही यह सक्रामक होता है। एक बार हो जानेपर यह दूसरी बार शायद ही होता है।

लक्षण

इस रोगके लक्षणोकी पहचान बड़ी आसानीसे हो जाती है। यह लबे अरसेतक बना रहता है इसलिए इस प्रकारके अन्य रोगोसे इसका अन्तर करना कठिन नही होता। लगातार जोरदार छोटी-छोटी खासियां आती है और उनमे सासका उतना योग नही होता। चेहरा तमतमा जाता है, काफी श्लेष्मा निकलता है और कभी-कभी वमन भी हो जाता है। इसमे बच्चेको बड़ा कष्ट होता है और वह डरकर सहायताके लिए माता-पिताको पकड लेता है।

औषधोपचारकोको इसके उपचारमे किसी प्रकारकी जरा भी सफलता नही मिलती। प्रत्येक औषधका कुछ-न-कुछ असर होता ही है। अगर वह अच्छा नही होता तो उसका बुरा होना निश्चित है। इसलिए रुग्ण शरीरमें अज्ञात प्रभाव उत्पन्न करनेवाले द्रव्योको प्रविष्ट करना नासमझीका परिचायक है।

रोगका कारण

औषधोका प्रयोग न करनेवाली मर्दनोपचार आदि पद्धतिया भी इस रोगके कारण और उपचारके सबंधमे एकमत नहीं है। वे कीटाणु-सिद्धात नही मानती और शरीरके सुधारपर ही ध्यान देती है और अंगरचना आदिके दोषोको दूरकर रोग अच्छा करनेका प्रयत्न करती है, पर आहार आदि स्वास्थ्यसंबंधी बातोकी ओर उनका ध्यान नही जाता जिससे रोग बहुत कुछ बना ही रह जाता है। रोगके मूल कारणका पता लगानेके लिए हमे उन नियमोकी ओर ध्यान देना होगा जिनके द्वारा मानव-जीवनका संचालन होता है। कोई भी रोग इन नियमोका अपवाद नही हो सकता। इसलिए मानना पड़ता है कि रोगका आरभ होनेके पहले प्राकृतिक नियमोका उल्लघन अवश्य होता रहा है।

रोगोंकी एकतावाले सिद्धांतका अभीतक किसीने खंडन नही किया है। इस रोगके कारणपर विचार करते समय इसे ध्यानमे रखना आवश्यक है। अस्वस्थता शरीरके अंदर आयी हुई खराबीका व्यक्त रूप है जो गलत रहन-सहन आदिका परिणाम है। इसलिए कुकुरखांसी किसी विशेष कीटाणुकी सृष्टि नही है जो कही बाहरसे आकर निरीह बच्चेमे जम गया है। अगर सावधानीके साथ शारीरिक अवस्थाका परीक्षण

किया जाय तो इस बातकी सत्यता प्रमाणित हो जायगी। ऐसे बच्चेमे नाड़ी-संस्थानकी अस्तव्यस्तताके साथ-साथ पाचन-सस्थानकी खराबी अवश्य देख पड़ेगी, शायद सारी अन्नप्रणालीमे जुकाम मौजूद होगा। जांच-पड़तालसे यह भी पता चल जायगा कि उसमें उपयुक्त आहारके साथ अति-भोजनका भी दोष है। उसकी सास भी गंदी होगी और कब्जकी भी प्रवृत्ति हो सकती है। इन बातोके साथ ही नाड़ी-शक्तिपर भी ज्यादा जोर पडना संभव है।

उपचार

रोगका चिह्न प्रकट होते ही इसपर ध्यान देना आवश्यक है। बच्चा आरामके साथ बिस्तरपर रखा जाय और उसका शरीर, विशेषकर पैर, गर्म रखनेका प्रयत्न किया जाय और नाडी-संस्थान शात करनेके लिए उसका बदन ढीला कराया जाय। शरीर और मनके विश्रामपर सबसे अधिक ध्यान दिया जाय। सच्चे आरामके लिए शरीरको विश्राम मिलना आवश्यक है जिसका अर्थ केवल पेशियोका विश्राम नही बल्कि पाचन-संस्थानका भी विश्राम है। जबतक रोगीको आराम न मालूम हो उससे उपवास कराया जाय और सच तो यह है कि भीतर-बाहर पूरी सफाई हुए विना आराम मालूम भी नही हो सकता। रोग कड़ा होनेपर सुवह-शाम दोनों वक्त एनिमा दिया जाय और गरम पानीसे नहलाया जाय जिससे शिथिलीकरणमे अच्छी सहायता मिलेगी।

दिनमे एक बार पीठ, विशेषकर मेरुदंडकी मालिश भी की जाय जिसमे गरदन और पीठकी नाड़ियो और पेशियोमे ढीलापन

आ जाय, ठुड्डी और कठिकास्थि ऊपर उठा-उठाकर ढीली की जाय और पेट सावधानीके साथ मलकर आते उत्तेजित की जायं।

अगर बच्चेका इस प्रकार उपचार किया जाय तो उपसर्गोंके पैदा होनेका खतरा बहुत कम हो जायगा, उसका, स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा हो जायगा और निरोध-शक्ति काफी बढ जायगी। रोगका दौरा समाप्त होनेपर आहारपर विशेष ध्यान दिया जाय। पूरी-मिठाई या इस तरहकी अन्य चीजे उसे न दी जायं और जो चीजे मुश्किलसे पचनेवाली हो उनसे पूरा-पूरा परहेज किया जाय।

श्वसनी-प्रदाह

कमजोर वक्ष स्थलवाले बच्चोके शरीरके इस भागमें रोग होनेकी विशेष सभावना रहती है और उसपर मौसिमके परिवर्तन-का भी बहुत जल्द असर होता है। ऐसे बच्चोका लाड-प्यार साधारण बच्चोकी अपेक्षा अधिक किया जाता है और इस शारीरिक दोषके कारण लोग उन्हे तरह-तरहकी पेटेंट चीजे खिलाते रहते है। अगर उनके रहन-सहनके ढगमे थोडा भी परिवर्तन हो जाय तो वे इस रोगकी चपेटमें आ जाते है।

प्रतिश्यायकी अवस्था

श्वास-सस्थानमे फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, नासिका, श्वास-नलिकाका ऊर्ध्वभाग, कंठनली, श्वसनी आदि अंग सम्मिलित है जिनके जरिए वायु अदर प्रवेश करती है। ये सभी वायुमार्ग एक ही तरहके बने है और इन सबमे श्लैष्मिक कलाका अस्तर रहता है। इस कलासे हमेशा श्लेष्मा निकलता रहता है जो हवाके साथ आनेवाले धूलिकणोको ग्रहण कर लेता है। कभी-कभी रोगकी हालतमे इस श्लेष्माका रूप बदल जाता है और उसकी मात्रा भी बहुत बढ़ जाती है जिससे वह नलिकाओमे ठसाठस भर जाता है। हम इसे ही प्रतिश्याय कहते है। अगर श्लेष्मा-के विसर्जनका क्षेत्र ऊपरका हिस्सा होता है तो हम इसे सर्दी कहते है। कभी-कभी तो श्लेष्माके निकल जानेपर यह भाग जल्द ही साधारण अवस्थामें पहुंच जाता है, पर कभी-कभी यह अवस्था जीर्णरूपमे परिणत होकर प्रदाह उत्पन्न कर देती है।

रोगका आरंभ

शैशवकालमे विसर्जनकी क्रिया शीघ्रतास फैल जाती ह और इसपर शरीरकी बड़ी प्रबल प्रतिक्रिया होती है। यही कारण है जिससे सर्दी होनेपर श्वसनी-प्रदाह बहुत जल्द हो जाया करता है और अगर उपचारमे शीघ्रता और सावधानी न की जाय तो अग कमजोर पड़कर इस रोगका क्षेत्र वन जाता है। इस प्रकारके बच्चेमे ठढ, वर्षा आदिका प्रतिरोध करनेकी शक्ति नही होती और ठंढ लग जानेपर फौरन इस रोगका आक्रमण हो जाता है। इस रहस्यको न समझ सकनेके कारण लोग इसे ही रोगका कारण मान लिया करते है। अब देखना यह है कि शरीर, परिस्थितियो या पोषणमे वह कौन-सा दोष है जिसके कारण शरीर मौसिमके साथ मेल बैठानेमे समर्थ नही हो पाता। केवल स्टेथोस्कोप लगाने और जीभ देखनेसे काम नही चलेगा, शरीरके ढाचेकी सावधानीके साथ जाच करनेपर कुछ पता चल सकता है। ऐसे बच्चेके मेरुदंड, कठास्थि और ऊपरकी पसलियोमें कुछ असाधारणता देख पड़ती है जो रोगोत्पत्तिका कारण होनेके साथ ही आरोग्यलाभमें वाधक भी होती है।

परिस्थितियोपर भी विचार करना आवश्यक है। ऐसे बच्चेमे चिड़चिडापन होनेसे उसकी नाडीशक्ति सहयोग नही करती और नीद गाढी नही होती जिससे उसकी शारीरिक स्थिति अच्छी नही होती, उसके दिमागपर अध्ययनका बहुत जोर पड़ता है और वह विद्यालयमे और बच्चोके साथ नही चल पाता।

इसके साथ ही पोषणका भी विश्लेषण किया जाय। प्राय यही देखा जाता है कि असंतुलित आहार बच्चेको अस्व-

स्थताके गड्ढेसे निकलने नही देता। ऐसे वच्चेको चिकनाई, चीनी और श्वेतसार अधिक परिमाणमे देना आवश्यक माना जाता है, वानस्पतिक लवणो और विटामिनोकी प्राप्तिपर ध्यान नही दिया जाता जो रोगके आक्रमणका एक प्रमुख कारण हुआ करता है।

लक्षण

सीनेमे सर्दी लगनेपर तापमान वढता जाकर १०१ अंशके आसपास पहुंच जाता है। खासी पहले सूखी रहती है, पर दो-एक दिन वाद तर हो जाती है। श्लेष्माका रंग पीला हो जाता है जो रोगके रूपका परिचायक होता है। रोगकी गभीरता उसके क्षेत्रपर निर्भर है। साधारण अवस्थामें वह कंठनलीके निचले भाग और बडी श्वसनियोमे रहता है, पर नीचे वढनेपर उसकी गंभीरता वढ जाती है और आरोग्यलाभ कठिन हो जाता है।

तीव्र और जीर्ण रूप

अगर वच्चा काफी मजवूत हो और सावधानीके साथ उपचार किया जाय तो तीव्र श्वसनी-प्रदाह लगभग एक सप्ताहमे चला जाता है और रोगका कोई चिह्न शेष नही रहता, पर अगर कुछ कसर रह जाय तो बार-बार दौरा होते रहनेकी सभावना वनी रहेगी और तव रोग जीर्ण रूप ग्रहण कर लेगा जिसमे तंतुओका रूप बदल जायगा और श्लेष्मा वहुत गाटा और कुछ-कुछ लाल हो जायगा, पेशियोंके तंतुओमे भी परिवर्तन हो जायगा जिससे स्वरनलिकाका लचीलापन जाता रहेगा और उसकी क्रिया भी ठीक तरहसे नहीं होगी, श्वास-संस्थानका

शरीरके अन्य भागोसे संबंध नही बना रहेगा, शरीरको
ओक्सजन नही मिलेगा, सांस लबी हो जायगी, सीनेकी
बदल जायगी और बच्चेकी हालत बहुत खराब हो जायगी

उपचार

एलोपैथिक चिकित्सामें वास्तविक स्थितिपर ध्यान न
केवल लक्षणोको दूर करनेका प्रयत्न किया जाता है।
मणका जोर समाप्त हो जानेपर शरीरको दृढ करनेका
नही किया जाता जिसमे फिर रोगका आक्रमण होनेकी संभ
न रहे। द्रव्यौषधे धडल्लेके साथ दी जाती हैं जो लाभसे अ
हानि ही किया करती हैं। प्राकृतिक चिकित्सामे ऐसी
चीज नही दी जाती जो शरीरके लिए विजातीय हो। रो
रूप तीव्र हो तो बच्चा साफ और हवादार कमरेमें विस्त
रखा जाय और ज्वर रहते समय रोज एनिमा देकर उ
आंत साफ कर दी जाय। अगर बुखार तेज—लगभग
अश—हो तो सीनेपर केवल ठंढी और अगर कम हो तो
बारीसे गर्म और ठंढी पट्टी पंद्रह-बीस मिनटतक दिनमें दो-
बार लगायी जाय। नाडी-केंद्रोको उद्दीप्त करनेके लिए
ऊपरी हिस्सेपर भी ये पट्टिया लगाई जा सकती हे। बुखा
हालतमें पानी और फलके रसके अलावा और कुछ भी न
जाय। अगर बुखार उतर जानेपर भी खांसी बनी रहे
बच्चा केवल फलपर रखा जाय। रोग जल्द दूर कर
प्रयत्न न कर धीरे-धीरे ही सुधार होने दिया जाय।

बच्चेके पूर्णतः नीरोग हो जानेपर खान-पानका प

कुछ श्वाससंबधी व्यायाम रोज कराये जाय। बच्चेको एका-एक बाहर ले जाना ठीक नही, मौसिम अच्छा होनेपर ही वह बाहर ले जाया जाय और हवामे रहनेका धीरे-धीरे अभ्यस्त किया जाय। शरीरकी निरोध-शक्ति बढानेके लिए उसे धूप-स्नान भी कराया जाय।

अगर रोग जीर्णावस्थामे पहुच चुका है तो उपचारमे अधिक समय लगेगा। कोई कष्ट या ज्वर न देख पड़े तो भी वह यों ही न छोड़ दिया जाय। अगर श्लेष्माके साथ खांसी हो तो बच्चेको बिस्तरपर ही रखकर उपर्युक्त उपचार चलाया जाय। आरंभमे कुछ दिनोतक सिर्फ फलका रस दिया जाय और उसके बाद आठ-दस दिनोतक बच्चा केवल फलोपर रखा जाय और फिर उसे एक वक्त तो चोकरदार आटेकी रोटी या दलिया और उबली हुई हरी तरकारी दी जाय और एक वक्त फल या हरी तरकारी और सलाद। भविष्यमे श्वेतसार और चीनी बहुत कम देनेका नियम रखा जाय।

अगर इन उपायोको ठीक तरहसे चलाया जाय तो बच्चेका स्वास्थ्य बहुत जल्द ठीक हो जायगा, पर अगर रोग बना रहा, दवाए दी जाती रही तो ततुओमे परिवर्तन होना जारी रहेगा जिससे आरोग्य-लाभ होना असभव हो जायगा। आरभमे उपचार करनेमे जितना समय नप्ट होगा उसी हिसाबसे कठिनाई बढ जायगी।

सामान्य चर्मरोग

चर्मरोग इतने प्रकारके होते है कि अगर सवपर विचार किया जाय तो एक स्वतंत्र पुस्तक वन जायगी, इसलिए यहा केवल ऐसे रोगोपर विचार किया जायगा जो आम तौरसे वच्चोंको हो जाया करते है।

दुग्ध-पीड़िका आदि

अगर वच्चेमें त्वचाके मार्गसे विकार निकलनेकी प्रवृत्ति हो तो केवल स्तनपान करनेपर भी कुछ चर्मविकार प्रकट हो जा सकते है और अगर देखभालमें लापरवाही की जाय तो वे अधिक दिनोतक वने रहकर परेशानीका कारण हो जा सकते है। सिरके चर्मकी शुष्कता, दुग्ध-पीड़िका आदि इसी प्रकारके रोग है। इन विकारोके प्रकट होनेपर पाचनकी अस्तव्यस्तता-पर ध्यान देना आवश्यक है अन्यथा ये तरह-तरहके उपसर्ग प्रस्तुत कर दे सकते है। इन्हे दवानेवाले लेपोका, जो जस्ते, सीसे आदिके योगसे तैयार किये जाते है, प्रयोग कभी न किया जाय। प्राय. इन विकारोके साथ जुकामकी प्रवृत्ति भी रहती है इसलिए उपचारमे इसका खयाल रखना आवश्यक है। दूधकी मात्रा घटाकर सिर्फ इतनी रखी जाय जिससे वच्चेका काम किसी तरह चलता रहे और एक वार दूध न पिलाकर दूधके वदले आधी या पौन छटांक संतरेका रस दिया जाय। आंत साफ रखनेके लिए एनिमाका प्रयोग किया जाय और साथ ही रोगवाले क्षेत्रकी सफाईका भी खयाल रखा जाय। अगर

सिरमें रूसी पड गई हो तो रातमे जैतून या तिलका तेल लगाकर ढक दिया जाय और सुवह वारीक कंघीसे उसे साफ कर दिया जाय। विकार स्थानीय होनेका खयाल कर शरीरके साधारण स्वास्थ्यके सुधारका उपाय न करना ठीक न होगा।

विसर्प

वढते हुए वच्चोमे पाचनकी खरावीसे होनेवाले विकार आमतौरसे देखे जाते है, हालां कि वहुतसे लोग यह वात माननेके लिए तैयार नही होते। विसर्प इसी प्रकारका एक रोग है जिसमे चमडेकी ऊपरी परतमे प्रदाह होता है और कुछ विकार भी निकल सकता है। विकार निकलनेकी क्रिया चद दिनोमे भी समाप्त हो सकती है और छ-सात सप्ताह भी चल सकती है। इसमे प्राय: खुजली पैदा हो जाती है जो वहुत कष्ट देती है। इसके वढ जानेपर वृक्कोमे खरावी आ जाती और ज्वर भी हो जाता है। साराश यह कि आत्मविषमयताके सभी लक्षण प्रकट हो जाते है।

शीत-पित्त

शैशवमे शीत-पित्त नामका एक विकार होता है जिसकी प्रवृत्ति वातप्रधान और अधिक संवेदनशील त्वचावाले वच्चोमे विशेषरूपसे होती है। इसमे लाल-लाल ददोरे हो जाते है, उनमे वडी खुजली होती है और खुजलानेपर ददोरे वढते जाते है। तीव्रावस्थामें यह जिस शीघ्रतासे आता है उसी शीघ्रतासे चला भी जाता है। इसका जीर्ण रूप भी होता है जो वर्षो टिकता है। इस रोगका कारण भी पाचनकी खरावी ही है। वच्चेको गर्म पानीसे नहलाकर विस्तरपर लिटा दीजिए।

अगर इससे खुजली शांत न हो तो अधिक खुजलीवाले क्षेत्रपर और आवश्यक हो तो सारे बदनपर गीली पट्टीका प्रयोग कीजिए। इससे जल्द आराम मालूम होगा। अगर रोगका रूप उग्र हो तो पाचनसंबंधी खराबीपर ध्यान दीजिए। बच्चा कुछ दिन सिर्फ फलपर रखा जाय और उसके बाद फल और दूध दिया जाय।

पामा आदि

पामा (उकवथ), विचर्चिका तथा इस प्रकारके अन्य कठिन रोगोंमें उपचारका वही आधारभूत सिद्धांत काममें लाया जाता है। तथाकथित निर्दोष लेपों आदिके प्रयोगसे कोई लाभ नहीं होगा और अगर रोग दबानेवाली दवाओंका प्रयोग किया गया तो यह शरीरके लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होगा। विकारग्रस्त शरीरके पोषण और विसर्जनसंबंधी दोषोंको दूर करनेके लिए बच्चेकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाका पूर्णरूपसे परीक्षण और विश्लेषण करना भी आवश्यक होगा।

अगर उपचार प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार किया जाय तो विकार जल्द ही चला जायगा और इसके साथ ही चर्मविकार पुनः होनेकी संभावना भी बहुत कम रहेगी।

चेचक

इस देशमे हर साल, विशेषकर वसतागमके समय, बहुतसे लोग चेचकसे आक्रात होते और कई, समझदारीके साथ उपचार न होनेके कारण, मौतके शिकार हो जाया करते हैं। इससे बचनेके लिए लोग प्राय- टीका लिया करते है, पर यह चाल अच्छी नही है। वहुतसे लोगोकी यह धारणा है कि टीका लेनेसे चेचकके आक्रमणका भय जाता रहता है, लेकिन वे जानते नही कि वास्तवमे टीका क्या है और इससे शरीरमे कितनी खराबिया उत्पन्न होती है। गायके शरीरपर चेचक होती है, उसका मवाद लिया जाता है और वही मवाद टीकेके जरिए मनुष्यके खूनमे डाल दिया जाता है। यह विकार मनुष्यके रक्तमे पहुचकर जहर फैलाता है; पर यह घृणित क्रिया इसलिए की जाती है कि इससे चेचकका बचाव होगा। यह कौन-सी बुद्धिमानी है कि दुश्मनके डरसे मकान ही वरवाद कर दिया जाय?

टीका लेनेपर भी लोग मरते हैं

आजकल प्राय देखा जाता है कि जिन लोगोने टीका लिया है वे भी चेचकसे बीमार होते और मरते है। इस बातकी पुष्टि करते हुए, अमेरिकाके डा० लिडल्हार एम० डी० ने, जो पीछे प्राकृतिक चिकित्सक हो गये थे, अपनी पुस्तकमे लिखा है कि सन् १९२७ ई०मे जर्मनीमे चेचक इतने जोरसे फैली थी कि एक लाख बीस हजार आदमी बीमार हुए जिनमे एक लाख मरे। इनमेसे लगभग ९६ हजार टीका ले चुके थे, केवल

चार हजार विना टीकेके थे। अट्ठारह वर्षकी लगातार खोजके वाद जर्मनीके प्रधान मत्री प्रिंस विस्मार्कने अपने अधीन समस्त राज्योको लिख भेजा कि त्वचाके रोगोका देशमे फैलनेका कारण टीका है, पर चेचकका कारण और चिकित्सा अभीतक नही मालूम हुई है। टीकेसे जो सफलताकी आशा की जाती थी, धोखा सावित हुई। इसी पत्रके आधारपर जर्मन राज्यमे टीका या तो वद कर दिया गया या कानून ढीला कर दिया गया। कहनेका तात्पर्य यह है कि टीका लगवानेके वाद भी आदमी खतरेसे खाली नही रहता वल्कि चेचकके अलावा और भी रोगोका शिकार उसे वनना पड़ता है। दुर्भाग्य है कि हिंदुस्तानियोके वास्ते टीका न लगवाना ही जुर्म है।

क्या चेचक छूतकी वीमारी है?

लोगोका कहना है कि चेचक छूतकी वीमारी है, इसीसे जहा फैलती है वहां वहुत ज्यादा लोगोको इसका शिकार होना पड़ता है। यह छूतकी वीमारी जरूर है, पर लगती उसीको है जिसके शरीरमे पहलेसे सामान तैयार रहता है। शुद्ध खूनवाले शरीरोमे यह छूत नही लगती। इसको सिद्ध करनेके लिए कि चेचकसे यों ही छूत नही लगती डा० लिंडल्हारने अपनी पुस्तकमे एक आश्चर्यजनक घटना लिखी है। अमेरिकाके विस्कंशन प्रांतमे डा० रोडरमंड एक डाक्टर थे। उन्होने अपने कुछ डाक्टर भाइयोके सामने अपने सारे शरीरमे बिस्फोटकका मवाद मल लिया। कानूनके मुताविक वे पकडकर जेलमे वंद किये गये, लेकिन उन्हे चेचकका रोग न हुआ। इस तरहके और भी कई उदाहरण है।

बचनेका उपाय प्राकृतिक जीवन

सभी रोगोका एकमात्र कारण शरीरमे विजातीय द्रव्यका इकट्ठा होना और उसका वाहर न निकलना है। जवतक मनुष्यके शरीरमे विजातीय द्रव्य मौजूद है तवतक वह नीरोग नही कहा जा सकता। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवालोको चेचकका भय विलकुल नही रहता। जो पहलेसे अनियमित है वे भी अगर दो-तीन दिनोका उपवास करके (या विना उपवासके ही) दस-वारह दिन फलाहार करे और इन दिनो वरावर एनिमा ले तो शरीर शुद्ध हो जाता है और रोगका भय जाता रहता है।

किसी भी रोगका लक्षण देखते ही मनुष्यको समझना चाहिए कि हमारे शरीरमे विजातीय द्रव्य इकट्ठा हो गया है और रोगके रूपमे शरीर उसको वाहर करना चाहता है। इसमे पथ्य और दवासे वाधा नही डालनी चाहिए। शरीरको सहायता पहुचानेके लिए उपवास, पेटकी सफाई और आराम करना चाहिए।

चेचककी चिकित्सा

चेचकके दाने निकलनेके पहले मनुष्यको वुखार आता है, इसलिए तुरंत वुखारका इलाज शुरू कर देना चाहिए। इसके लिए उपवासके साथ सुवह-शाम एनिमा लेनेसे दो-तीन दिनोमें वुखार जाता रहता है। इस तरह आरभमे ही उपचार शुरू कर देनेसे वहुत अंशमे चेचकका भय जाता रहता है, लेकिन अगर चेचकके दानोका निकलना शुरू हो जाय तो घवराना नही चाहिए। उपवासके वाद रोगीको दूधमे पानी मिलाकर

और उसे गर्म कर, विना चीनी-मिश्रीके, दिनमे दो-तीन बा
पिलाइए और दिनमे एक वार एनिमाका प्रयोग जारी रखिए
गर्म दूध और पानी पिलानेसे दाने पूरी तरह निकल आवेंगे
साथ ही एनिमासे पेट साफ रहेगा और तब किसी प्रकारक
खतरा नही होगा। दाने निकल जानेके बाद दूध वंद करव
केवल फलोंका रस या तरकारीका रस थोड़ा-थोड़ा पानी
मिलाकर पिलाना चाहिए। पानी रोगीको काफी मिले इसक
ध्यान रखा जाय, शरीरको गीले कपड़े या रुईके फाहेसे पोछक
रोज साफ किया जाय और रोज एनिमा देना जारी रखा जाय
जब दाने विल्कुल सूख जाए, तभी उसे साधारण भोजनप
लाया जाय। भोजन देते समय इस बातका ध्यान रहे कि
रोगी जो भोजन करता है वह आसानीसे पचा सकता है या नही
इस तरहसे वह धीरे-धीरे कुछ ही दिनोमे एकदम स्वस्थ ह
जायगा। इस चिकित्साकी सबसे वड़ी खूबी यह है कि चेचकक
दानेके दाग नही रहते।

रोगीको साफ और सूखे तथा हवादार स्थानमे रखिए
भोजनका सयम जरूर रहे—पहले दूध और पानी, दानोक
उभड जानेपर सिर्फ फल और तरकारीका रस और दानोक
अच्छी तरह सूख जानेपर फल और अन्न दीजिए। नमक
तभी दीजिए जब दाने विलकुल ठीक हो जाए।

चुन्ना या कृमि रोग

बच्चोकी आतोमे अक्सर कीडे पड जाते है जो मुश्किलसे जाते है। इस रोगके पीडित बच्चेका स्वास्थ्य साधारणत खराब रहता है। उसे अच्छी नीद नही आती, स्वभाव चिड-चिडा हो जाता है, वह पीला पड जाता है और उसकी आंखोके नीचेकी जगह काली हो जाती है। ऐसे बच्चेकी भूख राक्षसी हो जाती है, वह दिनभर खाते ही रहना चाहता है, पर बना रहता है दुबला और खाकर कभी सतुष्ट नही होता। इस रोगसे पीडित बच्चेको किसी हदतक कब्ज और जुकाम रहता है। लोग प्राय. नही मानते, पर ये ही दोनो कृमि रोगके मूल कारण है, उसके लक्षण नही है।

कृमि और केंचुए

प्राय बहुतसे बच्चोके मलके साथ छोटे-छोटे कीडे निकलते है। इन्हे चुन्ना कहते है। इनकी लंबाई चौथाईसे लेकर आध इचतक होती है। जब ये चुन्ने गुदाद्वारपर पहुचते है तो वहां बडी खाज उठती और गुदा चुनचुनाती है। शायद इसी कारण इन कीडोका नाम चुन्ना पड गया है और उन्हींके नामपर रोगका नामकरण हुआ है। अगर बच्चेके शौच जानेके बाद ही पाखाना ध्यानसे देखा जाय तो उसमे ये चलते-फिरते दिखाई देते है। दूसरी तरहके कीडे, जो बच्चोके पेटसे निकलते है, केचुएकी शकलके होते है। अंतर इतना ही होता है कि गीली मिट्टीमे रहनेवाले केचुएकी अपेक्षा ये अधिक पीले होते है, पर ये

मिटटीमे मिलनेवाले केचुए नही होते। ये कुछ अलग ही चीज है। और भी कई तरहके कीड़े बच्चोके पेटसे निकलते है, लेकिन हमारे देशमे अन्य कीड़ोसे कम ही बच्चे पीड़ित रहते है।

बच्चोके पेटसे ये चुन्ने कभी-कभी दो-चार ही निकलते है, पर धीरे-धीरे ये बडी संख्यामे और नित्य निकलने लगते है। ये चुन्ने बच्चोको बहुत परेशान करते है अत. मांको कभी बच्चेके मलके साथ एक भी चुन्ना दिखाई दे तो उसे तुरत सजग हो जाना चाहिए, पर यदि बच्चेका स्वास्थ्य किसी तरहसे न्यून न दिखाई दे और उसे कब्ज या जलन न हो तो ऐसी अवस्थामे कभीं एकाध चुन्ना बच्चेके मलमे दिखाई दे जाय तो समझना चाहिए कि कोई अंडा किसी तरह पेटमें पहुंच गया है जहा उसके फूटनेकी वजहसे वह बाहर निकल आया है। ऐसी अवस्थामे कोई चिंता नही करनी चाहिए।

रोगका कारण

(१) गदे हाथोको भोजनमे लगाना या अंगुलियोको मुंहमें डालना।

(२) नाकमे अंगुली डालनेके बाद मुंहमे डालना।

(३) किसी खानेकी चीजको जमीनपर गिरनेके बाद उसे बच्चेको खिलाना।

(४) चुन्नेके अंडोका गुदाद्वारपर निकल आना और उन्हे बच्चेका अपने हाथोसे मुंहमे पहुचाना।

(५) चुन्ने रोगसे पीडित बच्चेके तौलिए या जाघिएका इस्तेमाल करना।

(६) कब्जके कारण आंतोमे मलका अधिक समयतक रुकना।

(७) आवंकी बीमारी जो चुन्नेके पनपनेमे सहायक होती है।

(८) पूरी तरह पेटके साफ न होनेपर मलका गुदाद्वारके निकट आकर रुका रहना जो चुन्नोके पनपनेमे सहायक होता है।

चिकित्सा

कुछ डाक्टरोका कहना है कि चुन्ने बच्चेके पेटमे अडे नही देते, जो चुन्ने पेटसे निकलते है उनके अडे मुहके जरिए पेटमें गए हुए होते है, पर कभी-कभी जितने अधिक चुन्ने बच्चेके पेटसे निकलते हैं और हफ्तो निकलते जाते हैं उन्हे देखते हुए इस मतकी सत्यता समझमे नही आती।

इस रोगको दूर करनेके लिए डाक्टर पहले ऐसी कोई कडी दवा देते हैं जिससे पेटमेके चुन्ने और उनके अडे मर जायं और फिर उन्हे बाहर निकालनेके लिए कोई तेज दस्तावर दवा देते हैं। ऐसी चिकित्सासे विशेष लाभ नही होता, उल्टे कभी-कभी इससे बच्चेकी पाचन-प्रणाली बिगड जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सामे इस रोगको दूर करनेके लिए बच्चेकी आंतोको चुन्नो और उनके अंडोसे मुक्त और सशक्त करनेकी कोशिश की जाती है ताकि बच्चेका कब्ज और जुकाम चला जाय जो इस रोगका मुख्य कारण है। आते सशक्त और उनका कार्य स्वाभाविक बनाया जाता है जिससे वे अंडोको देरतक रुकने नही देती और उनसे चुन्ने पैदा होनेके पहले ही उन्हे बाहर निकाल देती हैं। साथ ही सफाईका पूरा ध्यान रखा जाता है जिसमे और अंडे पेटमे न पहुच जाय।

जब माको बच्चेके मलमें चुन्ने होनेकी शका हो जाय तब

उसे उसकी उपस्थितिका निश्चय करनेके लिए मलको कई दिनो-तक अच्छी तरह देखना चाहिए। यदि कई चुन्ने एक साथ दिखाई दे तो इस रोगकी चिकित्सा अनिवार्य हो जाती है। कई अवस्थाओमे अच्छी तरह देखा जाय तो सोते हुए बच्चेके गुदाद्वारपर चुन्ने दिखाई दे जाते है।

इस रोगसे पूर्णत मुक्ति दिलानेके लिए बच्चेकी जमकर चिकित्सा करनी होती है, पर बच्चेको जलन और खाजसे मुक्त करनेके लिए तथा उसे ठीक तरह नीद आए इसके लिए कभी-कभी ऐसी चिकित्साकी जरूरत होती है जो बच्चेके इस कष्टको शीघ्र शांत कर सके।

कामचलाऊ चिकित्सा

कामचलाऊ चिकित्सा मै उसे कहता हूं जो बच्चेको उसके गुदाद्वारपर उठती हुई खाजसे मुक्त कर दे। इसके लिए बच्चेकी उम्रके अनुसार पाव-आध सेर गुनगुने गरम पानीमे रुपये-आठ आने भर नमक मिलानेके वाद उसका एनिमा देकर बच्चेका पेट साफ कर देना चाहिए और फिर पिचकारीसे दो-तीन तोला नारियलका तेल गुदाद्वारके जरिये आतोमे पहुचा देना चाहिए। तेल बच्चेकी आतकी झिल्लीकी जलनको शांत करेगा और चुन्नोके जो अडे-बच्चे आंतमे चिपके रहकर एनिमाके पानीके साथ न निकले होगे उन्हे छुडा देगा। अगर किसी कारणसे एनिमा देना कठिन हो तो बच्चेके घुटने पेटके पास रखकर उसे पेटके वल सुला देना चाहिए और उसे शीघ्र शौच होनेके समयकी तरह जोर लगानेको कहना चाहिए। इस रीतिसे भी कीड़िया मलद्वारसे निकलती है। इन कीड़ियोंको कागजकी वत्ती वनाकर

उसकी नोकसे हटाते जाना चाहिए और वे जब काफी संख्यामे निकल चुकें तो पिचकारीसे तेल गुदाद्वारकी मार्फत आतोमे पहुचा देना चाहिए ।

रोगमुक्तिके लिए पूर्ण चिकित्सा

चुन्ने रोगसे बच्चेको पूर्णत. मुक्ति दिलानेके लिए यह आवश्यक है कि मा उसके रोगकी उपेक्षा न करे और इस रोगकी चिकित्सा जमकर करे ।

चिकित्साके श्रीगणेशके तौरपर बच्चेको आराम करने देना चाहिए और एक या दो दिनतक उसे पानीके सिवा कुछ भी खाने-पीनेको नही देना चाहिए । अगर बच्चा न माने या माका जी न माने तो बच्चेको पानीसे फल या तरकारियोका रस मिलाकर दिया जा सकता है । पानी या रस मिला हुआ पानी बच्चा जितनी बार मागे और जितना मागे देना चाहिए । अक्सर बच्चे इस समय घटे-घटेपर यह पानी पीते है, पर बच्चा इतना जल्दी पानी पीना चाहे तो उसके साथ जबरदस्ती नही करनी चाहिए । इस उपवासमे पहले बताए हुए पानीका एनिमा भी सबेरे-शाम देना चाहिए । एनिमा इस चिकित्साका एक विशेष अग है; क्योकि एनिमाके पानीके साथ चुन्ने तथा श्लेष्मा और मल बाहर निकल आते है जिसमे चुन्नेके अडे-बच्चे निवास करते है । एनिमाके बाद बच्चेको यदि जाड़ा मालूम हो तो गुनगुने गरम पानीसे और गरमी हो तो ताजे पानीसे अच्छी तरह नहलाना चाहिए और नहलानेके बाद उसका बदन पोछकर उसका सारा बदन हाथोसे धीरे-धीरे रगडना चाहिए । बच्चेका बिछावन रोज धूपमे डालना चाहिए । जिस कमरेमें बच्चा सोए उसकी

खिड़कियां खुली रखनी चाहिए जिसमे उसे शुद्ध हवा बराबर मिलती रहे।

अन्य तीव्र रोगोमे किसी भी बच्चेको उपवासमे कोई कठिनाई नही होती, उसे भूख ही नही लगती कि वह कुछ खाना चाहे। पर इस रोगमे अवस्था कुछ विपरीत ही रहती है। अतः बच्चेको उपवासकी आवश्यकता अच्छी तरह समझा देनी चाहिए और उसे प्रोत्साहन देकर उपवास कराना चाहिए और जरूरत पड़े तो उसे उसके मलमें चलते चुन्ने दिखाकर उसे उपवासकी आवश्यकताकी प्रतीति करानी चाहिए। बच्चा आराम और उपवास आसानीसे कर सके इसके लिए उससे भोजनकी गंध और भोजन दूर रखना चाहिए तथा उसका दिल बहलानेको उसे कुछ नए खिलौने देने चाहिए और उसे कुछ किस्से-कहानियां सुनानी चाहिए।

उपवास

अगर बच्चा इतना बडा है कि वह चलना सीख गया है तो उससे एक दिनके बजाय दो दिनका उपवास कराना अच्छा है। चाहे बच्चा एक दिनका उपवास करे या दो दिनका, उसे आगे चार-पांच दिनोतक केवल फल-तरकारियां ही खिलानी चाहिए। तरकारियां कच्ची (टमाटर, गाजर, खीरा, ककड़ी, प्याज आदि) और पकी दोनों प्रकारकी दी जा सकती है। इस वक्त भी बच्चेको सादा पानी या फल-तरकारियोंका रस मिला पानी यथेष्ट मात्रामे पिलानेका ध्यान रखना चाहिए। इस समय उसे दूध, रोटी, भात, दाल, मिठाई या और कोई चीज किसी हालतमे भी न देनी चाहिए। इस फलाहारमे भी बच्चेको रोज शामको एनिमा

द देना चाहिए। फल-तरकारी लेनेपर बच्चेको अक्सर सबेरे अपने आप ही शौच होता है। इसके लिए उसे प्रेरित करना चाहिए, पर यदि न हो तो कोई हर्ज नही है।

फलाहारके दूसरे दिन बच्चेको दोपहरके भोजनमें तरकारियोके साथ कुछ भुने हुए आलू देने चाहिए और नाश्तेमे पानीमें भिगोई हुई कुछ किशमिश। इस समय बच्चेको कच्ची तरकारिया देना बहुत लाभदायक है। जो तरकारियां कच्ची खिलाई जाय उन्हे अच्छी तरह साफ करना चाहिए और अतमे नमक मिले पानीसे धोकर साफ पानीमे धो लेना चाहिए।

एक दिन बच्चेको यह भोजन देनेके बाद दूसरे दिन उसे दोपहर और शामके भोजनमे फल-तरकारी और फुलका या दलिया देना चाहिए। रोटी देने लगनेपर एनिमाकी जरूरत नही होती और बच्चेके लिए दिनभर खाटपर लेटे रहना भी जरूरी नही होता। अब वह घूम-फिर सकता है। फलाहारके समय भी यह आवश्यक नही है कि बच्चा दिनभर खाटपर ही लेटा रहे, पर इसमें सदेह नही कि इस समय जितना आराम किया जाय उतना ही अच्छा है।

आगेके पंद्रह दिन

रोटी शुरू करनेके बाद पंद्रह दिनोतक दाल या दूध बच्चेको नही देना चाहिए। उसका भोजन साधारणतया इस प्रकार हो सकता है:

सबेरे उठनेपर—किसी तरकारीको पकाकर निकाले गए रसमे थोड़ा नीबूका रस मिलाकर।

नाश्ता—कोई फल और साथमे थोड़ी किशमिश या अजीर।

दोपहरका भोजन—कुछ कच्ची और पकी तरकारियां, चोकरसमेत आटेका फुलका या दलिया और इच्छा हो तो दो-चार आलू।

तीन वजे—कोई फल या फलका रस।

शामको—दोपहरवाला भोजन। वच्चा चाहे तो रातको सोते समय तरकारीका रस पी सकता है।

चिकित्साके आरंभसे ही वच्चेके पेडूपर, यदि वच्चा मान सके तो, ठडे पानीमे भिगोकर हल्का-सा निचोड़ा तौलिया या ठंडे पानीसे सानकर लप्सी-सी वनाई हुई मिट्टी करीव आध इंच मोटी आध घटे या वीस मिनटके लिए रखनी चाहिए।

ऊपरके कार्यक्रमसे वच्चेकी आंते सवल और कीडियोसे मुक्त हो जायगी, पर कभी-कभी जव रोग गहरी जड़ पकड़े होता है यह कार्यक्रम महीने डेढ महीने वाद फिर दुहराना पड़ता है। सारा कार्यक्रम ही ऐसा है कि वच्चेका स्वास्थ्य इससे वहुत उन्नत हो जाता है और आगे वह रोगोसे वचता है।

चिकित्सा आरंभ करनेके दूसरे दिनसे ही, पर चिकित्सा समझकर नही, वच्चेको थोडा-सा लहसुनका रस भी देने लग जाना चाहिए। लहसुन वहुत वड़ा कृमिनाशक है। यह आंतोको कृमियो और चुन्नोसे मुक्त करता एवं उन्हें सशक्त वनाता है।

ग्रंथि-वृद्धि

प्राय. सभी बच्चोको कभी-न-कभी ग्रथिवृद्धिका विकार हुआ करता है। बच्चोके इस विकारका अभिप्राय उन लसीका-ग्रथियोंकी वृद्धिसे है जो गलेमे दोनो ओर रहती है और बढनेपर उंगलियोके सहारे मालूम की जा सकती है। कभी-कभी तो उनका आकार इतना बढ जाता है कि वे आसानीसे देखी जा सकती है और गर्दनके तंतुओकी आकृति विकृत कर दे सकती है।

लसीका-ग्रंथि

स्वास्थ्यकी साधारण अवस्थामे ये ग्रथिया बहुत छोटी होती है और उनका बढना इस बातका सूचक होता है कि शरीरकी हालत ठीक नही है। शरीरमे दो प्रकारके तरल पदार्थो—रक्त और लसीका—का प्रवाह जारी रहता है। लसीका-सस्थानमे इन ग्रथियोका महत्त्वपूर्ण स्थान है। शरीरके कोषाणुओके साथ रक्तका सम्पर्क नही होता, लसीका ही उनमे पोषण पहुचाती और उनका मल अपने साथ बहा ले जाती है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कोषाणुओकी क्रियासे जो विषावत्त मल पैदा होता है वह सीधे रक्तमे न पहुचकर लसीका-सस्थानमे पहुंचता है। शरीरके सारे तंतुओमे छोटी-छोटी ग्रथिया रहती है जो लसीका-सस्थानका महत्त्वपूर्ण अग है। लसीकामे पहुंचनेपर मल पहले इन्ही ग्रथियोमे पहुचता है जहा निर्विषीकरणकी क्रिया चलती रहती है जिसके परिणामस्वरूप लसीकाके

पुन. रक्तमें पहुंचनेके समयतक मलकी विषमयता बहुत कुछ दूर हो चुकी रहती है।

वृद्धि क्यों ?

साधारण अवस्थामे कार्य करते समय इन ग्रथियोपर जोर नही पडता, पर विषाक्त मलके वहुत अधिक मात्रामे पहुंचनेपर उनपर वहुत अधिक भार पड जाता है जिससे वे वढ़ जाया करती है, ग्रथियोके वढ़नेके समय सर्दी हो सकती है और अगर इस समय गलेकी इन ग्रंथियोको उंगलीसे दवाकर देखा जाय तो उनका आकार वढा हुआ मालूम होगा।

रोगके संक्रमणसे भी ग्रंथियोकी वृद्धि हुआ करती है। अगर कोई घाव भर न रहा हो या किसी कीड़ेका दंश दूषित हो जाय तो इनके कारण भी ग्रथिया वढ़ जा सकती है; क्योंकि उन्हे विकृत तन्तुओको साफ करना पडेगा जिससे उनका कार्य-भार वहुत वढ जायगा। आम तौरसे वृद्धिका क्षेत्र गला ही होता है। वार-वार होनेवाली सर्दी और प्रतिश्यायसे ग्रस्त नाक, मुंह और गलेकी श्लैष्मिक कला और विकृत उपजि-ह्विकाए लसीकामें अधिक विषाक्त मल पहुंचाया करती है जो स्वभावत. इस क्षेत्रकी ग्रंथियोकी वृद्धिका कारण होता है।

रोगका वढ़ा हुआ रूप

अगर इन ग्रंथियोंपर वरावर जोर पड़ता रहे और वृद्धि कम करनेका कोई उपाय न किया जाय तो और तरहकी खरा-वियां भी पैदा हो जायगी। पहले तंतुओकी सूजन होगी और पीछे, अगर जोर पडना जारी रहे तो, पूय वनने लगेगा और

इस प्रकार व्रणशोथ प्रस्तुत हो जायगा। इसका अंतिम परिणाम यह होगा कि ग्रथि वाहरकी ओरसे फट जायगी या वहां वने हुए पूयका भार कम करनेके लिए सर्जनसे चीरा लगवाना पड़ेगा। इससे पाठकोको यह वात स्पप्ट रूपमे मालूम हो जायगी कि इन ग्रथियोके आप-ही-आप वढनेकी वात विलकुल गलत है। इनकी यह अवस्था शरीरके विभिन्न भागोमे विकार एकत्र होनेका ही सूचन करती है और अगर शरीर गिरी हुई अवस्थामे या विषाक्त न हो तो ग्रंथियोकी यह अवस्था कभी प्रस्तुत नही होगी।

उपचार

इस अवस्थामे वच्चेकी आदतो और स्वास्थ्यपर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है। अगर ग्रंथियां वहुत वढ गई हो और पूय वननेकी संभावना हो तो अवस्थामे सुधार न होनेतक बच्चेको विस्तरेपर रखकर विश्राम करने दिया जाय और उसे यथासभव गर्म रखा जाय। अगर आवश्यकता प्रतीत हो तो गर्म पानीकी वोतले विस्तरेपर रखकर उसे गर्म रखा जाय और ग्रथिया वहुत वढ गई हो तो गर्म पानीमे निचोड़े हुए कपड़ेसे दस-दस मिनटके लिए सुवह, दोपहर, शामको उन्हे सेका जाय। कपड़ा उतना ही गर्म रहे जितना वच्चा देरतक रखने देकर गर्मी ततुओतक पहुंचने दे। अगर उपचार समयसे आरंभ कर दिया जाय तो व्रणशोथ होनेकी संभावना नही रहेगी। जवतक स्थान पूयसे विलकुल रिक्त न हो जाय तवतक सेक जारी रहे।

विस्तरेपर रहकर विश्राम करते समय वच्चेको केवल फलका रस दिया जाय। अगर कोई मुलायम फल मिले तो

वह लुगदी-जैसा बनाकर दिया जा सकता है। इसके वाद वह कुछ उवली हुई तरकारियां और फिर केला छोड़कर और फल खा सकता है। कुछ दिनोके वाद फलके साथ दूध। फिर सलाद और उवली हुई तरकारिया और तव चोकरदार आटेकी रोटी और आलू भी दिये जाय। ग्रथियोकी हालतमे सुधार हो जानेपर आहार वढाया जाय और रहन-सहनका ढंग प्राकृतिक रखा जाय, पर अधिक खिलानेकी उतावली न की जाय।

इस रोगसे ग्रस्त वच्चेकी आंत शिथिल होती है। विश्राम-कालमें आतकी पूरी सफाई कर देनेका प्रयत्न होना चाहिए। इसके लिए एक सप्ताह रोज एनिमा देना आवश्यक होगा। इससे आंत तो साफ हो ही जायगी, रक्त और लसीकाकी विषमयता भी वहुत कुछ जाती रहेगी।

वच्चेके नाड़ीसंस्थानपर पड़नेवाला जोर कम कर दिया जाय। अगर घर करनेके लिए दिया जानेवाला काम भारी हो, विद्यालयमे अच्छा न रहनेका भय हो, दिमागपर जोर पडता हो या चिड़चिड़ापन हो तो वच्चेके घर और विद्यालयके जीवनका विश्लेषण कर नाड़ीशक्तिका अपव्यय रोकनेका प्रयत्न किया जाय।

उपजिह्विकाओंका शोथ

जबतक उपजिह्विकाएं (टौंसिल) बढ़ती या सूजती रहेंगी तबतक सर्जनोंको उन्हें काटकर निकाल देनेका बहाना मिलता ही रहेगा, पर अगर माता-पिताको इन ग्रंथियोंके कार्य और उपयोगिताका ज्ञान हो जाय तो वे सर्जनकी सहायता लेनेका खयाल भी नहीं करेंगे। शरीरके विभिन्न अंगों और उनकी क्रियाओंका ज्ञान न होनेका ही यह परिणाम होता है कि वे ऐसे विचारोंको भी अंगीकार कर लेते हैं जो वस्तुतः भ्रांत होते हैं और जो सिद्धांत वस्तुतः उपचारका आधार है उसका परीक्षण भी नहीं करते।

ग्रंथियां निरर्थक नहीं

आम तौरसे लोग इन ग्रंथियोंको निरर्थक, रोगोंकी जननी और वात आदि जीर्ण रोगोंको सहायता देनेवाली मानते हैं। अगर रक्त आदिके संचरणके संबंधमें लोगोंको कुछ अधिक ज्ञान होता तो शायद इन ग्रंथियोंका इतना बलिदान न होता। लोग प्रायः जानते हैं कि धमनियां शरीरके विभिन्न भागोंमें रक्तका वहन करती हैं और वे यह भी जानते हैं कि शिराएं उसे लौटाकर हृदयके पास ले जाती हैं, पर लसीकाधारोंके संबंधमें वे बहुत कम जानते हैं जो कोषाणुओंसे निकला हुआ मल एकत्र कर रक्तमें पहुंचानेका महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। अगर यह मल एकत्रकर बाहर न निकाला जाता तो विषाक्त होनेके कारण शरीरको बहुत अधिक क्षति पहुंचाता। लसीकाधारोंके

जरिए मल लसीकाग्रथियोमे पहुचता है जो लसीकासंस्थानमे जहां-तहा बनी हुई है। शरीरके संघटनमे इन ग्रंथियोका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके अदर कुछ आश्चर्यजनक क्रियाएं चलती रहती है जिनके परिणामस्वरूप एकत्र किया हुआ विष शरीरको कोई क्षति पहुचानेकी स्थितिमे नही रह जाता।

साधारण अवस्थाके शरीरमे विषकी मात्रा इतनी अधिक नही होती कि इन ग्रथियोको अधिक श्रम करना पड़े, पर शरीरमे विषाक्त मल अधिक एकत्र हो जानेपर विपको शिथिल करनेवाले इन कारखानोको निरतर अत्यधिक श्रम करना पडता है और अवस्था अधिक खराव हो तो वे रुग्ण हो जा सकती है।

वृद्धि विकारकी सूचक

उपजिह्विकाएं, जो जिह्वामूलके पार्श्वमे स्थित है, ऐसी ही ग्रथिया है। ये शरीरको अदरसे विषाक्त होनेसे बचाती और विषको रक्तमे पहुचनेके पहले शिथिल कर देती है। वढी हुई और रुग्ण उपजिह्विकाए शरीरके अधिक विषाक्त होनेकी ही सूचक है इसलिए सर्जनसे उन्हे निकलवा देना ऐसा कार्य है जिसका स्वास्थ्यके सुधारमें कोई महत्त्व नही हो सकता। इन अंगोको वात, उन्माद, हृद्रोग तथा अन्य विकारों-का कारण मानना तो रोगोकी उत्पत्ति और स्वरूपके संबंधमे अपने अज्ञानका ही परिचय देना है।

औपधशास्त्रियोका कहना है कि कीटाणुओंके संक्रमणसे ये ग्रथियां विकारग्रस्त हुआ करती है, पर प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार यह विकार रक्तमे अधिक मल, विशेषकर प्रोटीनजन्य मलके एकत्र होनेका वुरा प्रभाव है। तीव्र रूपमे यह वच्चोका

आम रोग है और स्कूल जानेकी उम्रवाले वच्चे इसके खास तौरसे शिकार हुआ करते है । इसके व्यापक रूप धारण करनेपर विद्यालयो और समाजके वहुसंख्यक लोग, यहातक कि वूढे भी इसकी चपेटमे आ जाते है ।

रोगके लक्षण

गलेकी परीक्षा करनेपर यह स्पष्ट रूपमें देख पडेगा कि उपजिह्विकाए वढ गई है, श्लैष्मिककला प्रदाहयुक्त है, श्लैष्मिक कोशोसे मलाई-जैसी कोई चीज निकल रही है, जीभ-पर मैलकी गाढी तह जमी-हुई है, सास वहुत गदी है और वच्चा प्राय नाकके वजाय मुहसे सास लेता है। स्मरण रखनेकी खास वात तो यह है कि उपजिह्विकाओमे आस-पासके और भागोसे अधिक रोगका कोई लक्षण नही देख पडता । पता नही, उपजिह्विकाओको ही निकालनेकी वात क्यो सूझा करती है ।

विकारका आरभ होते समय वड़ी ठढ मालूम होती है और उसके वाद ज्वर हो आता है । ज्वरकी प्रवृत्तिवाले कुछ वच्चोमे तापमान जल्द ही १०५ अंशतक पहुंच जा सकता है। वदनमे दर्द होता है, गलेमे तकलीफ होती है, ज्वर वढ़नेके साथ-साथ नब्ज तेज होती जाती है और सांसकी भी गति वढ जाती है, पेशावका रग वदल जाता है और उसमे कुछ तलछट-जैसा पदार्थ जमने लगता है ।

इस अवस्थामे गलेकी ये ग्रंथियां सूज जाती है और अधि-काश अवस्थाओमे सारे शरीरकी लसीका-ग्रथियोमे सूजनका लक्षण देख पडता और दर्द भी रहता है। अन्ननालीकी हालत

ठीक नही रहती और मलके साथ श्लेष्मा अधिक निकलता है। रोग वहुव्यापक होनेकी हालतमें तरह-तरहके उपसर्ग पैदा हो जाते है जिनमेंसे अधिकांश औषधोपचारके ही परिणाम होते है, क्योकि औषधविज्ञान रोगको शत्रुके रूपमे देखकर उसका अंत करनेके लिए ध्वंसक साधनोका प्रयोग किया करता है। उपजिह्विकावृद्धि जैसे साधारण रोगके उपचारमे अगर प्राकृतिक पद्धतिका सहारा लिया जाय तो उपसर्गोंके प्रकट होनेकी कोई संभावना ही नही रहेगी, पर अगर विषौषधोका प्रयोग किया जाय तो कोई भी वात घटित हो सकती है।

उपचारका उद्देश्य

ऐसी अवस्थामे शरीरको साधारण अवस्थामे लानेका प्रयत्न करना ही उपचारका मुख्य उद्‌देश्य होना चाहिए। मैलसे भरी हुई जीभ, गदी सांस, सूजी हुई ग्रंथिया आदि महत्त्व-पूर्ण लक्षण है। इन सभी अवस्थाओमे वच्चा विस्तरपर रखा जाय और जवतक ज्वर विलकुल न उतर जाय उससे उपवास कराया जाय। उपवास-कालमे रोज दो बार एनिमा देकर आतकी सफाई की जाय और गलेपर ठडे पानीमे भिगोकर निचोड़ी हुई पट्टी गलेके चारो ओर लगाकर ऊपरसे ऊनी पट्टी वाध दी जाय। यह पट्टी एक घंटे गलेपर रहे और दिनमे तीन वार लगाई जाय। अगर वच्चेके स्वभावमे चिडचिडापन हो तो ज्वर होनेके साथ ही एनिमा दिया जाय। शरीरके ही वरावर पानीका तापमान रहे। इस वातका खयाल रखा जाय कि वच्चेको कोई तकलीफ न हो। पानी वहुत धीरे-धीरे पहुंचाया जाय और दर्द मालूम

होने लगे तो उसके दूर न होनेतक पानी पहुचाना बद रखा जाय।

इस उपचारसे ज्वर जल्द ही उतर जायगा, जीभ साफ हो जायगी और सासकी बदवू भी जाती रहेगी। इन सुधारोके हो जानेपर उपजिह्विकाओकी सूजन कम पड़ने लगेगी और गलेकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह भी जल्द ही चला जायगा। बीमारीके बाद बच्चेकी क्षुधा किसी ठोस आहारसे शात करनेकी भूल कभी न की जाय। बच्चेको कम-से-कम एक सप्ताह सिर्फ ताजा फल और सलाद दिया जाय। वह कुछ दुबला अवश्य हो जायगा, पर इसके बाद नष्ट ततुओका स्थान स्वस्थ ततु ग्रहण कर लेंगे। इसके बाद आहारमे दूध भी शामिल कर लिया जाय और बच्चेकी ताकत कुछ बढ जानेपर प्रोटीन और श्वेतसारवाले पदार्थ भी दिये जायं। किसी तरहका टानिक या दवा न दी जाय। इस प्रकार चलनेपर कोई उपसर्ग पैदा नही होगा।

अधिकाश बच्चोकी उपजिह्विकाए बढी हुई जान पडती है और उनका साधारण अवस्थाका रूप निश्चित करना कठिन होता है, इसलिए रोगका निश्चय इन ग्रथियोके आकारसे नही, बल्कि शरीरकी अवस्थाके आधारपर ही किया जा सकता है। रोगके कारण बढी हुई ग्रथिया सास लेने और खानेमे बाधक होंगी, श्रवणशक्ति अपनी साधारण अवस्थामे नही रहेगी और उपेक्षा होनेपर चबानेकी क्रिया भी ठीक तरहसे नही हो सकेगी।

साधारण वृद्धिमें

अगर वृद्धि साधारण हो और उपर्युक्त कार्योमे बाधक न हो तो स्थानिक उपचार चलानेके फेरमे न पड़कर बच्चेके

खान-पान और रहन-सहनपर ध्यान दीजिए, कुछ दिनोमे वे आप ही साधारण अवस्थामें आ जायगी। हां, अगर वाधक होती हो तो विकार दूर करनेका उपाय जल्द कीजिए। डाक्टर तो ऐसी अवस्थामे नश्तर लगानेकी ही राय देंगे और ग्रंथियोको निकाल देंगे, पर रोगका असल रूप ज्यो-का-त्यो वना ही रहेगा। अगर प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार समझदारीके साथ उपचार चलाया जाय तो वुरी-से-वुरी अवस्था भी कुछ ही समयमे ठीक हो जायगी।

वच्चेका उपचार हो

उपजिह्विकाकी वृद्धि शरीरकी भीतरी खराबीकी ही सूचक है और इसी वातको आधार मानकर उपचार भी होना चाहिए। कहनेका अभिप्राय यह कि उपजिह्विकाका उपचार न कर वच्चेका ही उपचार करना चाहिए। सवसे पहले अन्ननालीपर ध्यान दिया जाय जैसा कि अन्य रोगोमे होता है। केवल यह कहना काफी नही होगा कि वच्चेको अग्निमाद्य या कोष्ठ-वद्धता नही है। इस प्रकारकी सभी अवस्थाओमे इनका अस्तित्व मान लेना ही अच्छा होता है। वढी हुई उपजिह्विका-मे आंतकी विपाक्तताका योग किसी-न-किसी रूपमे अवश्य रहता है।

आहार

उपचार साधारण स्वास्थ्यके सुधारकी दिशामे हो जिसमे उपयुक्त आहारका महत्त्व वहुत अधिक है। एक सप्ताहतक केवल फलोपर रखना सभी अवस्थाओमें लाभदायक होता है। इससे शरीरसे विषका विसर्जन होने लगेगा जो फसादकी जड़

है। इसके वाद कुछ दिनोतक फलो और सलादकी मात्रा वहुत अधिक और श्वेतसार तथा प्रोटीन अत्यल्प मात्रामे रखे जायं। इसके साथ ही नाडियोमे रक्त-संचरण तीव्र करनेके लिए गरदनकी मालिश की जाय और उंगलियोके जरिए ग्रथियोमेसे विकार निकाल दिया जाय। इसके लिए अगुली नीबूके रसमे डुबाकर उससे उपजिह्विकाओको सुवह-शाम एक-एक मिनटतक धीरे-धीरे मला जाय।

कर्णमूल-शोथ

कर्णमूल-शोथ, जिसको लोग आम तौरसे 'गलसुआ' कहते है, उन तीन या चार बालरोगोमेसे है जिनके संबंधमे यह माना जाता है कि वे कभी-न-कभी बच्चोको अवश्य होते है, पर अब यह अंधविश्वास धीरे-धीरे दूर हो रहा है और लोग समझने लगे है कि ये भी अन्य रोगोकी ही तरह माता-पिताकी लालन-पालन-सबधी भूलोके कारण होते है।

औषधविज्ञान इसे संक्रामक मानता है और अधिक समय-तक सर्दीका टिकना, वर्षा, एकाएक मौसिममे ठंढक आ जाना आदि संक्रमणकी वृद्धिमे सहायक माने जाते है। डा० हावर्डके अनुसार 'इस प्रकारका रोग पैतृक दोष निकाल डालनेकी शारीरिक प्रक्रिया है और शरीरके लिए लाभदायक होनेके साथ ही आवश्यक भी है। अगर इसे दबानेका प्रयत्न किया जाय तो बच्चेके शरीरको क्षति पहुचेगी और उसकी जीवशक्ति कम हो जायगी।' डा० टिलडेनका कहना है कि 'अगर खान-पान और देखभालमे सावधानी रखी जाय तो तथाकथित कोई भी संक्रामक रोग पास नही फटकेगा।'

रोगके लक्षण

इस रोगमे तबीयत भारी हो जाती है, एक या दोनो कानोके नीचे दर्द होता है, लाला ग्रंथियोकी सूजनसे ऊपरका हिस्सा उठ आता है, अधिकांश अवस्थाओमे तापमान बढ़ जाता है, पर उतना नही बढ़ता जितना साधारणत. अन्य संक्रामक रोगोमे

बढता है—१०१ अंश और कभी-कभी इससे भी ऊपर चला जाता है और सूजन क्रमश. बढकर सारी गरदनमे फैल जाती है। सूजन सात-आठ दिन टिकनेके बाद ग्रथिया धीरे-धीरे साधारण रूप प्राप्त कर लेती है और बच्चा चगा हो जाता है।

उपसर्ग क्यों ?

बहुतसे विशेषज्ञोंका कहना है कि इसमें जानके लिए कोई खतरा नही रहता और जो बच्चे मरते है वे उपसर्गोके ही कारण मरते है। इस साधारणसे रोगके साथ बहुतसे बडे रोगोका संबध जोड़ा जाता है जो सब-के-सब इसके उपसर्ग माने जाते है। हृद्रोग, वृक्कविकार, सन्धिवात, आवरणशोथ आदि कुछ रोगोका नामोल्लेख किया जा सकता है। उपसर्गोके संबंधमे यह कह देना आवश्यक जान पडता है कि वे प्राय. मूल रोगके कारण नही, बल्कि उपचारसंबंधी दोषोके कारण प्रस्तुत होते है।

कारणकी तलाश

औषधोपचारको और कई प्राकृतिक चिकित्सकोका भी कहना है कि इस रोगमे विशेष रूपसे कुछ करनेकी आवश्यकता नही है, फिर भी हमे रोग दूर हो जानेके बाद शारीरिक क्रियाओके और अच्छे रूपमे चलनेके लिए आवश्यक उपाय करना ही चाहिए। इसके लिए सारी अवस्थाओका सावधानीके साथ विश्लेपण कर रोगके मूल कारणको ढूढ निकालना पडेगा। अधिकाश अवस्थाओमे पाचनकी खराबी—आंतमे खमीर बनना और कब्जकी प्रवृत्ति—ही इसका कारण हुआ करती है। कभी-कभी इसका संबंध स्नायुदोष और गंडमालासे भी देख पड़ता है जिसका खयाल रखना जरूरी होता है।

उपचार

विश्लेषणसे यह सिद्ध हो जायगा कि रोग होनेके पहले साधारण स्वास्थ्य अच्छा नही था। तापमानका वढना उपवासकी आवश्यकता सूचित करता है। उपवास कराते समय केवल पानी पिलाया जाय। इसके वाद केवल फलका रस दिया जाय और तव प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार आहार दिया जाय। इसमें, विशेपकर ज्वरकी हालतमे, एनिमा देना आवश्यक है। स्थानिक उपचारके लिए गरम और ठंढी पट्टी बहुत लाभदायक सिद्ध होगी।

आरक्त ज्वर

आरक्त ज्वर तीव्र सक्रामक रोग है। दस वर्ष तककी अवस्थाके बच्चे अकसर इसके शिकार हुआ करते हैं। प्रायः यह व्यापक रूपमे हुआ करता है और इसका रूप मामूलीसे लेकर गभीरतक हुआ करता है जिसमे शरीरपर बहुत जोर पड़ता है। कुछ अवस्थाओमे गलेपर इसका ज्यादा जोर पडता है और कुछमे गले और त्वचा दोनोपर। इसका एक रूप ऐसा होता है जिसमे यह चर्मस्फोटतक ही सीमित रहता है।

औषधविज्ञान इसका कारण कीटाणुओका संक्रमण मानता है, हालां कि इस कीटाणुका अभीतक पता नही लग सका है। कीटाणु इस रोगमे चाहे जो करते हो, हमारे पास उन्हे रोकनेका कोई उपाय नही है। हां, हम खान-पान, रहन-सहन और वातावरण ठीक कर बच्चोकी निरोध-शक्ति अवश्य बढा सकते हैं। इस शक्तिके कम होनेसे ही वे आरक्त ज्वर-जैसे रोगोसे आक्रान्त होते है और अगर आक्रान्त हो ही जाते है तो जैसे अन्य रोगोमे शरीर स्वयम् आरोग्य लाभ करता है वैसे ही इसमे भी, अगर उसे उचित अवसर दिया जाय तो, बढ़े हुए विषको निकालकर पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ हो जायगा।

लक्षणोंका रूप

इसके लक्षण विशेष प्रकारके हुआ करते हैं। पहला लक्षण वमन है। बच्चा बहुत उत्तेजित होता है, तापमान फौरन काफी बढ़ जाता है, जीभपर मैलकी तह जम जाती है,

सास गंदी हो जाती है, गलेमे खराश मालूम होती है और प्रदाह नासिकातक फैल जाता है। ये चिह्न प्राय अन्य संक्रामक रोगोमे भी प्रकट हुआ करते है इसलिए इन चिह्नोके सहारे इस रोगकी ठीक-ठीक पहचान नही हो सकती; पहचान तव होती है जव वदनपर ददोरे नजर आने लगते है जो छत्तीससे वहत्तर घंटेतक निकलते है। पहले तो सिर्फ लाली देख पडती है, पर वादमे पीड़िका-जैसे लाल ददोरे वनकर स्थितिकी सूचना दे देते है।

रोगीकी शारीरिक अवस्थाके अनुसार इन लक्षणोमे अंतर भी हो सकता है। कुछ लोगोमे तो वे इतने हलके हो सकते है कि जल्द मालूम भी न हो सके और कुछमे वुखार इतना कड़ा हो सकता है कि भयका कारण हो जाय। हलके चिह्न अंतमे प्राय. खतरनाक सावित होते है; क्योकि उनके इस रूपके कारण रोगी लापरवाह-सा रहता है, इसलिए लक्षणोका रूप चाहे जैसा हो, सवपर पूरा ध्यान देना चाहिए।

उपचार

प्राकृतिक पद्धतिमे आरक्त ज्वरका उपचार अन्य संक्रामक रोगोके उपचारसे भिन्न नही होता। उपचारमे ध्यान देनेकी मुख्य वात है शरीरको आरंभ किया हुआ प्रयत्न उचित रूपमे चलानेका अवसर देना। इस समय कुछ भी खानेकी इच्छा नही होती। ज्वर विलकुल उतर न जानेतक सिर्फ पानी दिया जाय। इस नियमका उल्लंघन होनेपर उपसर्ग पैदा हो जा सकते है। रोगी सिर्फ पानीपर कुछ दिनोतक मजेमे रह सकता है और इससे उसको आराम भी मालूम होगा। आरंभमें ही एनिमा देकर आंत साफ कर देना वुद्धिमानीका काम होगा। पहले रोज दो वार एनिमा दिया जाय। वड़ी आंत विलकुल

खाली हो जानेपर रोगी मजेमे सो सकेगा और नाड़ी-संस्थान वहुत कम उत्तेजित होगा।

तापमान घटानेका उपाय

अगर बुखार ज्यादा—१०४ अंशके आसपास—हो तो इसे खतरनाक होनेसे रोकनेके लिए बुखार घटानेवाला स्नान कराया जाय। १०० अंश तापमानवाला पानी टबमे भरकर बच्चा कुछ मिनट उसमें रहने दिया जाय। इसके अनतर टबमे थोड़ा ठढा पानी डालकर तापमान ९० अंश कर दिया जाय और बच्चा उसमे लगभग दस मिनट—उसकी प्रतिक्रिया देखकर—रखा जाय। इसके वाद पानीका तापमान और १० अंश कम कर वच्चा रखा जाय। यह तरीका समझदारीके साथ काममें लाया जाय; क्योकि सभी रोगियोकी एक ही जैसी प्रतिक्रिया नही हुआ करती। यदि इस नहानकी व्यवस्था न हो सके तो सारे बदनकी गीली पट्टी वच्चेको दी जाय। इससे बदनकी खुजली कम पड जायगी और ज्वर रहनेपर भी रोगीको कुछ आराम मालूम होगा। ज्वर ज्यादा उतारनेकी कोशिश न की जाय; क्योकि बढा हुआ ज्वर उस विशेप अवस्थामे शरीरकी आवश्यक प्रतिक्रिया है।

आहारका क्रम

दो-तीन दिन वाद, बच्चेको कुछ आराम मालूम होने लगने-पर, पानीके बदले या अलावा फलका रस भी दिया जाय। नारगी, अगूर, नीबू, अनन्नासका रस इस अवस्थामे अच्छा होता है और रोगी पसद भी करता है। ज्वर उतरनेके साथ-साथ इसकी मात्रा भी बढाई जा सकती है। यह आहार ताजगी

लानेवाला तो है ही, इससे वानस्पतिक लवण और विटामिन भी अच्छी मात्रामे प्राप्त होते है जिससे शरीरमे साधारण रूपमे क्षार बनता रहेगा। रोगीकी हालत सुधर जानेपर पके मौसिमी फल दिये जाय। इसके बाद मुलायम सलाद और फिर उबली हुई तरकारिया दी जायं। अगर कोई खराबी न देख पड़े तो इस क्रमके बाद चोकरदार आटेकी रोटी, उबली हुई तरकारी और सलाद दिया जाय। अगर फल देते समय रोगी कुछ दूध भी लेता हो तो फलके बादका आहार-क्रम न चलाकर इसे ही कुछ दिनोतक चलाया जाय। आरोग्योन्मुख अवस्थामे चर्मनिर्मोचन भी होता चलेगा। इसके लिए किसी उपचारकी आवश्यकता नही है। कभी-कभी शामको थोड़ा जैतून या नारियल का तेल मलना और सुबह गर्म पानीसे नहा लेना लाभ-दायक होता है।

ऊपर बतलाये हुए तरीकेसे उपचार चलाया जाय तो उपसर्गोके उत्पन्न होनेकी संभावना नही रहेगी। अगर गलत उपचारके कारण कुछ उपसर्ग प्रस्तुत हो भी गये हो तो ये ही सरल उपाय आरोग्यलाभमे सहायक होगे। अगर विषाक्त मल अधिक मात्रामे एकत्र हो तो वृक्कविकार, आमवात, कर्णविकार आदि इसके बाद हो जा सकते हैं। विषाक्त पदार्थोको निका-लनेका सबसे अच्छा उपाय उपवास और विश्राम है। यह मत समझ लीजिए कि रोग मामूली है और बच्चा जल्द अच्छा हो रहा है, इसलिए और देखभालकी जरूरत नही है। जितना आवश्यक जान पड़ता हो उससे एक सप्ताह अधिक ही बच्चेको बिस्तरपर रखिए।

रोहिणी (डिप्थीरिया)

रोहिणी तीव्र संक्रामक रोग है जिसमें मैला निर्यास निकलता है और स्वरनलिका, कंठ, उपजिह्विका, वायुप्रणाली आदिमे प्रदाह होता है। गला इस रोगका विशेप क्षेत्र होनेके कारण इसका परिणाम भयंकर हो सकता है इसलिए मा-वाप इससे वहुत डरते है।

कीटाणु कारण नहीं

इस रोगमे विशेप प्रकारका कीटाणु पाये जानेके कारण कीटाणुवादी उसे ही इस रोगका कारण मान लेते है, पर यह भ्रम है, क्योकि अगर शरीरकी प्रतिक्रिया न हो तो किसी कीटाणुमे इतनी शक्ति नही है कि रोग उत्पन्न कर सके। वहुतसे वच्चे इन कीटाणुओके संपर्कमे आते है, पर उनमे जीवशक्ति तथा रोग-निरोधकी शक्ति होनेके कारण वे रोगसे आक्रात नही होते, इसलिए हमारा प्रयत्न शरीरका स्वास्थ्य उन्नत करनेकी ही दिशामे होना चाहिए जिसमे कीटाणुको उसमे पैर जमानेका अवसर ही न मिले।

रोगका रूप

रोहिणीका खतरा मा-वापके लिए इस वातकी चेतावनी है कि गलेकी मामूली खराशकी भी कभी उपेक्षा न की जाय, विशेषकर उस हालतमें जव पास-पड़ोसके और वच्चे इस रोगसे आक्रांत हो। इसे यो ही छोड़ देना वहुत वडी भूल है; क्योकि

आरंभिक अवस्थामे ही इसका उचित उपचार कर देनेसे इसके वढ़नेकी सभावना नही रहती। इसका आरभ ठीक सर्दीकी ही तरह होता है। गलेमे खराश पैदा हो जाती है और उसकी कलापर कुछ उजले धव्वे भी देख पड़ते है। तापमानका ज्यादा वढना कोई जरूरी नही है। अगर गलेकी खराशके साथ थोड़ा ज्वर हो तो यह समझनेकी भूल कभी मत कीजिए कि रोगका रूप भयंकर नही है। धव्वे इस वातके सूचक है कि विषावत मल एक विशेष स्थानसे, जो रोगका क्षेत्र वननेवाला है, वाहर निकल रहा है और अगर यह मल शरीरमे पहुंच जाय तो रक्तको विषाक्त कर हृदयको ग्रस्त कर सकता है। अगर रोहिणीवाला भाग कही नीचेकी तरफ वढ जाय तो रोगका रूप वहुत गंभीर हो जायगा।

आरंभिक अवस्थामें

इसलिए गलेकी खराशकी आरंभिक अवस्थामे उपेक्षा करना वहुत बड़ी भूल है और यह वात तीव्र और जीर्ण दोनों अवस्थाओके लिए एक-सी लागू है। यह खराश कई रोगोकी आरंभिक अवस्थामे हुआ करती है। अगर रोगकी इस आरंभिक अवस्थामें ही प्रकृतिकी सहायता की जाय तो जल्द ही आरोग्यलाभ हो जायगा। चाहे जैसी भी अवस्था हो, वच्चेको विस्तरपर रखकर पूरा उपवास कराइए और गला ठीक न होनेके समयतक पानीके सिवा कुछ भी मत दीजिए। रोज दो वार एनिमा देकर आतकी पूरी सफाई कर दीजिए। यह वहुत आवश्यक है और किसी भी हालतमे इसमे लापरवाही नही होनी चाहिए। कोई भी रेचक इस स्वास्थ्यकर उपायका मुकावला

नही कर सकता। अगर बच्चा इसका विरोध करे तो उसपर ध्यान देनेकी जरूरत नही है।

स्थानिक उपचार

स्थानिक लक्षणोके कारण होनेवाला कष्ट दूर करनेके लिए गीली पट्टीका प्रयोग किया जाय। कोई साफ कपड़ा काफी ठंढे पानीमे भिगोकर निचोड लीजिए और उसे गलेमे लपेटकर सूखे ऊनी कपडेसे ढक दीजिए। गीली पट्टीसे बच्चेको बहुत आराम मालूम होगा। कुछ अवस्थाओमे सीने, पेडू या सारे बदनपर इसका प्रयोग करना आवश्यक हो सकता है। संकुलता, गर्मी और तकलीफ दूर करनेमे इस पट्टीका आश्चर्यजनक प्रभाव होता है।

उष्ण-स्नान

रोज दिनमें एक बार उष्णस्नान कराया जाय। पानीका तापमान बच्चेकी अवस्था और प्रतिक्रियाके अनुसार ९८से १०५ अंशतक हो सकता है। बच्चा पानीमे लिटा दिया जाय या बैठा दिया जाय। इस समय सिरपर ठंडे पानीसे भीगा तौलिया रहे। अगर यह उपाय ठीक तरहसे हो तो पसीना तुरंत निकलने लगेगा और त्वचाके सक्रिय होते ही गलेका लक्षण कम पड़ने लगेगा। काफी आराम मालूम होने लगने-पर बच्चेका बदन सुखाकर उसे गरम बिस्तरेपर लिटा दीजिए। बीस-पचीस मिनटसे अधिक समयकी इस नहानमें जरूरत नही होती। यह गरम स्नान दिनमे एक बार देना काफी होगा। पर अगर रोगीको अधिक आरामकी जरूरत हो तो उसे सारे बदनकी गीली पट्टी एक बार और दी जा

सकती है। गरम नहानका प्रबंध न होनेपर सारे वदनकी गीली पट्टी दिनमे दो वार दी जाय।

गर्मी और त्वचाकी वढी हुई सक्रियता गलेमे श्लेष्माका वनना रोककर उसे वाहर निकाल देगी। इसके लिए वच्चेका सिर कुछ नीचा रहे जिसमे श्लेष्मा आसानीसे निकल और किसी पात्रमे फेका जा सके।

कुछ लोग कुल्ली और गरारा करनेकी राय देते है, पर इससे कोई खास फायदा नही होता। तीव्रावस्थामे उपवास और आरोग्योन्मुख अवस्थामे प्राकृतिक पद्धतिद्वारा अनुमोदित आहार देनेसे जल्द आरोग्य-लाभ होनेकी आशा की जा सकती है। आराम पहुचाने और शरीरकी प्राकृतिक शक्तियोंको सक्रिय वनानेका सर्वोत्तम और निरापद उपाय उपर्युक्त जलोपचार ही है।

तांडव

यही एक ऐसा स्नायविक रोग है जिससे बच्चे मुख्य रूपसे आक्रांत हुआ करते है। यह विशेषकर उन बच्चोंको होता है जो पढने-लिखनेमे तेज, चुलबुले और ऐसे परिवारके होते हैं जिसमें स्नायविक रोगकी प्रवृत्ति होती है।

रोगका कारण

इस रोगके कारणोंके संबंधमे बहुत छानबीन हुई है और कई सिद्धात प्रतिपादित किये जाते है। अवस्थाके सबधमे लोगोंका मत है कि दो सालसे पद्रह सालकी अवस्थातक इसकी प्रवृत्ति रहती है और सातसे पंद्रहतककी अवस्थामे इसके होनेकी विशेष सभावना रहती है, क्योकि इस समय पढाईमे स्नायुओंपर बहुत जोर पडता है। पैतृक प्रभाव, जलवायु और संक्रमण भी इसके सहायक कारण होते है। लोगोका यह भी मत है कि लड़कोंकी अपेक्षा लडकिया इससे अधिक आक्रात होती है। एक प्रसिद्ध चिकित्सकका कहना है कि रक्ताल्पता, गंडमाला तथा क्षीणताके शिकार बच्चोको यह रोग अधिक होता है, पुष्ट बच्चोको बहुत कम। इससे यह स्पष्ट है कि जिन बच्चोका स्वास्थ्य साधारण होगा वे इससे बहुत कुछ बचे रहेंगे। प्राय. यह भी देखा जाता है कि यह रोग कभी-कभी शीतला, आरक्त ज्वर, रोहिणी आदि सक्रामक रोगोके बाद होता है, इसलिए प्राय. वे ही इसके कारण माने जाते है। कुछ लोग आमवात और हृद्रोगको भी इसका कारण मानते है,

पर हमारा मत है कि इन रोगोके उपचारमे लक्षणोको दवानेके लिए जो दवाएं काममे लाई जाती है उन्हीके कारण बच्चोमे स्नायविक विकार प्रस्तुत हो जाता है।

विभिन्न रूप

इस रोगके लक्षण हलके, कड़े और उन्मादकी तरह बहुत उग्र भी हो सकते है। हलके रूपमे बच्चा अपनेको स्थिर नही रख सकता, हमेशा अशांत रहता है, उसकी चाल साधारण बच्चोकी तरह स्थिर गतिवाली नही होती, वह चीजोसे ठोकर खा सकता है, वर्तन तोड़ दे सकता है और उसके मस्तिष्क तथा अगोमे उतना मेल नही रहता।

रूप कडा होनेपर हालत और भी बुरी होती है। बच्चा अंगोकी पेशियोको मोड़ न सकनेके कारण चलने-फिरने या नित्यक्रिया करनेमे अशक्त. असमर्थ हो जाता है जिससे दूसरोकी सहायता आवश्यक हो जाती है। उन्माद-जैसे रूपमे तो स्थिति भयंकरही हो जाती है और बच्चेको बराबर देख-रेखमे रखना पडता है।

इसमे कुछ अगो और संधियोमे पीडा होती है और हृदयकी क्रिया भी कभी-कभी अस्तव्यस्त हो जाती है; बच्चेकी मानसिक अवस्थामे सतुलन नही रह जाता, वह चिडचिडा हो जाता है और आपेसे बाहर होकर चिल्लाने लगता है।

औषधोपचारक इस रोगमे सखिया आदि भयकर और खतरनाक द्रव्योका प्रयोग करते है। प्राकृतिक पद्धति इसके बिलकुल खिलाफ है और उसका मत है कि इस तरहकी दवाएं स्वास्थ्य और जीवनके लिए रोगसे भी ज्यादा खतरनाक है।

स्नायविक विकारवाले बच्चेके उपचारमे परिस्थितियोके प्रभाव और बच्चेकी प्रतिक्रियापर उचित ध्यान देना आवश्यक है। जो बाते बच्चेके मानसिक सतुलनको अस्तव्यस्त करनेवाली हो वे दूर करदी जायं और जहातक संभव हो उसे स्वेच्छापूर्वक कार्यं करनेका अवसर दिया जाय। अगर अध्ययन आदिके कारण किसी तरहका जोर पडता हो तो वह बद कर दिया जाय।

उपचारका आधार

इस रोगमे उपचार किस प्रकारका होना चाहिए इसका सकेत उसके निद्रावस्थामे होनेपर मिल जाता है। इस समय उपर्युक्त लक्षणोमेंसे एक भी नही देख पडता, इसलिए उपचारका मुख्य अग विश्रामकी प्राप्ति हो, पर यह विश्राम उस अर्थमे नही होना चाहिए जो साधारणत. लोग ग्रहण किया करते है। लोग कभी-कभी यह समझ लेते है कि पहलेकी तरह खाना-पीना, विचार करना आदि कार्य जारी रखते हुए भी बिस्तरेपर लेटे रहना विश्राम है, पर जिस विश्रामका उद्देश्य अच्छा स्वास्थ्य और शरीर तथा मस्तिष्कका सतुलन प्राप्त करना है उसका अभिप्राय शरीरकी अन्य शक्तियोकी भी निष्क्रियता है। यों तो जीवनमे शरीर और मस्तिष्क कभी निष्क्रिय नही होगे—हृदय रक्तका प्रेषण करता रहेगा और अन्य अनैच्छिक क्रियाए भी चलती ही रहेगी, पर जो क्रियाएं इच्छापूर्वक होती है उनका नियंत्रण किया जा सकता है और भोजन आदिका त्यागकर शरीरको भी विश्राम दिया जा सकता है।

आरोग्यलाभके अन्य उपायोकी अपेक्षा इससे अधिक

लाभ होगा। उपवास और विश्रामकी चर्या पूरी हो जानेपर आहारका रूप निश्चित करनेमे पूरी सावधानी बरती जाय। इस प्रकार अग्निमांद्य और मलावरोधका निवारण मजेमे हो जायगा जिससे बच्चेको स्वास्थ्यलाभमे बड़ी सहायता मिलेगी।

अम्लोत्कर्ष

अम्लोत्कर्ष एक ऐसा रोग है जो बहुत कष्टदायक होता है और बहुतसे बच्चोको हुआ करता है। दोसे चार सालतकके बच्चोपर इसका ज्यादा असर देख पड़ता है। यह वह अवस्था है जिसमे क्षारकी कमी हो जाती है। साधारण अवस्थामे रक्तमे अम्ल और क्षारका संतुलन बना रहता है। इस संतुलनमे अस्तव्यस्तता आनेपर इसकी यह अवस्था कुछ लक्षणोद्वारा प्रकट होती है। प्रमेह, भुखमरी और ज्वरमे घोर अस्तव्यस्तता प्रस्तुत हो सकती है जिससे रक्तमें अम्ल बहुत बढ जा सकता है, पर अम्लोत्कर्षमें क्षार आवश्यकतासे कम होनेकी ही अवस्था होती है।

रोगके लक्षण

वमन, ज्वर, ओठोका बहुत लाल हो जाना, चिड़चिड़ापन आदि इस विकारके मुख्य लक्षण है। वमन एकाएक और जोरोंका होता है। बच्चा जो कुछ खाए रहता है सब फेक देता है और उसके साथ अम्लमय तरल पदार्थ भी होता है। साधारणत. आंतें भी अव्यवस्थित हो जाती है जिससे उदरामय या कब्ज भी हो सकता हैं। दौरेका रूप भयकर होता है और बच्चा बहुत लस्त हो जाता है। दौरा सात-आठ दिनोमे समाप्त हो जाता है, पर रोगका रूप गंभीर होनेपर सात-आठ दिनोमे फिर दौरा हो जाता है। इस प्रकार बच्चेमें कमजोरी बनी रहती है और उसकी साधारण सक्रियतामे खलल पड़ता रहता है।

कुछ बच्चोंमे लक्षण इतने स्पष्ट नही होते—दौरेका समय आनेपर केवल भूखमे कुछ गडबड़ी हो जाती है और दैनिक कार्योंमे कुछ अंतर पड़ जाता है, केवल ज्वर भी हो सकता है या कुछ दिनोंतक सिर्फ मतली रहती है पर दौरेका रूप चाहे जैसा भी हो वह बिलकुल नपे-तुले समयके अंतरपर ही होगा।

ऐसे बच्चेमें क्षारकी कमी तो स्पष्ट ही होती है, कुछ अन्य बातोंपर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। संभव है, भोजनमें क्षारीय पदार्थ काफी रहते हों, पर कुछ अन्य कारण ऐसे हो सकते है जो उनका उपयोग न होने देते हो; इसलिए बच्चेके सारे जीवनपर विचार करना आवश्यक होता है।

आहारका सुधार

इस रोगसे ग्रस्त बच्चेका शारीरिक और मानसिक जीवन नये सिरेसे व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। शारीरिक दृष्टिसे ध्यान देनेका सबसे महत्त्वपूर्ण विषय पोषण है। उसके आहारका सावधानीके साथ विश्लेषणकर उसका रूप निश्चित किया जाय। पहला काम तो यह हो कि प्रोटीन और श्वेतसार-वाले पदार्थ बहुत कम कर दिये जायं और इसका कोई बुरा प्रभाव न देख पड़े तो बच्चा तीन-चार दिन सिर्फ फलके रसपर रखा जाय। इसके बाद उसे सिर्फ फल दिया जाय, पर केला न दिया जाय। यह भी तीन-चार दिन चला लेनेपर उसे दिनमे थोड़ा-थोडा करके कुछ दूध दिया जाय। अब उसके भोजन-का रूप इस प्रकार रहे—सुबहमे फल और दूध, दोपहरको चोकरदार आटेकी रोटी और सलाद और शामको उबली हुई तरकारी और कोई प्रोटीनवाला पदार्थ। यह आहार चलाकर

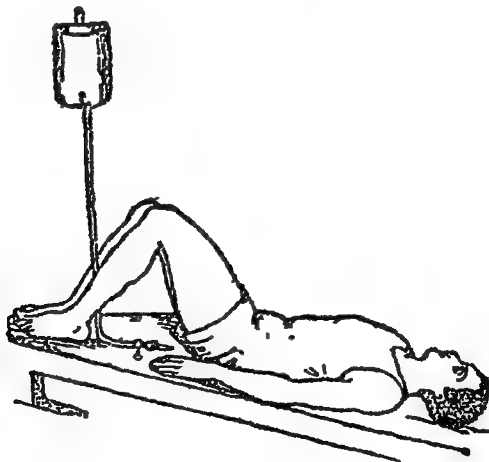
महीना पूरा कर दिया जाय। इसके अनतर यही क्रम पुन चलाया जाय। जल्द जानेका नाम न लेनेवाले रोगमे इस क्रमकी कई बार आवृत्ति करनी पड़ सकती है।

आंतकी सुस्ती एनिमाका प्रयोगकर दूर की जाय। रसाहार चलाते समय यह प्रयोग हो तो पूरा आहार ग्रहण करनेका समय होनेतक आतकी हालत बहुत कुछ ठीक हो जायगी। उदरामय आदि दूर करनेके लिए दवाका इस्तेमाल करना हानिकारक होगा। सादे पानीका एनिमा प्रभावकर होनेके साथ ही निरापद भी होता है। ऐसे बच्चेका अगन्यास भी विकृत होता है, इसलिए मेरुदंड और उसके आसपासकी पेशियोको साधारण अवस्थामे लानेसे आरोग्यलाभमे शीघ्रता होती है। इसके साथ बच्चेका विश्वास प्राप्त कर उसकी मानसिक अवस्था ठीक करना भी आवश्यक होता है।

परिशिष्ट

एनिमा लेनेकी विधि—१—किसी तख्ते या खाटपर चित लेटकर और पैतानेको सिरहानेसे चार इंच ऊंचा रखकर एनिमा लेना चाहिए। जमीनपर लेटे हुए भी एनिमा लिया जा सकता है। छोटे बच्चे माकी गोदमें लेटकर भी एनिमा ले सकते हैं।

२—एनिमाका पात्र लेटनेके स्थानसे डेढ़-दो फुटकी ऊंचाईपर सेर सवासेर गुनगुना गरम पानी भरकर टांगें और टोंटी खोलकर मलद्वारसे पानी अंदर जाने दें। ३—पैरोंको सीधा न रखकर जरा उकड़ू खींच लेने-



से एनिमा लेनेमें सहूलियत रहेगी। ४—एनिमा लगानेके पहले, ट्यूबमें-से थोड़ा पानी बाहर निकाल दीजिए ताकि ट्यूबमें यदि हवा हो तो बाहर निकल जाय और जाना जा सके कि पानीका प्रवाह ठीक है। ५—जितना पानी जा सके उतना जाने देनेके बाद दो-तीन मिनट रुककर शौच जाना

चाहिये। ६—शौच जाते समय सुस्थिर होकर वैठा जाय, पानो और मलको अपने-आप निकलने दिया जाय। मलको निकलनेके लिए जोर न लगाया जाय। जोर लगानेसे सफाई अच्छी नही होती।

उपवास फलाहारमे नित्य एनिमा लेनेकी जरूरत होती है। यदि एनिमा न लिया जाय तो उपवास और फलाहारका पूरा फायदा नही मिलता। इसमे पद्रह वीस मिनटका समय लग सकता है।

एनिमा एक दिनके वच्चेको भी विना किसी डरके दिया जा सकता है। किसी प्रकारकी हानिकी कोई सभावना नही है।

छह महीनेतकके वच्चेको आध पाव पानीका, फिर एक वर्षतकके वच्चेको एक पाव पानीका, तीन वर्षतकके डेढ पाव, पाच वर्षतक आध सेर पानीका, पाचसे दस वर्षतक तीन पाव और फिर सोलह वर्षतकके वच्चेको एक सेर पानीका एनिमा देना चाहिए।

सारे वदनकी गीली पट्टी

सारे वदनकी गीली पट्टी देनेके लिए दो मोटे-मोटे कवलोपर ठडे पानीमें भिगोकर निचोडी हुई पतली सूती चादर विछानी चाहिए और उसपर रोगीको खुले वदन लिटाकर सारे वदनको चादरसे लपेट देना चाहिए। फिर एक-एक कर दोनो कवल लपेट दिए जाए और ऊपरसे एक कवल और उढा दिया जाय। कवल, वदनमे हवा न लगने पावे इसलिए लपेटे और उढाए जाते हैं। इससे गर्मी होगी और आध घटेसे पौन घटेके भीतर रोगीके शरीरसे पसीना निकलने लगेगा, पट्टी लपेटनेके पहले गरम पानी पिला दिया जाय तो पसीना निकलनेमें आसानी रहेगी। एक घटे वाद रोगीको पट्टीसे निकालकर ठडे पानीसे स्नान कराना चाहिए और उसके वाद साफ कपड़े पहनाकर पद्रह-वीस मिनट कवल उढाकर लिटा देना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

रोज-व-रोज डाक्टरोकी तादाद वढ रही है और साथ-साथ अनगिनत ओपधियोकी, पर आख उठाकर देखे तो हर आदमी आपको किसी-न-किसी रोगके चगुलमे फसा मिलेगा। इससे सावित होता है कि दवाए आदमीको न तदुरुस्त रख सकती है, न कर सकती है।

प्राकृतिक चिकित्सकोने तजुरवेसे जाना है कि रसायन और दवाएं रोगको अच्छा करना तो दूर रहा उल्टे रोगको—उसके कुछ लक्षणोको—कुछ वक्तके लिए दूर करके, वाहर निकलते हुए रोगको शरीरके भीतर दवा देती है। जैसे गावमे कूडा-कचरा इकट्ठा होकर वीमारी फैलाता है वैसे ही शरीरकी गदगी निकल न पानेपर अदर सडने लगती है। वही गंदगी सव रोगोकी जड है।

गलत भोजनकी वजहसे पैदा हुई सडन, अपच, दवाओके जहर, इजेक्शन, टीका वगैरह इस गदगीको वढाते है।

शरीरसे गदगी निकालनेकी कुदरतकी कोशिश ही रोग है और रोगके लक्षण इस कोशिशका कुदरती नतीजा है। कुदरती इलाज इस गदगीको शरीरसे निकाल फेकनेमे पूरी मदद पहुचाता है और मनुष्यको स्वस्थ, सशक्त एव सतेज वनाता है।

कुदरती इलाजके मददगार है उपवास, फलाहार, सतुलित भोजन, पानी, मिट्टी, धूप, प्राणायाम, आसन, कसरत और मालिश वगैरह। जिनसे रोग दवते नही वल्कि जडसे नेस्त-नावूद होते है।

आरोग्य-मंदिर

इन्ही सिद्धातोके अनुसार चिकित्साकी सुविधा देनेके लिए आरोग्य-मदिरकी स्थापना की गई है। विशेप जानकारीके लिए आरोग्य-मदिरका परिचय-पत्र मगानेकी कृपा करे।

प्राकृतिक चिकित्साके संबंधमें ये क्या कहते हैं ?

मेरे दोनो हाथ पद्रह वर्षसे छाजन (एक्जीमा) से भरे हुए थे। मुझे शरमके मारे उन्हे ढककर रखना पडता था। आरोग्य-मदिरके मिट्टी-पानीके उपचारसे छाजन ढाई महीनेमे चला गया और हाथकी त्वचाका रग स्वाभाविक हो गया।

काशमीरी देवी, हापुड़

मेरे पेशावके साथ सात प्रतिशत चीनी आती थी। इसे कम करनेके लिए मुझे डाक्टर दोपहर व शामको भोजनके पहले इसुलिनका इजेक्शन देते थे। आरोग्य-मदिरमे आते ही इजेक्शन बद कर दिया गया और यहाकी चिकित्सासे तीन सप्ताहमे पेशावके साथ चीनी आना बिल्कुल बद हो गया। चिकित्सा कराए मुझे डेढ वर्ष हो गया तबसे मै स्वस्थ हू।

गादूराम चौधरी, बिशनपुर (पूर्णिया)

मोटापेके साथ-साथ मै सिरदर्द, चक्कर, बेहोशी, कमजोरी और स्वप्नदोषसे पीडित था। आरोग्य-मदिरमें रहकर ढाई महीनेमे मैने अपना अडतालीस पौंड वजन घटानेके साथ-साथ अपने शरीरको सुडौल बनाया और सभी रोगोसे छुट्टी पा ली।

आरोग्य-मदिरके स्नेहपूर्ण वातावरणको छोडते हुए बडी तकलीफ हुई।

श्यामबिहारीलाल गर्ग, कृष्णा प्रेस, मेरठ

मुझे बहुत पुराना दमा था और हृदयकी कमजोरी। प्राकृतिक चिकित्साकी कृपासे डेढ महीनेमें पचास वर्षकी उम्रमे इन रोगोसे छुटकारा पाकर मै फिर जवानीकी शक्ति और उमगका अनुभव कर रहा हू।

कारुलाल साह, सूजागज, भागलपुर

मै मासिककी गडबडी और प्रदरकी शिकायतसे वर्षोसे पीडित थी। जगह-जगह चिकित्सा कराकर निराश हो चुकी थी। आरोग्य-मदिरकी चिकित्सासे ये सब रोग तो गए ही, भूख खुलकर लगने लगी और पुराना

कब्ज चला गया। मैंने यहा यह भी सीखा कि मनुष्यको स्वस्थ रहनेके लिए क्या खाना-पीना चाहिए और कैसे रहना चाहिए। मैंने नवजीवन पाया।

बनारसोदेवी, वरदुआरो, मालदा

'आरोग्य-मदिर' मे आनेके पहले मुझे ये शिकायतें थी—पेट भारी होना, स्वप्नदोष, पेटमे वायु, शारीरिक कमजोरी, निरुत्साह, निस्तेज मुख-मुद्रा, स्मरण-शक्तिकी कमी, वदहजमी। एक महीनेकी चिकित्साद्वारा मेरे इन लक्षणोमे सुधार हुआ। तीन महीनेमें मै बिलकुल अच्छा हो गया और १४ पौंड वजन बढ गया।

—नारायण भट्ट, ग्रामसेवासमिति, अंकोला कारवार, (बम्बई प्रांत)

मेरे विचारसे प्राकृतिक चिकित्साका जितना अच्छा प्रबध 'आरोग्य-मदिर' मे है उत्तरी भारतके किसी भी प्राकृतिक चिकित्सालयमें नही है।

—प्रोफेसर हरिश्चद्र गुप्त, बिरला कालेज, पिलानी (जयपुर)

England's foremost advocate of Natural Therapeutics : Dr. Stanley Lief advised me to come to AROGYA-MANDIR, Gorakhpur for it's training. Here I have had the wonderful opportunity to see Nature Cure at work. I have been able to watch so many patients, who recovered wonderfully. It must be witnessed to be believed. In this Institution I have learnt to understand many simple principles, otherwise impossible.

Albert Issac Mosseri,
CAIRO (EGYPT.)

आरोग्य-मदिरमें चिकित्सा करानेके नियमादि जाननेके लिए 'आरोग्य-मदिर'का परिचय-पत्र मगानेकी कृपा करें।

संचालक, आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर (उत्तरप्रदेश)

आरोग्य-ग्रंथमाला

प्राकृतिक चिकित्साके प्रसारकी दृष्टिसे आरोग्य-ग्रथमालाका प्रकाशन शुरू किया गया है। इसमें हिंदुस्तानके अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकोकी पुस्तकोके साथ-साथ विदेशके प्राकृतिक चिकित्सकोकी पुस्तके भी होगी। ये सब हम मूल या साराशरूपमें हिन्दी भाषी जनताको अच्छे रूपमे और सुलभ मूल्यमें देना चाहते हैं।

बच्चोका स्वास्थ्य और उनका रोग आपके हाथमें है।

रोगोकी सरल चिकित्सा–लेखक—श्रीविट्ठलदास मोदी—रोगोकी हर घरमे चल सकने लायक सरल चिकित्सा बतानेवाली अनुभवके आधार-पर लिखी हुई एक प्रामाणिक पुस्तक। मूल्य चार रुपया।

प्राकृतिक जीवनकी ओर–लेखक—एडोल्फ जस्ट, अनुवादक—श्रीविट्ठलदास मोदी, सपादक—'आरोग्य'।

प्राकृतिक चिकित्सा प्राकृतिक जीवनका ही दूसरा नाम है। इस जीवनका वर्णन जस्टने अपनी इस किताबमें कुदरतकी भाषा पढ-पढकर ऐसे कवितामय शब्दोमे किया है कि जल, वायु, प्रकाश हमे अपने शुभैषी और बाधव प्रतीत होने लगते हैं। हम इनके मित्र रूपको पहचानने लगते है और धरती माता जो अपने मिट्टीके हाथ हमारे मिट्टीके शरीरके रोगोको मिट्टीमें मिलानेके लिए बढाए दिखाई देती है, के चरणोमे प्रणाम करनेको जी चाहता है। इस पुस्तकको पढना रोग-निवारिणी स्वास्थ्य-दायिनी माताकी कल्याणमयी गोदमे अपने और अपने परिवार-को निर्भय सौंपना है। तीन सौ पृष्ठोकी इस पुस्तकका मूल्य तीन रुपया।

जीनेकी कला—लेखक—श्रीविट्ठलदास मोदी—क्या आप किसी कामको करनेकी सोचते है, और उसे कर नही पाते, तो आपको मानसिक शक्तिकी जरूरत है; समस्याए और चिताए आपको

घेरे रहती हैं और आप उससे निकल नही पाते, तो आपको विश्लेपणात्मक शक्तिकी आवश्यकता हैं, वात-चीत और अध्ययनमे आपको अच्छे विचार मिलते हैं, पर वे आपको याद नही रहते, तो आपको स्मरणशक्ति वढाने-की जरूरत हैं। ये सभी शक्तिया तो आपको 'जीनेकी कला' देगी ही और आपके सामने उन सारे रहस्योको खोलकर रख देगी, जिनके जाननेके कारण ही वह व्यक्ति, जिसे आप वडा कहते हैं, वडा वना है। इस उपादेय पुस्तकका मूल्य है केवल डेढ रुपया।

उपवाससे लाभ—सपादक : श्रीविट्ठलदास मोदी। उपवासकी महिमा, उपवास करनेकी विधि और रोगोके निवारणमे उपवासका स्थान वतानेवाली पुस्तकके रूपमे एक धर्मगुरु। मूल्य डेढ रुपया।

आरोग्यकी कुंजी—गाधीजीने अपने जीवनमे अनेक प्रयोग किए है। स्वास्थ्य और भोजनसवधी उनके प्रयोगोका सार इस पुस्तकमे है। मूल्य आठ आना।

सर्दी-जुकाम-खांसी—सर्दी, जुकाम, खासीका कारण तथा इन रोगोकी चिकित्सा वतानेके साथ रोगोका कारण, उनसे वचने और मुक्तिका रास्ता वतानेवाली सरल भाषामे लिखी गई, एक अपूर्व पुस्तक। मूल्य वारह आना।

मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?—इस प्रश्नका उत्तर इस पुस्तकसे ले और दवाके जालसे निकलकर अपना स्वास्थ्य और धन वचाए। ले० श्रीलूई कूने। मूल्य आठ आना।

आदर्श आहार—भोजनसे स्वास्थ्यका क्या सवध है और भोजनमे थोड़ा-सा हेर-फेर करके रोगका निवारण कैसे किया जा सकता है, यह विशद रूपसे वतानेवाला एक ज्ञानकोष। मूल्य एक रुपया।

उठो !—नदी समुद्रसे मिलनेपर जिस आनदका अनुभव करती है, पक्षीको उडनेमे जो आसानी होती है, पृथ्वीको पहली वर्षासे जिस तृप्तिकी

प्राप्ति होती है, मुर्झाए बिरवेको सूर्य-प्रकाशसे जो जीवन-दान मिलता है, वह आनद, आसानी, तृप्ति और जीवन यदि आप एक साथ पाना चाहते हो तो उठो ! पढिए । मूल्य है केवल सवा रुपया ।

स्वास्थ्य कैसे पाया ?

इस पुस्तकमे आप स्वास्थ्यको उन्नत बनाने और लोगोके रोगोसे मुक्ति पानेकी आत्म कथाए पढकर स्वस्थ रहनेका सही रास्ता जानेंगे । बढाई छपाई, सुदर दुरगा कवर, चालीस हाफटोन चित्र, पृष्ठ सख्या २१६, दाम सिर्फ १॥)

—व्यवस्थापक, आरोग्य-ग्रंथमाला, गोरखपुर

—: अगर आप चाहते हों :—

कि

—आपके घरभरका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे,
—दवा-दारूसे पिंड छूटे,
—खान-पान-व्यायाम आदिके बारेमें जरूरी हिदायतें मिलें,
—भोजनसबधी खोजोका नया-से-नया ज्ञान प्राप्त हो,
—नामी प्राकृतिक चिकित्सकोके लेख पढनेको मिलें,
—बिना दवा-दरपनके पुराने रोगोसे छुटकारा पाए हुओके बयान उन्हीकी जबानी जानें,
—'आरोग्य-ग्रथमाला' की पुस्तके तीन चौथाई मूल्यपर मिलती रहे तो

'आरोग्य'

मासिकके ग्राहक बन जाइए। इसका हर अक स्वतत्र पुस्तककी भाति होता है। वार्षिक मूल्य ५) । एक अकका आठ आना ।

व्यवस्थापक—'आरोग्य', गोरखपुर